कृष्णदास संस्कृत सीरीज १३२

अथ

गरुडपुराणम्

भाषा-टीका-सहितम्

सम्पादक एवं अनुवादक

डा० महेशचन्द्र जोशी

एम. ए., पी-एच. डी., साहित्याचार्य

कृष्णदास अकादमी

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१.
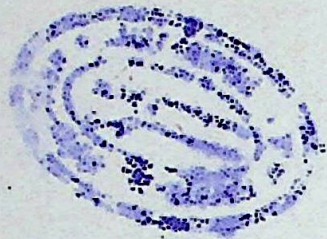
घोषणा-पत्र

पुस्तक का नाम — गरुड पुराण (प्रेतखण्ड)

लेखक का नाम — डा० महेशचन्द्र जोशी

और पता — SG/1 कबीर कालोनी (B.H.U.)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 221005

संस्था का नाम — पुराण-शोध-समिति,
(जिसमें लेखक कार्यरत है) प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 221005

लेखक का प्रमाण-पत्र —

(क) — लेखक प्रमाणित करता है कि, उसकी उपर्युक्त रचना मौलिक-नवीन व्याख्यासहित प्रथम बार वर्ष १९९२ में प्रकाशित हुई है।

(ख) — यह रचना शोध-ग्रन्थ नहीं है।

(ग) — लेखक जन्म से उत्तरप्रदेश का निवासी है।

— भवदीय —
महेशचन्द्र जोशी
दि० [illegible]-२-१९९४

कृष्णदास संस्कृत सीरीज १३२
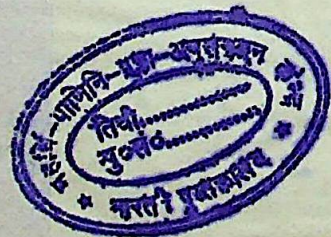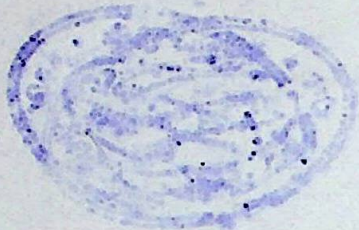
गरुड पुराणम्

[प्रेतकल्पः]

हिन्दी टीका सहितम्

संपादकोऽनुवादकश्च

डॉ० महेशचन्द्र जोशी

एम. ए., पी-एच्. डी., साहित्याचार्य

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९९२

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES 132

GARUDA PURANA

(PRETA KALPA)

Text With Hindi Translation

by

Dr. Mahesh Chandra Joshi

M. A., Ph. D., Sahityacharya

Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology

B. H. U., Varanasi—5

Krishnadas Academy

VARANASI–221001

1992

भूमिका

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' की प्रार्थना के साथ ही प्राचीन ऋषियों और योगियों ने पाञ्चभौतिक शरीर में अमरत्व की प्राप्ति के जो प्रयास किये और आधुनिक वैज्ञानिकों ने वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाले कारणों के निराकरण पूर्वक दीर्घजीवी होने के जो सपने चरितार्थ करने चाहे वे यथेष्ट सफल नहीं हो पाये। मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेने की बात तो दूर रही, अमरत्व अथवा सुदीर्घजीवी होने का मिथ्या आश्वासन मिलने पर भी सामान्य मनुष्य, स्वयं को अवध्य मानने वाले हिरण्यकशिपु, रावण आदि अनेक राक्षसों के समान निरङ्कुश, अधर्मी और दुराचारी होने लगेगा। संभवतः ऐसा आत्मघाती अमरत्व मनुष्य कभी भी नहीं प्राप्त कर सकेगा। मनुष्य मरणधर्मा है। प्रति दिन लोग मरते हैं यह देखते हुए भी शेष मनुष्यों की जिजीविषा समाप्त नहीं होती, यह एक आश्चर्य माना गया है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

जहाँ जीवन है वहाँ मृत्यु भी अवश्यंभावी है। मृत्यु और जीवन परस्पर अनुस्यूत हैं। जो भी प्राणी जन्म ग्रहण करता है-वह कालानुसार मृत्यु को भी प्राप्त होता है और जो मरता है उसका पुनर्जन्म भी निश्चित है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

जीवन की परिसमाप्ति मृत्यु से होती है—इस ध्रुव सत्य को आदि-कवि वाल्मीकि और व्यास आदि ने स्वीकार किया है-

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्। रामा० २।१०५।१६।

ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जिसकी मृत्यु न होती हो। एक न एक दिन सभी को इस संसार से प्रस्थान करना ही है—

न तेऽत्र प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्। पद्म २।६८।५।

गर्भस्थ जीव, उत्पन्न होते शिशु, बालक, युवा, मध्यम वय वाले एवं वृद्ध सभी पुरुषों, स्त्रियों और वृद्धों को संसार से जाना ही है—

गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः। पुंस्त्रीनपुंसकैर्वृद्धैर्यातव्यं जन्तुभिस्ततः॥ पद्म २।६८।३।

पाञ्चभौतिक देह से जीवात्मा के बाहर निकलते ही प्राणी का शरीर निस्पन्द, निश्चेष्ट और निष्प्राण हो जाता है। इसी स्थिति को मृत्यु कहते हैं। मृत्यु मनुष्य के लिए सर्वाधिक भय[1] और पीडा[2] एवं शोक[3] का कारण है—

नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम्। नास्ति मृत्युसमं त्रासः सर्वेषामपि देहिनाम्॥ स्कन्द १।२।४२।१०६–७॥

संसार के समस्त कष्टों से बड़ा कष्ट है मृत्यु। इस कष्ट की कोई उपमा ही नहीं है—

यद् दुःखं मरणे जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित्। पद्म २।६६।१३१।

मनुष्य के जीवन में अनेक अवसरों पर मृत्युतुल्य कष्ट आ सकते हैं। उसकी अल्पमृत्यु के एक सौ योग आसकते हैं। पुराणों में कहा गया है कि मनुष्य के शरीर में एक सौ एक मृत्युएँ सन्निविष्ट हैं, जिनमें से एक तो काल-मृत्यु है और शेष एक सौ

१. यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्। एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्॥ रामा २।१०५।१७।

२. यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति। तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः॥ रामा। २।१०५।१८। दधीचि ने देवताओं से कहा था कि मनुष्यों को मृत्यु के सयम असह्य पीडा का अनुभव होता है और अन्ततः वे पीडा के मारे मूर्च्छित (गतसंज्ञ) हो जाते हैं। भाग०६।१०।२

३. इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्। साहित्यदर्पण ३।१७७। पुत्रादिवियोग-मरणादिजन्मावैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषः शोकः। रसगङ्गाधरः प्रथमाननम्।

आगन्तुक हैं। आगन्तुक मृत्युओं का प्रतीकार भेषज (औषध), जप, होम और दान से हो सकता है, किन्तु जो काल-मृत्यु है उसका कोई प्रतीकार सम्भव नहीं है—

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम। तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः ॥
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः। जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥
पद्म २।६६।१२२-३; स्कन्द १।२।४२।१००-१०२; द्र० वाग्भट कृत अष्टाङ्गसंग्रह सूत्रस्थान ६।११३-४।

कालमृत्यु से आक्रान्त मनुष्य की रक्षा करने में औषध, तपश्चर्या, दान और माता-पिता एवं बान्धव आदि कोई भी समर्थ नहीं है—

नौषधं न तपो दानं न माता न च बान्धवाः। शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥ पद्म २।६६।१२७।

जिस मनुष्य की काल-मृत्यु आ चुकी हो उसकी रक्षा औषध, मन्त्र, होम और जप आदि किसी से भी नहीं हो सकती—

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः। त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवम् ॥ विष्णुस्मृति २०।४६।

ऐसे काल-मृत्यु को प्राप्त मनुष्य को स्वयं धन्वन्तरि भी स्वस्थ नहीं कर सकते—

पीडितं सर्वरोगाद्यै रपि धन्वन्तरिः स्वयम्। स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं न चान्यथा ॥
स्कन्द १।२।४२।१०३-४, तु० पद्म २।६६।१२६।

इस जगत् में जन्म ग्रहण करने के पूर्व माता के गर्भ में ही मनुष्य की आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु निश्चित हो जाती है—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥
स्कन्द ६।६१।१६; तु० पद्म २।८१।४७।

यद्यपि बौद्धों ने आयु-क्षय होने, कर्म-क्षय होने, आयु और कर्म दोनों के क्षय होने तथा उपच्छेद कर्मों (आयुष्यनाशक

कर्मों) से भी मृत्यु होने की बात स्वीकार की है (द्र० वाग्भट कृत अष्टाङ्गसंग्रह-सूत्र स्थान ९।११६), किन्तु पुराणों में कर्मक्षय से ही मृत्यु बतलायी गयी है। जैसे दीपक का तेल समाप्त हो जाने पर उसकी बाती बुझ जाती है, उसी प्रकार सञ्चित कर्मों का भोग पूर्ण हो जाने पर जीवधारी की मृत्यु हो जाती है—

तैलक्षयाद् यथा दीपो निर्वाणमधिगच्छति। कर्मक्षयात् तथा मृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहृतः॥

पद्म २।८१।६४।–५; तु० स्कन्द ६।६१।२७।

भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही है कि विवाह, जन्म और मृत्यु ये तीनों पूर्वतः निश्चित हैं और जब, जहाँ एवं जिससे होने वाले हैं तब वहाँ और उसी से होते हैं। इन्हें कोई टाल नहीं सकता—

त्रयः कालकृताः पाशाः शक्यन्ते नातिवर्तितुम्। विवाहो जन्ममरणं यदा यत्र तु येन तु॥ पद्म २।८१।४०।

काल महाबली है। वह सबको निगल जाता है (कालः कलयते सर्वम्)। काल का न तो कोई मनुष्य प्रेमपात्र है और न द्वेषपात्र। जिसकी आयु पूरी हो जाती है और पूर्वार्जित कर्मों का भोग पूरा हो जाता है उसे वह बलात् उठा ले जाता है—

न कालस्य प्रियः कश्चिद द्वेष्यो वाऽस्य न विद्यते। आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम्॥

विष्णुस्मृति २०।४३; विष्णुधर्मोत्तर १।११७।१०।

जरा और मृत्यु ये दोनों ही दो भेड़ियों के समान हैं जो कि बलवान् और दुर्बल तथा छोटे और बड़े सभी को ग्रस्त करते हैं—

जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव। बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि॥ शान्तिपर्व ३१९।१२।

कोई मनुष्य चाहे वह दुर्बल हो या बलवान्, चाहे शूर-वीर हो या मूर्ख अथवा विद्वान् ही क्यों न हो उसको अपनी यथेष्ट मनोकामनाओं और आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के पूर्व ही मृत्यु उठा ले जाती है—

दुर्बलं बलवन्तं च प्राज्ञं शूरं जडं कविम्। अप्राप्तसर्वकामार्थं मृत्युरादाय गच्छति॥ शान्तिपर्व २२७।२१–२।

मनुष्य जब तक सांसारिक सुख के नाना साधनों और धन-सम्पत्ति के सञ्चय में ही लगा रहता है और जब तक उसकी मनोकामनाओं की तृप्ति भी नहीं हुई रहती, उसके पूर्व ही मृत्यु उसे उसी प्रकार उठा ले जाती है जैसे भेड़िया भेड़ को उठा ले जाता है—

संचिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम्। वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।। शान्तिपर्व २७७।१८—९।

मनुष्य जब तक अपने द्वारा किये गये कर्मों और अपने द्वारा जुटाये हुए सुख-साधनों का फल भी नहीं भोगता और जब तक वह खेत, दुकान और घर की आसक्ति में डूबा ही रहता है तभी उसे मृत्यु उठा ले जाती है—

कृतानां फलमप्राप्तं कार्याणां कर्मसङ्गिनाम्। क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति ।।

शान्तिपर्व २२७।२०—२१, तु० विष्णुस्मृति २०।४२, विष्णुधर्मोत्तर १।११७।९।

मनुष्य यह सोचता रहता है कि मैंने यह कार्य कर लिया है, यह करना है और यह कार्य कुछ हो चुका है और कुछ करना शेष है। इस प्रकार अभिलाषा करते-करते ही मृत्यु उसे उठा ले जाती है—

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं मृत्युरादाय गच्छति ।। शान्तिपर्व २७७।१९—२०।

विविध प्रकार के रोग, सर्प आदि प्राणी, विष और अभिचार आदि ही मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं—

विविधा व्याधयस्तस्य सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा। विषाणि चाभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ।। पद्म २।६६।१५५।

मनुष्य की मृत्यु जल में डूबने, अग्नि से जलने, विष-भक्षण, शस्त्र के आघात, क्षुधा, रोग और पर्वत से गिरने आदि में से किसी भी निमित्त से हो सकती है—

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुत्व्याधिः पतनं गिरेः। निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ।। ब्रह्म २१४।२८—९।

सन्तों, सिद्ध पुरुषों और योगियों की मृत्यु स्वेच्छानुसार होती है (द्र० शान्तिपर्व २९७।२६)। जब कि प्राकृत (अधम) कोटि के मनुष्यों की मृत्यु विष-भक्षण, उद्बन्धन (फाँसी लगाने), अग्नि में जलने अथवा दस्युओं (लुटेरों), दाढ वाले पशुओं (सिंह आदि) या सींग वाले पशुओं आदि के द्वारा मारे जाने से होती है—

विषमुद्बन्धनं दाहो दस्युहस्तात् तथा वधः। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च प्राकृतो वध उच्यते ।। शान्तिपर्व २२७।२५ ।

मनुष्य के आयुष्य और कर्म-भोग के पूरा हो जाने पर जब मृत्यु काल आ जाता है तो उस समय देह में आसक्ति रखने वाले जीवात्मा को यमदूत खींच कर बाहर निकालते हैं—

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे संप्राप्ते मरणे नृणाम् । स्वकर्मवशगो देही कृष्यते यमकिंकरैः ।। स्कन्द १।२।५०।५६ ।

मनुष्य के शरीर से प्राण कैसे निकलता है इस विषय में ब्रह्मपुराण (२१४।३२--३) में कहा गया है कि शरीर में तीव्र वायु द्वारा उद्दीप्त अग्नि की उष्मा बढ़ जाती है और तब वह शरीर के मर्म-स्थलों का भेदन कर देती है। तब खाये हुए अन्न और जल के अधोगमन को रोक कर उदान नामक पवन ऊपर को चढ़ने लगता है।[1] यद्यपि आगे की स्थिति इस पुराण में स्पष्ट नहीं कही गयी है और केवल इतना बतलाया गया है कि तब भीषण आकृति वाले और हाथ में मुद्गर लिए एवं दुर्गन्ध फैलाने वाले यमदूत उसके पास आ जाते हैं जिन्हें देख कर वह कम्पायमान हो उठता है और अपने भाइयों और माता-पिता को पुकारने लगता है, किन्तु उसके कण्ठ से स्पष्ट स्वर नहीं निकलता। उस समय अतिशय त्रास के कारण उसकी आँखें घूमने लगती हैं और उसके मुख से कफ निकलने लगता है। तब अतिशय वेदना का अनुभव करता हुआ उसका प्राण[2] या जीवात्मा उसके शरीर से बाहर निकल जाता है (ब्रह्मपुराण २१४।४२--४५)।

मृत्यु काल में असीम कष्ट का अनुभव उन्हीं मनुष्यों को होता है जो अधर्मी, दुराचारी, पापी, क्रूर और तमोगुणी प्रकृति के होते हैं। जो मनुष्य धार्मिक, सदाचारी और सात्त्विक स्वभाव वाले होते हैं उन्हें मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं भोगना पड़ता।

१. उष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ।।
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुक्तानामम्बुपानामधोगतिनिरोधकृत् ।। ब्रह्म २१४।३२-३ ।

२. नारदपुराणमें प्राणों की स्थिति नाभि के मूल में बतलायी गयी है- नाभिमूले शरीरस्य सर्वे प्राणाश्च संस्थिताः। नारदपुराण पूर्वार्द्ध ४२.११०

उनकी मृत्यु सुख-पूर्वक होती है। उदाहरणार्थ–यह कहा गया है कि जो मनुष्य काम या क्रोध या द्वेष की भावना से ग्रस्त हो बैठने पर भी धर्म का त्याग नहीं करता और शास्त्र-विहित आचरण करता है तथा सौम्य स्वभाव वाला है उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है—

यः कामान्नापि संरभान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥ ब्रह्म २१४।३८।

जिसने कभी अनृत वचन न बोले हों और किसी के प्रेम-सम्बन्ध को न तोड़ा हो तथा जो आस्तिक अर्थात् वेदवचनों को प्रमाण मानने वाला हो और श्रद्धालु हो वह सुख से मरता है—

येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च। आस्तिकः श्रद्दधानश्च सुखमृत्युं स गच्छति॥ ब्रह्म २१४।३६।

जो मनुष्य प्यासे लोगों को पानी और भूखों को भोजन देते हैं, वे यथाकाल सुखपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करते हैं—

वारिदास्तृषितानां ये क्षुधितान्नप्रदायिनः। प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम् ॥ ब्रह्म २१४।३९।

जो मनुष्य देवों और ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहते हैं, दूसरों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष से रहित हैं, शुचि (निष्कलुष और शुद्ध) और वदान्य (अर्थात् दानशील) तथा लज्जालु प्रकृति के हैं वे सखेन मृत्यु को प्राप्त करते हैं—

देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः। शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥ ब्रह्म २१४।३७।

इस तरह के वचनों का यही आशय है कि इस संसार में जितने मनुष्य धार्मिक, सौम्य, दयालु, दानी और शीलसम्पन्न एवं सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं उनको मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं होता और मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी वे सुखी रहते हैं। किन्तु अधर्मी और दुराचारी मनुष्य मृत्यु के समय भी कष्ट भोगते हैं और परलोक में भी उन्हें यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

मृत्यु के समय मनुष्य के प्राण कहाँ से निकलते हैं—इस विषय में भी पर्याप्त विचार किया गया है। महाभारत में बतलाया गया है कि पुण्यात्माओं के प्राण उनके शिरोभाग में स्थित ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके निकलते हैं। जिनका पुण्य मध्यम कोटि का है

उनके प्राण शरीर के मध्योपरि भाग अर्थात् आँख, कान, नाक या मुख से निकलते हैं और पापी तथा अधम कोटि के मनुष्यों के प्राण शरीर के अधोवर्ती छिद्रों (यथा-गुदामार्ग) से निकलते हैं—

ऊर्ध्वं भित्त्वा प्रतिष्ठन्ते प्राणाः पुण्यवतां नृप। मध्यतो मध्यपुण्यानामधो दुष्कृतकर्मणाम् ॥ शान्तिपर्व २९७।२७।

स्कन्दपुराण के अनुसार भी पुण्य कर्म करने वाले मनुष्यों के प्राण शिर (ब्रह्मरन्ध) से अथवा सात छिद्रों (दो आखें, दो नासारन्ध्र, दो कानों के छिद्र और एक मुख) में से किसी एक छिद्र से निकलते हैं। पापियों के प्राण अधो द्वार (गुदा) से विकलते हैं और योगियों के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलते हैं—

शीर्ष्णश्च सप्तभिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत् पुण्यकर्मणाम्। अधश्च पापिनां यान्ति योगिनां ब्रह्मरन्ध्रतः ॥ स्कन्द १।२।५०।६१।

शरीर के नौ छिद्रों को गिनाते हुए अग्निपुराण में कहा गया है कि दो आँखें, दो कान, दो नासिका-रन्ध्र, शिर के ऊपर का ब्रह्मरन्ध्र और मुख—इन आठ छिद्रों में से किसी एक से शुभ कर्म करने वाले सत्पुरुषों के प्राण निकलते हैं। पापकर्म करने वाले मनुष्यों के प्राण अधश्छिद्र जैसे कि गुदा एवं लिङ्ग या योनि के छिद्र से निकलते हैं। जब कि योगियों के प्राण उनकी इच्छानुसार मूर्धा या ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके निकलते हैं—

द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वन्तु सप्तछिद्राणि अष्टमं वदनं तथा। एतैः प्राणा विनिर्यान्ति प्रायशः शुभकर्मणाम् ॥

अधः पायुरुपस्थश्च अनेनाशुभकारिणाम्। मूर्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया ॥ ५ अग्निपुराण ३७।३–५

गरुडपुराण (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण) के धर्मकाण्ड (प्रेतखण्ड) ३१।२६ में बतलाया गया है कि प्राणवायु अतिसूक्ष्म होकर शरीर के नौ छिद्रों एवं रोम-कूपों से निकलता है। इन छिद्रों में से अन्तिम छिद्र-गुदामार्ग से ही पापियों का प्राण निकलता है-

पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्। गरुडपुराण (धर्मकाण्ड प्रे० ख० ३१।२७)।

जीवात्मा इतना सूक्ष्म होता है कि जब वह शरीर से निकलता है उस समय कोई भी मनुष्य उसे अपने चर्मचक्षुओं से देख

ही नहीं सकता। जीवात्मा की सूक्ष्मता और अलक्ष्यता का संकेत करते हुए शंखस्मृति में कहा गया है कि यदि एक बाल के अग्र भाग के सौ भाग करके सौवें भाग को सहस्रधा विभाजित किया जाय और पुनः उस (सहस्रधा विभाजित) बाल के हजारवें भाग के भी सौ भाग करने पर जो सौवाँ भाग बनेगा उससे भी सूक्ष्मतर स्वरूप जीवात्मा का होता है—

बालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा। तस्यापि शतशो भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥

शङ्खस्मृति ७।३१--३२ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ३ पृ० १४२७)।

शङ्खस्मृति के इस वचन में जीवात्मा की सूक्ष्मता का जो वर्णन है वह श्वेताश्वतर उपनिषत् ५।९ के नीचे उद्धृत वचन से भी अधिक युक्तिसंगत है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥

जीवात्मा पाञ्चभौतिक शरीर से जब बाहर निकलता है तो तब भी उसकी जो सूक्ष्म आकृति होती है, वह पञ्च तन्मात्राओं एवं मन, बुद्धि और अहङ्कार तथा अपने पुण्यकर्मों एवं पापकर्मों के पाश-बन्धनों से युक्त रहती है, जैसा कि स्कन्दपुराण अधोलिखित वचन में भी कहा गया है—

पञ्चतन्मात्रसहितः समनोबुद्ध्यहंकृतिः। पुण्यपापमयैः पाशैर्बद्धो जीवस्त्यजेद् वपुः ॥ स्कन्द १।२।५०।६० ।

पाञ्चभौतिक शरीर से बाहर निकल कर वायु (प्राणवायु) के साथ अग्रसर होने वाला जीवात्मा अपने कर्मों के भोग के लिए अन्य सूक्ष्म शरीर धारण करता है। यह सूक्ष्म शरीर माता-पिता के शुक्रशोणित से बनने वाले शरीर से भिन्न होता है—

वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते। तत्कर्म-यातातनार्थं च न मातृपितृसंभवम् ॥ ब्रह्म २१४।४६ ।

मनु के अनुसार पाञ्चभौतिक देह से निकल कर जीवात्मा जिस सूक्ष्म शरीर को धारण करता है वह पञ्चतन्मात्राओं (अर्थात् पञ्चमहाभूतों के अतिसूक्ष्म तत्त्वों) से निर्मित होता है। इसी शरीर से वह याम्ययातनाएँ भोगता है— ....

पञ्चभ्य एव भूतेभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् । शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ।। १६
तेनानुभूय ताः यामीः शरीरेणेह यातनाः । मनु १२।१६—१७ ।

ब्रह्मपुराण में भी प्रायः उक्त तथ्य को ही निम्नलिखित श्लोकों में व्यक्त किया गया है—

विहाय सुमहत् कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम् । २९
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम् ।। दृढं शरीरमादत्ते सुखदुःखोपभुक्तये ।। ब्रह्म २१४।२९—३०

जीवात्मा का यह पञ्चतन्मात्रात्मक सूक्ष्म शरीर संकल्प और अहंकार से युक्त, ज्योतिःस्वरूप और अङ्गुष्ठ-परिमित आकार का होता है—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कार समन्वितो यः । श्वेताश्वतरोपनिषत् ५।८ ।

स्कन्दपुराण के एक उद्धरण के अनुसार शरीर से निकलते ही जीवात्मा इस अङ्गुष्ठ-परिमित 'आतिवाहिक' शरीर को ग्रहण कर लेता है और इस शरीर के निर्माण में उसके प्राणों को ही उपादान बतलाया गया है—

तत्क्षणात् सोऽथ गृह्णाति शरीरं चातिवाहिकम् । अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु स्वप्राणैरेव निर्मितम् ।। स्कन्द १।२।५०।६२ ।

इस अतीन्द्रिय शरीर से ही जीवात्मा अपने द्वारा किये हुए धर्म और अधर्म के परिणाम-स्वरूप सुख-दुःख को भोगता है—

धर्माधर्मोपभोगाय तत् तृतीयमतीन्द्रियम् । तत् त्रिभेदं शरीरं हि धर्मविद्भिरिहोच्यते ।। पद्म ५।१००।२३ ।

जीवात्मा के द्वारा अपने कर्मानुरूप यातना भोगने के लिए ग्रहण किये गये इस सूक्ष्म शरीर को ही यमदूत यम की सभा में ले जाते है—

यत्तच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम् । तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति ।। ब्रह्म २१४।७० ।

इस सूक्ष्म शरीर से ही पापकर्म करने वाला मनुष्य याम्य मार्ग की यातनाएँ भोगते हुए यमराज के पास पहुँचता है, जब कि धार्मिक जन प्रसन्नता पूर्वक और सुख-भोग करते हुए धर्मराज के पास जाते हैं—

तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भृशम् । सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो यमक्षये ।। ब्रह्म २१४।३१ ।

यह बात उल्लेखनीय और ध्यान में रखने योग्य है कि केवल मनुष्य ही मृत्यु के पश्चात् एक 'आतिवाहिक' सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) शरीर धारण करते हैं और उन्हीं के इस शरीर को यम-पुरुषों के द्वारा याम्यपथ से यमराज के पास ले जाया जाता है। अन्य प्राणियों के शरीर को नहीं, क्योंकि अन्य प्राणी तत्काल दूसरी योनि में जन्म पा जाते हैं—

केवलं तु मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते ।। २

याम्यैर्नरैर्मनुष्याणां तच्छरीरं भृगूत्तम । नीयते याम्यमार्गेण नान्येषां प्राणिनां द्विज ।। विष्णुधर्मोत्तर २। ११३।२--३ ।

सामान्य मनुष्य यह नहीं देख सकता कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा कहाँ जाता है और उसकी क्या गति होती है ? मनुष्य तो क्या बड़े-बड़े तपस्वी भी सरलतया इसका उत्तर नहीं देसकते । इसीलिए पुराणों में यह कहा भी गया है—

न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः । तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ।।

ब्रह्माण्ड २।२८।६८-९; वायु पु० ५६।६०; मत्स्य १४१।५८ ।

तथापि इस प्रश्न का उत्तर प्राचीन ऋषियों ने दिया है और हम अपने पूर्वज ऋषियों के आप्त वचनों को प्रमाण मानते हैं। अपने पूर्वजों के आप्त वचनों को संकर या वर्णसंकर सन्तान ही संदेह की दृष्टि से देखेंगे, अन्य नहीं । शास्त्रीय वचनों में अनास्था नास्तिकों और अधार्मिकों में देखी जा सकती है और आधर्मिकों की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में सन्देह व्यक्त किया गया है।[1] ऐसे अधार्मिक हमारी दृष्टि में जातिबहिष्कृत और जातिच्युत हैं और उनको इस विषय में कोई उपदेश हम नहीं दे सकते । ऐसे लोगों को उपदेश देने से उपाध्याय (उपदेशक) को ही दोष लगता है—

---

१. यथा - वेङ्कटेश्वर के दर्शन न करने वाले मनुष्य के विषय में पुराणकार कहता है—.

संकरः स तु विज्ञेयो न पितुर्बीजसंभवः । स्कन्द २।१।१६।४३ ।

उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित्। उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य विद्यते ।। स्कन्द २।१।१९।३६।

अतः यहाँ पर हम जो कुछ भी लिख रहे हैं वह जिज्ञासु आस्तिकों के लिए ही है। भारतीय संस्कृति के विद्वान् प्राचीन काल से ही ऋषियों के वचनों को प्रमाण मानते आये हैं। भर्तृहरि ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' के ब्रह्मकाण्ड में कहा है कि जो ऋषि अतीन्द्रिय और असंवेद्य भावों या विषयों को भी अपने आर्षचक्षु (ज्ञानचक्षु) से देख कर उसका यथार्थ वर्णन कर डालते हैं। उनके वचनों को अनुमान से बाधित नहीं किया जा सकता अर्थात् उनके वचनों का तर्क के द्वारा खण्डन नहीं किया जाना चाहिए—

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा। ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ।।

पातञ्जल योगदर्शन (३।३३) के अनुसार योगी अपने प्रातिभ ज्ञान से सब-कुछ ज्ञात कर लेता है। इस सूत्र के व्यासभाष्य में स्पष्ट कहा गया है कि योगी अपने प्रातिभ ज्ञान से सूक्ष्म, व्यवहित (गूढ) दूरवर्ती तथा अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) के विषयों (घटनाओं और दृश्यों) को देख सकता है। इसी तथ्य को श्रीमद्भागवत पुराण (१०।६१।२१) में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्। विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ।।

अत; प्राचीन आचार्यों के वचन पूर्णतः सत्य हैं। मनुष्य के शरीर से बाहर निकल कर जीवात्मा की क्या स्थिति होती है वह कहाँ जाता है और किस योनि में उत्पन्न होता है[1] यह सब योगी अपने दिव्य चक्षुओं से देख सकते हैं—

च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु। पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण २।११६।१०; तु० अग्नि ३७१।१०।

इस तरह यह स्पष्ट है कि योगी अपने योगबल से जीवात्मा की गति-विधियों को जानते हैं।के इस अतिरिक्त पुराणकारों

के अनुसार प्राचीन भारतीय मनीषियों में सनत्कुमार को भी मृतात्माओं के परलोक में आवागमन आदि विषयक ज्ञान था।[1] अतः पुराणों में प्राचीनकाल के सनत्कुमार जैसे अतीन्द्रियज्ञान-सम्पन्न मनीषियों तथा योगियों के द्वारा प्रत्यक्ष देख कर बतलाये गये तथ्यों के आधार पर ही जीवात्मा के विषय में यथार्थ निरूपण किया गया है।

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा एक सूक्ष्म शरीर धारण करता है। इस तथ्य की पुष्टि पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा की गयी शोध से भी हो चुकी है यथा-अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक खोखले पारदर्शी सिलण्डर की हवा निकाल कर उसको मन्द प्रकाश वाले एवं कोहरे की तरह छा जाने वाले एक रासायनिक घोल से पूरित करके जब उसमें रखे गये चूहे और मेंढक को विद्युत के स्पर्शाघात से निष्प्राण किया तो उनकी तद्वत् आकृति कुहरे में तैरने लगी थी। ऐसे वैज्ञानिक प्रयोग से मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर धारण की पुष्टि होती है। पुनश्च, जो मनुष्य मृत्यु के कुछ ही क्षणों के पश्चात् उसी शरीर में पुनर्जीवित हुए हैं उनके अनुभवों के आधार पर तथा प्लेञ्चेट आदि के माध्यम से आहूत प्रेतात्माओं से परलोक के विषय में पूछे गये प्रश्नों के कुछ उत्तरों से भी यह विदत होता है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का जीवात्मा अनेकत्र विचरण करता है तथा अपने मृत पूर्वजों सहित नाना दृश्यों का अवलोकन करता है। इत्यादि। इसी तरह सम्पूर्ण विश्व में अनेकत्र कतिपय जातिस्मर या पूर्वजन्म की स्मृति रखने वाले अनेक मनुष्यों के द्वारा अपने पूर्वजन्म के पारिवारिक जनों तथा अपने साथ घटित घटनाओं का जैसा यथार्थ विवरण दिया जाता है, उसके आधार पर अब पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है। इस तरह आधुनिक युग के मनोविदों और वैज्ञानिकों की शोध से प्राप्त निष्कर्ष से प्राचीन भारतीय मनीषियों के इस दर्शन की पुष्टि होती है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा अपने कर्मानुसार सूक्ष्म शरीर धारण करके स्वर्ग या नरक भोगता है और तत्पश्चात् उसका पुनर्जन्म होता है या उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

---

१. द्र०—सनत्कुमार; प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा। गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि॥
ब्रह्माण्ड २।२८।९२; वायु पूर्वार्द्ध ५६।८३; मत्स्य १४१।७६-७।

मृत्यु के पश्चात् पापी मनुष्यों के जीवात्मा को यमदूत अति कष्टप्रद याम्य-मार्ग से ले जाकर यमराज की सभा में उपस्थित करते हैं। यमराज की सभा में मनु, प्रजापति, पराशर, अत्रि, औद्दालकि, आपस्तम्ब, बृहस्पति, इन्द्र, गौतम, शङ्ख लिखित, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह आदि दिवङ्गत धर्मशास्त्रज्ञ मुनिगण यम के साथ मिल कर पापियों लिकेए दण्ड निश्चित करते हैं।[1] उस सभा में इस संसार से दिवङ्गत होने के पश्चात् गये हुए अनेक राजा जैसे उशीनर, सुधन्वा, वृषपर्वा, जयद्रथ रजि, सहस्रजित्, कुक्षि, दृढधन्वा, रिपुञ्जय, युवनाश्व, दन्तवक्त्र, नाभाग, रिपुमङ्गल, करन्धम, धर्मसेन, परमर्द, परान्तक आदि भी धर्माधर्म विषयक विचार में यम का सहयोग करते हैं।[2] उस सभा के सभासदों में धार्मिक, सदाचारी और प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले न्यायप्रिय राजाओं के अतिरिक्त स्वधर्म का सम्यक् पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी पहुँचते हैं।[3] वहाँ पापियों के लिए उनके पाप-कर्म के अनुरूप यातना निश्चित की जाती है। तत्पश्चात् उन्हें उन्हीं यमदूतों के साथ तत्काल, भूलोक में भेज दिया जाता है, जहाँ अन्त्येष्टि-कर्ताओं के द्वारा किये गये दशाह पर्यन्त पिण्डदान से उनके सूक्ष्म शरीर के दश-गात्र (दश अङ्ग-प्रत्यङ्ग) बनते हैं। गरुडपुराण (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण) के धर्मकाण्ड (प्रेतखण्ड) ६।६९—७१ में कहा गया है कि प्रथम दिन के पिण्डदान से प्रेतात्मा की भोगदेह का मूर्धा (शिर) बनता है, दूसरे दिन के पिण्डदान से ग्रीवा (गरदन) और स्कन्ध (कन्धे) बनते हैं, तीसरे दिन के पिण्ड से हृदय बनता है, चौथे दिन के पिण्ड से पीठ बनती है, पाँचवें दिन के पिण्ड से नाभि, छठें दिन के पिण्ड से कटि-प्रदेश, सातवें दिन के पिण्ड से गुप्ताङ्ग, आठवें दिन के पिण्ड से ऊरू (जाँघें) और नौवें दिन के पिण्ड से तालू और पैर बनते हें तथा दशवें दिन के पिण्डदान से उसकी क्षुधा उत्पन्न होती है—

प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते ॥

---

१. द्रष्टव्य—बराहपुराण १९५।१३–१७ (काशिराज ट्रस्ट, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण)।

२. द्रष्टव्य —स्कन्द ४।८।९५–९७
३. द्रष्टव्य —स्कन्द ४।८।९१–९४।

ग्रीवास्कन्धौ द्वितीये च तृतीये हृदयं भवेत् ।। चतुर्थेन भवेत् पृष्ठं पञ्चमे नाभिरेव च ।
षट्सप्तमे कटीगुह्यमूरू चाप्यष्टमे तथा । तालू पादौ च नवमे दशमेऽह्नि क्षुधा भवेत् ।।
गरुडपुराण(धर्मकाण्ड प्रे० ख०) ९।६९—७१ ।

एकादशाह और द्वादशाह के दिन दिये जाने वाले पिण्डों को प्रेत आहार रूप में खाता है—

एकादशाहे द्वादशाहे प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् । गरुडपुराण (धर्मकाण्ड, प्रे० ख०) ६।७४ ।

तेरहवें दिन यमदूत उसको यमलोक की महायात्रा के लिए ले चलते हैं—

त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते च महापथे । गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रे० ख० ९।७६ ।

यह स्मरणीय है कि मृत्यु के पश्चात् केवल मनुष्यों को हीप्रेत रूप में कुछ काल तक रहना पड़ता है और मात्र उन्हीं के प्रेतावस्था वाले जीवात्मा को यमदूतों के द्वारा यमलोक में ले जाया जाता है । अन्य प्राणी मृत्यु के पश्चात् न तो प्रेत होते हैं और न उन्हें यमलोक में ले जाया जाता है । मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी योनियों के प्राणी मृत्यु के पश्चात् पुनः किसी योनि में जन्म ग्रहण करते हैं । केवल मनुष्य के ही प्रेत होने की बात सुनी जाती है, अन्य जन्तुओं के विषय में ऐसी कोई बात नहीं सुनी गयीहै—

मनुष्या एव गच्छन्ति यमलोकं न चापरे । ७२ मरणानन्तर तेषां जन्तूनां योनिपूरणम् ।
तथा हि प्रेता मनुजाः श्रूयन्ते नान्यजन्तव. ।। स्कन्द १।२।५०।७२–३

पशु-पक्षी आदि नाना तिर्यक योनियों के प्राणी मृत्यु के पश्चात् वायु रूप में विचरण करते हुए पुनः किसी योनि-विशेष में जन्म ग्रहण हेतु उस योनि के गर्भ में आ जाते हैं । केवल मनुष्यों को ही मृत्यु के अनन्तर यमलोक में ले जाया जाता है—

मरणानन्तरं प्रोक्तं तिरश्चां गर्भसंभवम् । वायुभूताश्च ते गर्भं प्रपद्यन्ते न संशयः ।
मनुष्यस्तु मृतो राम नीयते यममन्दिरम् ।। ९ विष्णु धर्मोत्तर २।११३।८—९ ।

अपने शुभ और अशुभ कर्म का अच्छा-बुरा परिणाम भी केवल मनुष्य को ही इहलोक में और परलोक में भी भोगना पड़ता है। अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मों के फलस्वरूप केवल मनुष्य को ही स्वर्ग या नरक भोगना पड़ता है, अन्य प्राणियों को नहीं। शुभ अथवा अशुभ कर्मों का सञ्चय भी केवल मनुष्य ही करते हैं अर्थात् केवल मनुष्यों के ही शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव सञ्चित होता रहता है। अतः मात्र मनुष्य ही अपने कर्मों के फलभोग हेतु यमलोक में जाते हैं अन्य योनियों के प्राणी वहाँ नहीं जाते, क्योंकि वे तो मनुष्य योनि में किये गये अपने कर्मों का फल ही तत्तत् योनियों में जन्म लेकर भोगते हैं—

मनुष्याः प्रतिपद्यन्ते स्वर्गं नरकमेव वा। नैवान्ये प्राणिनः केचित् सर्वं ते फलभोगितः॥
शुभानामशुभानां वा कर्मणां भृगुनन्दन। सञ्चयः क्रियते लोके मनुष्यैरेव केवलम्॥
तस्मान् मनुष्यस्तु मृतो यमलोकं प्रपद्यते। नान्यः प्राणी महाभाग फलयोनौ व्यवस्थितः॥

विष्णुधर्मोत्तर २।११३।४–६

किन्तु मृत्यु के पश्चात् सभी मनुष्यों के लिए यमलोक में जाना अनिवार्य नहीं है। केवल पापात्मा ही वहाँ ले जाये जाते हैं। पुण्यात्माओं को भगवान् विष्णु के पार्षद स्वयं आकर अपने साथ ले जाते हैं और वे मार्ग में धर्मराज की सभा में होते हुए उनके द्वारा सम्मानित होकर स्वर्ग-लोक अथवा वैकुण्ठ लोक को प्राप्त होते हैं। यमलोक में कौन-कौन नहीं जाते-इसकी चर्चा अनेकत्र की गयी है। उदाहरणार्थ --जो मनुष्य धर्म और अधर्म विषयक शास्त्रोक्त नियोगों (आदेशों) का पालन करते हैं वे यमलोक में नहीं जाते—

ये नियोगांश्च शास्त्रोक्तान् धर्माधर्मविमिश्रितान्। पालयन्तीह ये वैश्य! न ते यान्ति यमालयम्॥ पद्म ३।३१।३९।

जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से किसी भी स्थिति में दूसरों को पीडा नहीं पहुँचाते वे भी यमलोक में नहीं जाते—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम्॥ पद्म ३।३१।२५।

जो मनुष्य इष्ट धर्मों (यज्ञ, देवोपासना, अतिथि सत्कार आदि) तथा पूर्त धर्मों (कूप, वापी, तालाब, धर्मशाला, देवालय आदि का निर्माण और वृक्षारोपण आदि धर्मों) को करते हैं, नित्य पञ्चयज्ञों को करते हैं और स्वभावतः दयालु हैं वे यमलोक में नहीं जाते—

इष्टापूर्तरता ये च पञ्चयज्ञरताश्च ये । दयान्विताश्च ये नित्यं नेक्षन्ते ते यमालयम् ।। पद्म ३।३१।४२ ।

मृत्यु के पश्चात् सत्पुरुष अपने कर्मानुसार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं । याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आत्मज्ञ, शौचाचार के नियमों का पालन करने वाला दान्त, (आत्मसंयम वाला), तपस्वी, जितेन्द्रिय, धर्म-कर्म करने वाला, वेदविद्या का ज्ञाता और सात्त्विक-प्रवृत्ति का मनुष्य देवयोनि को प्राप्त करता है—

आत्मज्ञः शौचवान् दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः । धर्मकृद् वेदविद्यावित् सात्त्विको देवयोनिताम् ।।
याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३७ ।

योगयुक्त होकर प्राणत्याग करने वाला संन्यासी और शत्रु को पीठ दिखाये बिना निर्भीक होकर युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त करने वाला योद्धा—केवल ये ही दो ऐसे मनुष्य हैं जो कि सूर्यमण्डल का भी भेदन करके आगे निकल जाते हैं—

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।।
उद्योगपर्व ३३।६१ ।

उपर्युक्त पुण्यत्माओं को अपने-अपने सत्कर्मानुरूप दिव्य-लोकों की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य पापी, अधर्मी, दुराचारी, निर्दय, क्रूर और दुष्ट होते हैं वे अपने दुष्कर्मों का दुष्परिणाम याम्य मार्ग में तो भोगते ही हैं तत्पश्चात् वे नरक में यातना पाते हैं और तदनन्तर नाना कुत्सित योनियों में जन्म प्राप्त करते हैं । सत्कर्म करने वाला सदाचारी मनुष्य अपने धर्माचरण के प्रभाव से इस संसार में तो सुखी और यशस्वी रहता ही है और साथ ही परलोक में ही नहीं, अगले जन्म में भी वह सुखी रहता है जब

कि दुष्कर्म करने वाले पापी और अधर्मी मनुष्य इस लोक में भी निन्दित और दुःखीः रहते हैं और मृत्यु के पश्चात् यमलोक की महायात्रा में भी वे दुःख पाते हैं तथा तदनन्तर विभिन्न नरकों में कठोर यातनाएँ भोगने के पश्चात् नाना कष्टप्रद योनियों में पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। प्रत्येक मनुष्य को शुभाशुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। कर्म उसका साथ नहीं छोड़ता।

कर्म-फल की अपरिहार्यता को अनेक तरह से व्यक्त किया गया है। मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म सदा उसके साथ रहता है और उसके पीछे-पीछे चलता है—

शेते सह शयानेन पुरा कर्म यथाकृतम्। उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ॥ पद्म २।८१।५६।

जिसने पहले भी शुभाशुभ कर्म किया हो वह उसका फल भी उसी तरह का भोगता है—

येनैव यद् यथा पूर्वं कृतं कर्म शुभाशुभम्। स एव तत्तथा भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मनः ॥ स्कन्द ६।६१।१८।

जिसने जिस काल में, जिस देश में, जिस वय (अवस्था) में जैसा शुभशुभ कर्म किया हो वह उसी तरह की स्थिति में तदनुरूप फल भोगता है—

यस्मिन् काले च देशे च वयसा यादृशेन च। कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥
स्कन्द १।२।५०।५५।

जिस मनुष्य को अपने कर्मानुसार सुख या दुःख का भोग जहाँ पर करना है उसको दैव मानो बलात् रस्सी से बाँध कर वहाँ पहुँचा ही देता है—

येन यत्रोपभोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेव वा। स तत्र बद्ध्वा रज्ज्वेव बलात् तत्रैव नीयते ॥
पद्म २।८१।५९–६०; स्कन्द ६।६१।२५

कर्मों का फल मनुष्य की भावना के अनुसार ही मिलता है। उसको कुछ कर्मों का फल इसी लोक में मिल जाता है, कुछ का परलोक में और शेष कुछ ऐसे भी कर्म हैं जिनका फल इहलोक और परलोक में भी भोगना ही पड़ता है—

विपाकः कर्मणां प्रेत्य केषाञ्चिदिह जायते । इह वामुत्र वैकेषां भावस्तत्र प्रयोजनम् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति ३।१३३ ।

उपर्युक्त वचनों में जो तथ्य है वह त्रिकालिक सत्य है । दुष्कर्म करने वाले दुष्ट मनुष्य अपने जीवन काल में नाना आधि-व्याधियों से पीडित होते हैं, समाज में निन्दित जीवन बिताते हैं और यदा-कदा राजदण्ड भी भोगते रहते हैं । इसके अतिरिक्त उन्हें परलोक में यमराज के द्वारा दण्डित किया जाता है और नाना नारकीय यातनाएँ भोगने के पश्चात् वे अपने शेष पाप का दुष्परिणाम अगले जन्मों में भी भोगते हैं ।

जो मनुष्य आत्मज्ञानी हैं किन्तु प्रमाद वश पाप कर बैठते हैं उनको उनका गुरु प्रायश्चित्त करवा कर अनुशासित करता है । जो दुष्ट मनुष्य अपने पापों का स्वयं प्रायश्चित्त नहीं करते उन्हें राजा दण्डित करता है । किन्तु जो प्रच्छन्न पापी हैं जिनके पाप का ज्ञान न तो गुरु को हो पाता है और न राजा को, उनके पापों की सूचना चित्रगुप्त के दरबार में दिव्य व्यवस्था से अङ्कित हो जाती है और परिणामतः उन्हें यमराज के द्वारा दण्डित किया जाता है—

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् । इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ।।

जिस प्रकार विभिन्न धातुओं को धमन भट्ठियों में तब तक तपाया जाता है जब तक कि उनका मल पिघल कर छूट नहीं जाता उसी प्रकार पापियों को नरकों में तब तक यातना दी जाती है जब तक कि तीव्र सन्ताप के मारे उनके दुष्कर्म-जनित दुष्प्रभाव दूर नहीं होते—

स्वमलप्रक्षयाद् यद्वदग्नौ ध्माम्यन्ति धातवः । तथैव जीविनः सर्वे आकर्म प्रक्षयाद् भृशम् ।।

नारदपुराण पूर्वार्द्ध ३२।३८, तु० शिवपुराण ५।९।२ ।

नारकीय यातनाओं का जो भयावह वर्णन पुराणों में किया गया है उसे हृदयङ्गम करके जन-सामान्य की पापकर्म की प्रवृत्ति बहुत कुछ नियन्त्रित हो जाती है ।

भारतीय मनीषियों का यह दृढ विश्वास रहा है कि मनुष्य के द्वारा इहलोक में किये गये कर्मों का फल उसके जीवात्मा को परलोक में और बहुधा अगले जन्मों में भी भोगना पड़ता हैं—

इह चैव कृतं यत्तु तत्परत्रोपभुज्यते । वराहपुराण १९२।२२ ।

पापकर्म का जो फल मनुष्य को अगले जन्म में भोगना पड़ता है उसके विषय में नास्तिकों, पापियों और मूर्खों के मन में सन्देह रहता है । अतः उनके सन्देह को दूर करने के लिए धर्मग्रन्थों में कर्मविपाक के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है ।[१]

मनुष्य के पाप कर्मों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है—मानसिक, वाचिक और कायिक । मानसिक पापकर्म में पराये धन को पाने की इच्छा करना, दूसरे के अनिष्ट की कामना और वितथाभिनिभेश (किसी वस्तु के विषय में निरर्थक उत्सुकता या आग्रह की भावना) ये तीन मानस पाप हैं । कठोर वचन बोलना, अनृत बोलना, चुगली करना और अप्रासंगिक एवं असम्बद्ध बातें करना—ये चार तरह के मानस पाप हैं । दूसरे के धन का चोरी से या बलात् अपहरण, विधि-विधान रहित हिंसा और परस्त्री का सेवन-ये तीन कायिक (शरीरिक) पापकर्म हैं (द्र० मनु स्मृति १२।५–७) । शारीरिक पापकर्म के प्रभाव से मनुष्य नरक भोगने के पश्चात् पुनर्जन्म में स्थावर (वृक्ष-लता आदि) की योनि में जन्म पाता है, वाचिक पापकर्म के फलस्वरूप पशु-पक्षियों की योनि में और मानसिक पापकर्म के फलस्वरूप अगले जन्म में अन्त्यज योनियों में जन्म पाता है (द्रष्टव्य— मनुस्मृति १२।९; याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३१, १३४–६) । किस पाप के परिणाम स्वरूप किस योनि में जन्म हो सकता है इस विषय में मनुस्मृति १२।३९–७४, याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३२– ४०, मार्कण्डेयपुराण १५।१–३९, ब्रह्मपुराण २१७।३२–११२ स्कन्दपुराण १।२।५१।४–३२, पद्मपुराण तथा शातातप स्मृति १—५ अध्याय आदि में विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

---

१. किन्त्वत्र नास्तिकाः पापाः सन्दिह्यन्तेऽल्पचेतनाः । तेषां निःसंशयकृते वद कर्मफलं हि यत् ॥

स्कन्द १।२।५१।२ ।

पूर्वजन्म के पापी जब नरक भोगने के पश्चात् भूलोक में मनुष्य रूप में जन्म पाते हैं तो पूर्वजन्म के अतिशय पापी स्वभाव के कारण वर्तमान जन्म में भी वे कुछ न कुछ पापाचरण करते ही हैं। पुराणकारों ने कुछ पापियों के पापात्मक आचरण के आधार पर यह कल्पना की है कि वे नरक भोगने के पश्चात् पृथिवी में मनुष्य रूप में पुनर्जन्म पाये हुए हैं। यथा—मार्कण्डेय पुराण (१५।४०—४२) में कहा गया है कि दूसरों की निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरों के मर्मों पर आघात करना, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्रीसेवन, परधनहरण, अशुचिता, देवताओं की निन्दा करना, धोखा देकर दूसरों को ठगना, कृपणता, नर-हत्या करना और जो भी आचरण निषिद्ध हैं उन्हीं में प्रवृत्त होना और उन्हीं की प्रशंसा करना— ये सब नरक भोग कर मनुष्य योनि में जन्म पाये हुए पापी मनुष्यों के लक्षण हैं—

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मोपघट्टनम्। नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥ ४० ॥
परस्वहरणाशौचं देवतानां च कुत्सनम्। निकृत्य वञ्चना नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः ॥ ४१ ॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्ति च प्रशंसताम्। उपलक्षणानि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेय पुराण १५।४०—४२।

इसके विपरीत जो सद्गुण-सम्पन्न, सदाचारी मनुष्य अपने पूर्वजन्म के सत्कर्मों के फलस्वरूप पृथिवी में पुनः मनुष्य योनि में जन्म पाते हैं उनकी अलग पहचान उनके चारित्रिक गुणों से होती है। उदाहरणार्थ—प्राणियों के प्रति दया, सद्व्यवहार, परलोक सुधारने के लिए सत्कर्म करने की प्रवृत्ति, सत्य और हितकर वचन बोलना, वेद को प्रमाण मानना, गुरुजनों, देवों, ऋषियों और सिद्ध-साधु-सन्तों की पूजा, सत्सङ्गति, सत्कर्मों में निरन्तर संलग्न रहना, मित्रता की भावना रखना और सद्धर्मों का आचरण आदि गुण स्वर्ग भोग कर पृथिवी में मानव रूप में पुनर्जन्म पाये हुए मनुष्यों के लक्षण समझने चाहिए (द्र० मार्कण्डेय पुराण १५।४३—५)।

भू० ३

स्वर्ग और नरक जाने वाले मनुष्यों के अतिरिक्त कतिपय ऐसे प्रबुद्ध मनुष्य भी होते हैं जो अपने ज्ञान, अपनी साधना अथवा अपनी भक्ति के बल पर ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं या दूसरे शब्दों में जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाते हैं और सदा के लिए उन्हें मुक्ति मिल जाती है। पुराणों में अनेकत्र यह कहा गया है कि जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान हो जाय या मृत्यु के पश्चात् जिसके निमित्त गया में श्राद्ध कर दिया जाय या जो गोग्रह अर्थात् दस्युग्रस्त गायों को उन दस्युओं से मुक्त कराने में वीरगति को प्राप्त हो या गोगृह (गोशाला या गोष्ठ) में मृत्यु को प्राप्त हो तथा जो कुरुक्षेत्र में जाकर निवास करे उसको मुक्ति सुलभ होती है–

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे (गोगृहे) मरणं तथा। वासः पुसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥

इसके अतिरिक्त अयोध्या, मथुरा, माया (हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारका–इन सात पुरियों में मोक्ष-साधना के उद्देश्य से निवास करने वाला मनुष्य (यदि वहाँ रह कर कोई वज्रलेप बन जाने वाला पाप नहीं करता तो वह) भी मोक्ष पा सकता है।

स्वर्ग या नरक में जाने वाले एवं पुनर्जन्म पाने वाले मनुष्यों के अतिरिक्त कुछ अभागे मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो सद्गति के अभाव में प्रेतयोनि में ही पड़े रह जाते हैं। ये प्रेतयोनि के जीव देवयोनियों में गिनाये गये भूत, पिशाच आदि से भिन्न होते हैं। प्रायः वे ही मनुष्य मृत्यु के पश्चात् प्रेत होते हैं जिनकी अन्त्येष्टि ठीक से नहीं हो पाती और जिनके क्रिया-कर्म करने वाले पुत्रादि के अभाव में सपिण्डीकरण श्राद्ध तक के कृत्य नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त जिन मनुष्यों का निधन अपमृत्यु के कारण होता है वे भी प्रेत होते हैं —

अपमृत्युहतानां च सर्वेषामपि देहिनाम्। प्रेतत्वं जायते ...... ॥ स्कन्द ६।२२२।२३।

अपमृत्यु से जिनका निधन होता है उनकी चर्चा करते हुए यह कहा गया है कि विष–भक्षण से, अग्नि से जलने से, आत्म-हत्या करने से. दाढ वाले पशुओं, यथा–सिंह आदि के द्वारा काटे या खाये जाने से अथवा सींग वाले पशुओं के द्वारा मारे जाने

से जिन मनुष्यों की मृत्यु होती है वे निःसन्देह प्रेत होते हैं (स्कन्द ६।२०४।२४)। जो योद्धा युद्ध में शत्रु को पीठ दिखाने पर मारे जाते हैं वे भी प्रेत होते हैं—

असंशयं सहस्राक्ष हता युद्धे पराङ्मुखाः। प्रेतत्वं यान्ति ते सर्वे देवा वा मानुषा यदि ॥

स्कन्द ६।२०४।२३।

जो योद्धा युद्ध में पलायन करते हुए पराङ्मुख होने पर मारे जाते हैं अथवा शत्रु के सम्मुख रहते हुए भी उसके द्वारा मारे जाते समय दीनता प्रकट करते हैं अथवा शत्रु के प्रहारों से जर्जर हो जाने पर पश्चात्ताप करते हैं वे भी प्रेत होते हैं—

पराङ्मुखाश्च हन्यन्ते पलायनपरायणाः। ते भवन्ति नराः प्रेता एतदाह पितामहः ॥ १९

सम्मुखा अपि ये दैन्यं हन्यमाना वहन्ति च। पश्चात्तापं च वा कुर्युः प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ २०

तेऽपि प्रेता भवन्तीह मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्। स्कन्द ६।२२२।१९—२१।

अन्य मनुष्यों में से भी कुछ ऐसे पापी हैं जो मृत्यु के पश्चात् प्रेत हो सकते हैं। जो मनुष्य स्वधर्म में स्थित नहीं रहते, जो विभिन्न प्रकार के पाप करते हैं. जो अनैतिक और अन्यायी हैं और धर्मविरुद्ध आचरण करते हैं वे भी मृत्यु के पश्चात् प्रेत हो सकते हैं। जो मनुष्य कामचारी या स्वेच्छाचारी होकर या लोभवश अपने कुलधर्म अथवा देशधर्म को त्याग कर अन्यथा आचरण करता है या अन्य कुल का अथवा अन्य देश का धर्म अपना लेता है वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत होता है—

कुलदेशोचितं धर्मं यस्त्यक्त्वान्यत् समाचरेत्। कामाद् वा यदि वा लोभात् स प्रेतो जायते नरः ॥

स्कन्द ६।१८।३९।

जो मनुष्य अपने हितैषी गुरु तथा धर्मोपदेश करने वाले आचार्य के हितावह वचनों का पालन नहीं करता वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत होता है—

गुरोर्धर्मोपदेष्टुश्च नित्यं हितमभीप्सतः । न करोति वचस्तस्य स प्रेतो जायते नरः ।। वराह १७२।४९ ।

जो मनुष्य सनातन धर्म छोड़ कर पाषण्डाश्रम अर्थात् बौद्धमठादि में चला जाता है, जो मद्यपान, परस्त्रीगमन अथवा वृथा मांसभक्षण (देवों एवं पितरों को अर्पित मांस के अतिरिक्त जिह्वा-लौल्य से मांसभक्षण) करता है वह भी प्रेत होता है—

पाषण्डाश्रमसंस्थश्च मद्यपः पारदारिकः । वृथा मांसरतो नित्यं स च प्रेतोऽभिजायते ।।
वराह १७·।४४।

यदि कोई ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है और उस शूद्रान्न के उदरस्थ रहते हुए मर जाता है तो भले ही वह सारे वेदों और वेदाङ्ग का पारङ्गत हो तथापि प्रेत होता है—

शूद्रान्नेनोदरस्थेन ब्राह्मणो म्रियते यदि । स प्रेतो जायते राजन् यद्यपि स्यात् षडङ्गवित् ।।
स्कन्द ६।१८।३८ तु० पद्म १।३२४७; वराह १७२।४३ ।

जो ब्राह्मण उनका यज्ञ कराता है जिनका नहीं कराना चाहिए और जिनका यज्ञ कराना चाहिए उनका नहीं कराता और शूद्र की सेवा में संलग्न रहता है वह प्रेत होता है—

अयाज्ययाजनाच्चैव याज्यानां च विवर्जनात् । रतो वै शूद्रसेवायां स प्रेतो जायते नरः ।।
वराह १७२।४७; तु० पद्म १।३२।४९ ।

जो मनुष्य देवपूजन और पितृतर्पण आदि किये बिना और भृत्यों (भरण-पोषण योग्य आश्रितों और सेवकों) को भोजन दिये बिना स्वयं खाता है वह भी प्रेत होता है

अकृत्वा देवकार्यं च तथा च पितृतर्पणम् । योऽश्नात्यदत्त्वा भृत्येभ्यः स प्रेतो जायते नरः ।। स्कन्द ६।१८।३ ।

जो ब्राह्मण असत्पुरुषों से प्रतिग्रह करता है (दान लेता है) जो मनुष्य नास्तिक प्रवृत्ति वाला है और जो शास्त्रों एवं गुरुजनों के आदेश के विरुद्ध आचरण करता है वह प्रेत होता है—

असद्भ्यः प्रतिगृह्णाति नास्तिकाभिरतः सदा। विरुद्धकारी सततं स प्रेतो जायते नरः ॥ वराह १७२।५०।

ब्रह्महत्यादि पञ्च महापातकों और गोहत्यादि उपपातकों से लिप्त पापियों को भी प्रेतयोनि में जाना पड़ता है। जैसा कि कहा गया है कि ब्रह्मघ्न, गोघ्न, स्तेन (चोर), सुरापान करने वाला, गुरुपत्नीगामी, भूमिहर्ता और कन्या का अपहरण करने वाला मनुष्य प्रेत होता है—

ब्रह्महा गोघ्नकः स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगः। भूमिकन्यापहर्ता च स प्रेतो जायते नरः।

पद्मपुराण १।३२।५१; तु० वराह १७२।४८।

देवता, ब्राह्मण एवं गुरु के धन का अपहरण करने वाला भी प्रेत होता है (वराहपुराण १७२।४५)। न्यास (धरोहर) के रूप में रखे गऐ धन को हड़पने वाला, मित्र से द्रोह करने वाला, शूद्र के द्वारा बनाया हुआ भोजन खाने वाला, विश्वासघाती और कूट-कपट करने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् शूद्रपाकरतः सदा। विस्रम्भघाती कूटस्थः स प्रेतो जायते नरः ॥ पद्म १।३२।५०।

देवता, स्त्री गुरु तथा विशेषतः ब्राह्मण के धन को लेकर भी जो मनुष्य उसे उनको नहीं लौटाता वह भी प्रेत होता है—

देवस्त्रीगुरुवित्तानि यो गृहीत्वा न यच्छति। विशेषाद् ब्राह्मणस्वं च स प्रेतो जायते नरः ॥

स्कन्द ६।१८।३५।

परस्त्री में आसक्त, परधनहर्ता, परनिन्दा से सन्तुष्ट होने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

परदाररतश्चैव परवित्तापहारकः। परापवादसन्तुष्टः स प्रेतो जायते नरः ॥

स्कन्द ६।१८।३२।

दूसरों को विपत्ति-ग्रस्त देख कर सन्तुष्ट होने वाला, कृतघ्न, गुरुतल्पी, एवं देवों और विप्रों को दोष लगाने वाला मनुष्य भी

प्रेत होता है (स्कन्द ६।१८।३६)। ब्राह्मणों को धन का दान दिये जाते समय विघ्न उपस्थित करने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

दीयमानस्य वित्तस्य ब्राह्मणेभ्य· सुपापकृत्। विघ्नमाचरते यस्तु स प्रेतो जायते नरः॥

स्कन्द ६।१८।३७।

अनेक ब्राह्मणों में विभक्त करने के लिये प्राप्त साझी दक्षिणा को जो ब्राह्मण गुप्त रूप से अकेला ही खा जाता है वह प्रेत होता है—

सामान्यां दक्षिणां लब्ध्वा एक एव निगूहति। नास्तिकीभावनिरतः स वै प्रेतोऽभिजायते॥

पद्म १।३२।५२।

जो मनुष्य अपने माता-पिता, भाइयों, बहिन और पुत्र को किसी दोष के बिना भी त्याग देता है वह प्रेत होता है—

मातरं पितरं भ्रातृन् भगिनीं सुतमेव च। अदृष्टदोषांस्त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥

पद्म १।३२।४६; तु० वराह १७२।४६।

जो मनुष्य अपनी कुलीन, विनीत और सुख देने वाली निर्दोष पत्नी को त्याग देता है वह भी प्रेत होता है—

कुले जातां विनीतां च धर्मपत्नीं सुखोच्छ्रिताम्। यस्त्यजेद् दोषनिर्मुक्तां स प्रेतो जायते नरः॥

स्कन्द ६।१८।३४।

जो मनुष्य धन प्राप्त करने की लालसा से कन्या-शुल्क लेकर अपनी कन्या को वृद्ध, नीच, कुरूप और शीलरहित पुरुष को देता है वह भी प्रेत होता है—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया। कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

स्कन्द ६।१८।३३; तु० वराह १७२।४४।

इस तरह उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि पुराणकारों की दृष्टि में प्रायः सभी प्रकार के अधर्मी, चरित्रहीन, अनैतिक और अन्यायी मनुष्य प्रेत हो सकते हैं।

यदि कोई मृतात्मा अपने पारिवारिक जनों, सम्बन्धियों या परिचितों को स्वप्न में दिखलायी पड़े तो यह समझना चाहिए कि उसकी न तो मुक्ति हुई है, न स्वर्ग या नरक में गमन और न सद्गति और न अन्य किसी योनि में जन्म। उसके स्वप्न में दिखलायी देने का तात्पर्य यही है कि वह मृतात्मा अभी प्रेत रूप में ही पड़ा हुआ है (द्र० स्कन्द ६।२२६।४—६)।

जो मृतात्मा सद्गति के अभाव में प्रेत ही रह जाता है वह स्वतः तो कष्ट (क्षुधा-पिपासादि रूप कष्ट) भोगता ही है, साथ ही वह पारिवारिक जनों को भी अनेकविध पीडा देता है। प्रेत द्वारा दी जाने वाली कुछ पीडाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। जिस परिवार में स्त्रियों का ऋतुकाल निष्फल बीते और सन्तान उत्पन्न न होने के फलस्वरूप वंशवृद्धि न हो पाय, जहाँ अल्प वय में ही मृत्यु हो जाय, अकस्मात् जीविका के साधन का उच्छेद (वृत्ति हरण) हो जाय, पारिवारिक सदस्यों की समाज में कोई प्रतिष्ठा न रहे, अकस्मात् घर में आग लग जाय, घर में नित्य कलह हो, पारिवारिक जनों में मिथ्याकलङ्क लगे या मिथ्यादोषारोपण हो, राजयक्ष्मा (क्षयरोग) आदि रोग उत्पन्न होते हों, प्रयत्न-पूर्वक अर्जित धन को व्यापार या कुसीद आदि में लगाने पर वह समूल नष्ट हो जाय, सुवृष्टि होने पर भी कृषि नष्ट हो जाय, वाणिज्य से वृत्ति (आजीविका) ही नष्ट हो जाय और घर में पत्नी सदा प्रतिकूल आचरण करे तो यह मानना चाहिए कि वह परिवार प्रेतपीडा से ग्रस्त है।[1]

१. लिङ्गेन पीडया प्रेतोऽनुमन्तव्यो नरैः सदा। ५६ वक्ष्यामि पीडास्ता राजन्! या वै प्रेतकृता भुवि। ऋतुः स्यादफलः स्त्रीणां यदा वंशो न वर्द्धते ॥ ५७ म्रियन्ते चाल्पवयसः सा पीडा प्रेतसंभवा। अकस्मात् वृत्तिहरणमप्रतिष्ठा जनेषु वै ॥५८॥ अकस्माद् गृहदाहः स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। स्वगेहे कलहो नित्यं स्याच्च मिथ्याभिशंसनम् ॥ ५९ राजयक्ष्मादिसंभूतिः सा पीडा प्रेतसम्भवा। अपि स्वयं धनं भुक्तं प्रयत्नादनवे पथि ॥ ६० नैव लभ्येत नश्येत सा पीडा प्रेतसम्भवा। सुवृष्टौ कृषिनाशः स्याद् बाणिज्याद् वृत्तिनाशनम् ॥ ६१ कलत्रं प्रतिकूलं स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। गरुडपुराण, धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ६।५६–६२।

कुछ परिवारों का स्तर इतना गिरा हुआ होता है कि उनके सदस्यों के खराब आचरण से तथा उनके घरों के गन्दे वातावरण से आकर्षित होकर प्रेत वहाँ अपना डेरा डाल देते हैं और उन घरों की सारी श्री-सम्पदा को अदृश्य रूप से निगल डालते हैं। उदाहरणार्थ—यह कहा गया है कि जिस घर में मार्जन (सफाई) और उपलेपन (लिपाई-पोताई अथवा पक्के फर्श वाले घरमें झाड़ू-पोछा) नहीं होता तथा जहाँ कोई माङ्गलिक कृत्य नहीं होते तथा अतिथि-सत्कार आदि नहीं होता वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

यस्मिन्नो मार्जनं हर्म्ये क्रियते नोपलेपनम् । न माङ्गल्यं न सत्कारः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि ॥

स्कन्द ६।१८।२२।

जिन घरों में कफ और मल-मूत्र पड़ा रहता है और शौच (स्वच्छता-सफाई) का ध्यान नहीं दिया जाता वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योजितानि समन्ततः । गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥

वराह १७२।२८; तु० पद्म १।३२।३३।

जिन घरों में भाण्ड—पात्र आदि बिखरे पड़े रहते हैं, जूठा-पीठा बिखरा रहता है और जिन घरों में नित्य कलह होता है वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

यानि प्रकीर्णभाण्डानि प्रकीर्णोच्छेषणानि च । नित्यं च कलहो यत्र प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥

वराह १७२।३०; द्र० पद्म १।३२।३४।

जिन घरों में टूटे-फूटे पात्रों का परित्याग नहीं किया जाता (अर्थात् जहाँ टूटे बरतनों को घर से बाहर दूर नहीं फेंका जाता) और वेद मन्त्रों की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

भिन्नभाण्डपरित्यागो यत्र न क्रियते गृहे । न च वेदध्वनिर्यत्र प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि ॥ स्कन्द ६।१८।२३।

जिन घरों के लोग गुरुजनों को सम्मान नहीं देते, स्त्रीजित हैं और क्रोध और लोभ के वशीभूत हैं वहाँ प्रेत अपना भोजन पाते हैं—

गुरवो नैव पूज्यन्ते स्त्रीजितानि गृहाणि च क्रोधलोभगृहीतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।। पद्म १।३२।३६ ।

जिन घरों के लोग निर्लज्ज हैं और जिन घरों में रहने वाले लोग होम और व्रत-उपवास आदि नहीं करते वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

चित्तलज्जाविहीनानि होमहीनानि यानि च । व्रतैश्चैव विहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।। पद्म १।३२।३५ ।

बलि-वैश्वदेव, हवन-पूजनादि निमित्तक मन्त्रोच्चार और दान-पुण्यादि तथा गुरुजनों के पूजन से रहित और स्त्रीजित घरों में प्रेत भोजन करते ही हैं (वराह १७२।२६) । जिन घरों में लोग वैश्वदेव किये बिना और भोजन का 'अग्र' (चार ग्रास) भिक्षुक आदि को प्रदान किये बिना भोजन करते हैं वहीं प्रेत अपना भोजन पाते हैं—

भुज्यते यत्र भूपाल वैश्वदेवं विना नरैः । पाकस्याग्रमदत्त्वा च प्रेता भुञ्जन्ति तत्र च ।। स्कन्द ६।१८।२० ।

जिस घर में भोजन के समय स्त्रियाँ कलह करती हैं वहाँ भोजन भले ही मन्त्रों से अभिमन्त्रित और औषध तुल्य ही क्यों न हो उस भोजन के तत्त्व को तो प्रेत ही ग्रहण करते हैं—

भोज्यकाले गृहे यत्र स्त्रीणां युद्धं प्रवर्तते । अपि मन्त्रौषधीप्राय प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि ।।
स्कन्द ६।१८।।१९ ।

जो अन्न केश, मूत्र, श्लेष्मा (कफ) आदि से युक्त है और (द्विजातियों का) जो भोजन हीनजाति के मनुष्य के द्वारा संस्पृष्ट (छूआ गया) हो वह अन्न प्रेतों का आहार हो जाता है—

यदन्नं केश-मूत्रादिश्लेष्मादिभिरुपप्लुतम् । हीनजात्यैश्च संस्पृष्टं तदस्माकं प्रजायते ।।
स्कन्द ३।१८।२८ ।

पर्वकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में यदि रात्रि में श्राद्ध या दान किया जाता है तो वह भी प्रेतों का ही भोजन बनता है—

रात्रौ यत्क्रियते श्राद्धं दानं वा पर्ववर्जितम्। तत्सर्वं नृपशार्दूल प्रेतानां भोजनं भवेत्॥ स्कन्द ३।१८।२१।

जिस श्राद्ध की दक्षिणा न दी गयी हो, जिसके पूरे कृत्य सम्पादित न किये गये हों और जिस श्राद्ध को रजस्वला स्त्री देख ले वह श्राद्ध प्रेतों को प्राप्त होता है—

यच्छ्राद्धं दक्षिणाहीनं क्रियाहीनं च वा नृप। तथा रजस्वला-दृष्टं तदस्माकं प्रजायते॥ स्कन्द ६।१८।२४।

जिस श्राद्ध में हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग ब्राह्मण अथवा वृषलीपति ब्राह्मण भोजन करते हैं वह श्राद्ध भी प्रेतों को प्राप्त होता है—

हीनाङ्गा ह्यधिकाङ्गा वा यस्मिञ्छ्राद्धे द्विजातयः। भुञ्जते वृषलीनाथास्तदस्माकं प्रजायते॥
स्कन्द ६।१८।२५।

जिस घर में श्राद्ध काल में आया हुआ अतिथि यथोचित सत्कार पाये बिना चला जाता है वहाँ किये गये उस श्राद्ध से एकमात्र प्रेतों को ही तृप्ति प्राप्त होती है—

अतिथिर्यत्र संप्राप्तः श्राद्धकाल उपस्थिते। अपूजितो गृहाद् याति तच्छ्राद्धं प्रेततृप्तिदम्॥ स्कन्द ६।१८।२६।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेतत्व किसी भी स्थिति में और किसी के लिए भी हितावह नहीं होता। प्रेतात्माएं स्वयं भी कितनी उत्पीडित और पिपासाकुल रहती हैं इसकी चर्चा पुराणों में अनेकत्र प्राप्त होती हैं। प्रेत अपने पारिवारिक जनों आदि के सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि और प्रगति के शोषक होते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य के शरीर-त्याग के पश्चात् उसको प्रेतत्व से मुक्त करने के लिए शास्त्र-विहित अन्त्येष्टि क्रिया से लेकर सपिण्डीकरण पर्यन्त सभी विधि-विधानों को अवश्य करना चाहिए।

शरीर त्याग के पश्चात् सिद्ध-योगी, वीतराग संन्यासी और धर्मात्मा ईश्वर-भक्तों को भले ही तत्काल मोक्षलाभ हो जाय, किन्तु जन-सामान्य तो प्रेतत्व की ही स्थिति को प्राप्त करता है। अतः निधनोपरान्त जन सामान्य को प्रेतत्व से मुक्ति दिलाने के लिए उसकी अन्त्येष्टि आदि करना परम आवश्यक है। ब्रह्मदण्ड आदि नाना कारणों से निधन को प्राप्त होने वाले जिन

मनुष्यों के दाह-संस्कार आदि कृत्य न हुए हों वे श्राद्धादि सत्क्रियाओं के पात्र नहीं होते अर्थात् उनके निमित्त यदि श्राद्धादि कृत्य किये भी जायें तो वे उन्हें प्राप्त नहीं हो सकते—

ब्रह्मदण्डादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया। श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ॥

कात्यायनस्मृति २४।१६।

अतः जिसकी मृत्यु कहीं दूर विदेश में होती है या जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसका शव उपलब्ध नहीं हो पाता उसका पुतला बना कर उसी का दाहसंस्कार किया जाता है। अन्त्येष्टि की परिसमाप्ति सपिण्डीकरण श्राद्ध में होती है। मृत व्यक्ति अपने जीवन काल में भले ही महान् धर्मात्मा और तपस्वी ही क्यों न रहा हो, किन्तु जब तक उसका सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तब तक वह प्रेतत्व से मुक्त नहीं हो सकता—

यावत् सपिण्डता नैव तावत् प्रेतः स तिष्ठति। अपि धर्मसमोपेतस्तपसापि समन्वितः।
एतस्मात् कारणात् प्रोक्ता मुनिभिस्तु सपिण्डता॥ स्कन्द ६।२२६।१-२।

यह सपिण्डीकरण मृत्यु तिथि से एक वर्ष पश्चात् ही होता है। द्वादशाह को सपिण्डीकरण करने की स्थिति में भी प्रेत का प्रेतत्व एक वर्ष तक बना ही रहता है। इस विषय में स्मृतियों और पुराणों में भली भाँति विचार किया जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि दाह-संस्कार से लेकर सपिण्डीकरण श्राद्ध पर्यन्त समस्त कृत्यों के सम्पन्न हो जाने पर ही मृतक को प्रेतत्व से मुक्ति मिलती है। अतः उसे प्रेतत्व से मुक्ति दिलाने हेतु शास्त्रविहित विधानानुसार समस्त पारलौकिक कृत्यों को यथाविधि और श्रद्धापूर्वक करना आवश्यक है। पारलौकिक कृत्यों को यदि श्रद्धापूर्वक नहीं किया जाता तो वे निरर्थक और व्यर्थ हो जाते हैं, उनका कोई फल मृतक को नहीं मिलता—

अश्रद्धया हृतं सर्वं यत्कृतं पारलौकिकम्। पद्म ३।२९।३४।

जो कर्म शुचि (शुद्ध) रह कर तथा एकचित्त (अर्थात् तन्मय) होकर श्रद्धापूर्वक और विधि-विधान से किया जाता है वही सफल होता है—

श्रद्धाविधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः। शुचिभीरेकचित्तैश्च तदानन्त्याय कल्पते ॥

बृहत्पराशरस्मृति २।१५१।

जो कृत्य अश्रद्धा से और विधि-विधान का अनुसरण न करते हुए और अन्यमनस्क होकर किया जाता है उसका फल असुरों को प्राप्त होता है—

विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धयापि च। तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढत्वादकृतात्मनः ॥

बृहत्पराशरस्मृति २।१५०।

धन, यौवन और विद्या के मद से मदान्ध एवं अति मूढ और नास्तिक मनुष्य धार्मिक कृत्यों और विशेषतः पारलौकिक कृत्यों में आस्था नहीं रखते और ऐसे कृत्यों की आलोचना भी करते हैं। ऐसे अभागे मनुष्यों को लक्ष्य करके ही स्कन्दपुराणमें यह कहा गया है कि मूर्खों, नास्तिकों, कृतघ्नों और हतबुद्धि पापात्माओं के द्वारा ही धार्मिक कृत्यों के विषय में अविश्वास उत्पन्न करने वाले कुतर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

मूढानां नास्तिकानाँ च कृतघ्नानाँ हतात्मनाम्। धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः ॥

स्कन्द २।२।३६।३७।

ऐसे लोग स्वयं को आवश्यकता से अधिक चतुर समझ बैठते हैं और शास्त्रीय मर्यादाओं एवं धार्मिक विधि-विधानों की आलोचना तो करते ही हैं साथ ही उनका अतिक्रमण भी करते हैं। ऐसे लोगों को आङ्गिरस् स्मृति के इन वचनों का मनन कर लेना चाहिए कि कलियुग में भी मनुष्य को अति अन्याय, अतिद्रोह, अतिक्रूरता, सामाजिक मर्यादाओं और सदाचार का अति

उल्लंघन और शास्त्रीय विधानों का अति अनादर नहीं करना चाहिए और न किसी को करने देना चाहिए। अन्यथा वैसा करने वाला, करवाने वाला, वैसा करने की प्रेरणा देने वाला और उसमें नियोजित करने वाला तथा उसके सहायक भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं—

अत्यन्यायमतिद्रोहमतिक्रौर्यं कलावपि। अत्यक्रमं चात्यशास्त्रं न कुर्यान्नापि कारयेत्॥ ९८
यदि कुर्वीत मोहेन सद्यो विलयमेष्यति। कर्ता कारयिता चापि प्रेरकश्च नियोजकः॥ ९९
तत्सहायश्च सर्वे ते लयमेष्यन्ति सत्वरम्।

आङ्गिरसस्मृति,पूर्वाङ्गिरसम् ९८–९९ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ५ पृ० २९५९)।

अशास्त्रविहित आचरण करने वाले अनाचारी और अधर्मी मनुष्य निश्चित रूप से आत्मपतन की दिशा में अग्रसर होते हैं। यह कहा गया है कि अधमाचरण में संलग्न और धर्ममार्ग से विचलित मनुष्य की आयु नष्ट हो जाती है, उसका अपयश फैलता है, उसका सौभाग्य क्षीण हो जाता है, उसकी दुर्गति होती है तथा उसके स्वर्गस्थ पितरों का भी पतन हो जाता है—

आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यति दुर्गतिं व्रजेत्।
स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम्॥　　स्कन्द ३।३।१५।३५।

मनुष्य का हृदय स्वजनों के निधन के समय अति संवेदनशील हो जाता है। उस समय वह जीवन की क्षणभङ्गुरता से प्रभावित रहता है। ऐसे समय में वह धर्म, ज्ञान और वैराग्य की बातें तथा जीवात्मा के जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक और पुनर्जन्म की बातें सहजतया सुन और समझ सकता है और ऐसे अवसर पर जो बातें उसके हृदय में बैठ जावेंगी उनका प्रभाव उसके मन में चिरकाल तक स्थित रह सकेगा। अत. तत्कालोचित उपदेशों का सार-संग्रह विशेषतः प्रकृतिस्थ मनुष्य द्वारा आचरणीय धर्म का उपदेश, आतुर द्वारा करणीय कृत्यों का निर्देश, अन्त्येष्टिविधान, अशौचकाल-निर्णय, जीवात्मा के गर्भ में प्रवेश और पाञ्चभौतिक एवं पारमार्थिक-शरीर विषयक ज्ञान, स्वर्ग-नरक एवं पुनर्जन्म आदि विषयक ज्ञान तथा अन्य भी अनेक प्रासंगिक एवं आनुषंगिक विषयों का एकत्र संकलन गरुडपुराण के सारोद्धार में परम बुद्धिचातुर्य से किया गया है। मृत्युजनित अशौचकाल में इस पुराण

का श्रवण सनातन धर्म के अनुयायी हिन्दू समाज में प्रायः सर्वत्र होता है। जहाँ इसको सुनाने की परम्परा उच्छिन्न है, वहाँ के विद्वान् पण्डितों से भी मेरा यह आग्रह है कि वे इसके श्रवण की व्यवस्था वहाँ अवश्य करावें। इस गरुडपुराण के श्रवण-मनन मात्र से भी भारत के सुदूर अञ्चलों तक के गाँवों की जनता सहजमेव अनेक दार्शनिक, आयुर्वेदिक, योगशास्त्रीय और धर्मशास्त्रीय तथ्यों से सहजमेव सुपरिचित हो जाती है और उसे धर्म-कर्म एवं नैतिकता तथा सदाचार की शिक्षा देने का भी यह सरलतम साधन है। इस पुराण के श्रवण के अनेक दृष्टादृष्ट लाभ हैं। अतः इसे अवश्यमेव सुनना-सुनाना चाहिए।

गरुडपुराण सारोद्धार के इस संस्करण को यथासंभव अनेक स्थलों पर पाठ-संशोधन पूर्वक प्रस्तुत किया गया है। पाठ-निर्धारण के समय समस्त उपलब्ध प्रमाणों को दृष्टि में रखा गया है और शास्त्रीय आधार पर तथा अर्थगत औचित्य को ध्यान में रख कर ही पाठ निर्धारित किया गया है तथा कहीं-कहीं सर्वथा नवीन पाठ की संयोजना भी करनी पड़ी है, जिसके उदाहरण इस ग्रन्थ के १३ वें अध्याय के श्लोक १११ वें तथा १५ वें अध्याय के श्लोक ३० में देखे जा सकते हैं। पाठ-संशोधन के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में मूल-पाठ का सटीक और मौलिक अनुवाद प्रतुस्त करने का गंभीर प्रयास किया गया है और इसकी व्याख्या में अपेक्षित विशिष्ट सूचनाएँ सन्दर्भ सहित पाद-टिप्पणियों में उद्धृत की गयी हैं। अतः प्रस्तुत संस्करण अपने मूल-पाठ तथा मौलिक व्याख्या की दोनों विशेषताओं के कारण परम उपादेय तथा विद्वज्जनग्राह्य होगा, ऐसी मेरी अवधारणा है।

गरुडपुराण सारोद्धार के प्रस्तुत संस्करण का प्रकाशन काशी की संस्कृत सेवा में अग्रणी एवं लब्धप्रतिष्ठ संस्था 'कृष्णदास अकादमी' से हो रहा है, जिसका कि उत्कृष्ट ग्रन्थों के प्रकाशन में अपना विशिष्ट स्थान है।

इस संस्करण में मूलपाठ-गत प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियों के लिए क्षमायाचना के साथ ही मैं सुधी पाठकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे शुद्धिपत्र का अवलोकन करके तदनुसार मूलपाठ को अवश्यमेव शुद्ध कर लें।

इति शुभम्
विदुषां वशंवदः
डा० महेशचन्द्र जोशी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

विषयसूची

अथ गरुडपुराणम्

'सुबोधिनी' नामक-हिन्दीटीकासहितम्

—०✻०—

अथ प्रथमोऽध्यायः

पापिनामैहिकामुष्मिकदुःखनिरूपणम्

सुबोधिनी—धर्मरूपी सुदृढ और सुबद्धमूल वाला, वेदरूपी स्कन्ध (तना) वाला, पुराण रूपी शाखाओं से समृद्ध, यज्ञरूपी पुष्पों वाला और मोक्षरूपी फल वाला भगवान् विष्णु रूपी वृक्ष सर्वोत्कर्षशाली है ॥ १ ॥

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः। क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥ १॥

भावार्थ—हम भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं, जो एक महावृक्ष के समान हैं। भगवान् विष्णु रूपी महावृक्ष का दृढ़ मूल है धर्म। इस वृक्ष की धर्म रूपी जड़ें बहुत गहरी हैं। इस वृक्ष के तने हैं वेद और शाखाएँ हैं पुराण।

इस वृक्ष के फूल हैं यज्ञ और इससे मोक्षरूपी फल प्राप्त होता है ॥१॥ अनिमिष क्षेत्र–(अर्थात् पलकें न झपकाने वाले—भगवान् विष्णु के क्षेत्र), नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषि स्वर्गलोक की प्राप्ति की कामना से एक हजार वर्षों तक चलने वाले यज्ञ कर रहे थे ॥ २ ॥ एक बार सभी मुनियों ने प्रातःकाल अग्नि में हवन करने के पश्चात्

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः । सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ २ ॥
एकदा मुनयः सर्वे प्रातर्हुतहुताग्नयः । सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—

कथितो भवता सम्यग्देवमार्गः सुखप्रदः । इदानीं श्रोतुमिच्छामो यममार्गं भयप्रदम् ॥४॥
तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम् । ऐहिकामुष्मिकान् क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥५॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं भो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् । सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम् ॥६॥

सत्कार पूर्वक आसन में बैठे हुए सूतजी से आदर के साथ यह पूछा ॥३॥ ऋषियों ने कहा—आपने सुखप्रद देवमार्ग का सम्यक् रूप से वर्णन किया है । इस समय हम भयप्रद यममार्ग के विषय में सुनना चाहते हैं ॥४॥ और आप यममार्ग के वर्णन के साथ ही सांसारिक दुःखों तथा उन दुःखों के नाश के उपाय को भी बताइए । आप इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होने वाले क्लेशों का यथावत् वर्णन कीजिए ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—अरे हाँ ! आप लोग

सुनिए। मैं अत्यन्त दुर्गम यममार्ग के विषय में बतलाता हूँ, जो पुण्यकर्म करने वालों के लिए सुखप्रद है, किन्तु पापियों के लिए दुःखदायक है ॥६॥ मैं आप लोगों के संदेह को दूर करने के लिए वही बातें कहूँगा जो गरुडजी के पूछने पर भगवान् विष्णु ने बतलाई थीं ॥७॥ किसी समय वैकुण्ठलोक में सुखपूर्वक बैठे हुए लोकगुरु भगवान् विष्णु से विनता के पुत्र गरुडजी ने विनयपूर्वक पूछा ॥८॥ हे भगवन्! आपने मुझे अनेकविध भक्तिमार्ग तथा

यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते। तथैव कथयिष्यामि सन्देहच्छेदनाय वः ॥७॥
कदाचित्सुखमासीनं वैकुण्ठे श्रीहरिं गुरुम्। विनयावनतो भूत्वा प्रपच्छ विनतासुतः ॥८॥

गरुड उवाच--

भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम। तथा च कथिता देव! भक्तानां गतिरुत्तमा ॥९॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयङ्करम्। त्वद्भक्तिविमुखानां च तत्रैव गमनं श्रुतम् ॥१०॥
सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी। तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान् ॥११॥

भक्तों की उत्तम गति के विषय में बतलाया ॥९॥ अब मैं आपसे भयंकर यम मार्ग का वर्णन सुनना चाहता हूँ। सुना है कि आपकी भक्ति से रहित मनुष्य वहीं जाते हैं ॥१०॥ भगवान् का नाम लेना बड़ा आसान है। मनुष्य की जिह्वा भी उसके वश में ही रहती है। तथापि भगवान् का नाम न लेने के कारण जो नरक में गिरते हैं उन अधम मनुष्यों को धिक्कार है ॥११॥ अतः हे भगवन्! आप पापियों की दुर्गति और यममार्ग के उन दुःखों का

वर्णन करें, जिन्हें वे पापी भोगते हैं ॥१२॥ श्रीभगवान् बोले—हे पक्षिराज ! सुनो, मैं यममार्ग का वर्णन करता हूँ जिससे होकर पापी नरक में जाते हैं और जिसका वर्णन सुनने मात्र से भी लोग भयभीत हो जाते हैं ॥१३॥ हे गरुड़ ! जो मनुष्य पापकर्मरत, दया और धर्म से रहित तथा दुष्टों की संगति में पड़े हुए हैं और वेद-पुराण आदि सत्शास्त्रों

अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत् । यममार्गस्य दुःखानि यथा ते प्राप्नुवन्ति वै ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच—

वक्ष्येऽहं शृणु पक्षीन्द्र ! यममार्गं च येन ये । नरके पापिनो यान्ति शृण्वतामति भीतिदम् ॥१३॥
ये हि पापरतास्तार्क्ष्य ! दयाधर्मविवर्जिताः । दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्सङ्गतिपराङ्मुखाः ॥१४॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

से पराङ्मुख तथा सत्संगति से वञ्चित हैं ॥१४॥ जो अपने मन से अपने को प्रतिष्ठित समझते हैं, घमण्डी, धन और झूठे मान-सम्मान से मतवाले तथा (दम्भ, दर्प, अभिमान आदि अवगुणों के कारण) आसुर भाव को प्राप्त हैं और दैवीगुण सम्पदा से रहित हैं ॥ १५ ॥ जिनका चित्त अनेक विषयों में आसक्त होने से भ्रमित रहता है, जो मोह-माया के जाल में फँसे हुए हैं और कामोपभोग में संलग्न रहते हैं वे अपवित्र नरक में गिरते हैं ॥ १६ ॥ विवेक-

शील मनुष्य परमगति प्राप्त करते हैं। पापी मनुष्य दुःख भोगते हुए यमलोक में जाते हैं ॥ १७ ॥ पापियों को इस लोक में जैसे दुःख प्राप्त होता है तथा तदनन्तर मृत्यु को प्राप्त होने पर जैसे उन्हें यम-यातना प्राप्त होती है, उसे सुनो ॥ १८ ॥ पूर्वजन्म में किए हुए पुण्यकर्म तथा पापकर्म का फल भोगने के पश्चात् पापी मनुष्य को उसके इस जन्म के दुष्कर्म के फलस्वरूप कोई रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १९ ॥ मनोव्यथा और शारीरिक रोगों से ग्रस्त होने

ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम्। पापशीला नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम् ॥१७॥
पापिनामैहिकं दुःखं तथा भवति तच्छृणु। ततस्ते मरणं प्राप्य यथा गच्छन्ति यातनाम् ॥१८॥
सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा पूर्वं तथार्जितम्। कर्मयोगात्तदा तस्य कश्चिद्व्याधिः प्रजायते ॥१९॥
आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम्। कालो बलीयानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते ॥२०॥
तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः। जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥२१॥
आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्। आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥२२॥

पर भी जीवित रहने की आशा और उत्कण्ठा से युक्त मनुष्य को ले जाने के लिए बलवान् काल (मृत्यु) चुपके से सर्प की तरह आ धमकता है ॥ २० ॥ उस अवस्था में भी उसे निर्वेद (वैराग्य) नहीं होता। उसने पहले जिन स्त्री-पुत्र आदि का भरण-पोषण किया था अब उन्हीं के द्वारा उसका पेट भरा जाता है। वृद्धावस्था उसे कुरूप बना देती है और घर में वह मरणोन्मुख हो जाता है ॥ २१ ॥ घर के मालिकों द्वारा अवज्ञा पूर्वक दिये गये भोजन

को वह कुत्ते के समान खाता है रोगी तथा मन्दाग्नि से युक्त होने से उसका आहार कम हो जाता है तथा चलने-फिरने आदि की चेष्टाएँ भी कम हो जाती हैं॥ २२॥ बाहर निकलते हुए प्राणवायु के जोर से उसकी आँखों की पुतलियाँ ऊपर को उठ जाती हैं। कफ से उसकी श्वास-नलिकाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। खांसी तथा साँस लेने में कठिनाई होने से उसके कण्ठ में घुर-घुर शब्द होने लगता है॥ २३॥ शोक-मग्न (स्त्री-पुत्र आदि) बन्धुओं के बीच

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः। कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते॥२३॥
शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः। वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशङ्गतः॥२४॥
एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः॥२५॥
तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य! दैवी दृष्टिः प्रजायते। एकीभूतं जगत्सर्वं न किञ्चिद्वक्तुमीहते॥२६॥
विकलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडतां गते। प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः॥२७॥

सोया हुआ वह कालपाश के वशीभूत होने के कारण उनके द्वारा पुकारे जाने पर भी कुछ नहीं बोल पाता॥ २४॥ आजीवन कुटुम्ब के भरण-पोषण में आसक्त रहने वाला अजितेन्द्रिय मनुष्य अन्त में तीव्र वेदना से संज्ञाशून्य होकर अपने रोते-बिलखते बान्धवों के बीच में ही मर जाता है॥ २५॥ हे गरुड़! अन्तिम मृत्युकालिक क्षण में उसको दैवी-दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह समस्त जगत् और लोक-परलोक को एकत्र देखने लगता है अतः चकित हो जाने के कारण वह मुख से कुछ भी बोलना नहीं चाहता॥ २६॥ यमदूतों के निकट आ जाने के कारण सभी इन्द्रियों के

निष्क्रिय तथा चैतन्य के जडता को प्राप्त हो जाने पर उसके प्राण-पखेरू भी चलयामान हो जाते हैं ॥ २७ ॥ प्राणवायु के अपने स्थान से चलायमान होने पर मरणासन्न प्राणी को एक क्षण भी एक कल्प के समान लगता है तथा एक साथ सौ बिच्छुओं के द्वारा डसे जाने पर जैसी पीड़ा होती है वैसी पीडा का अनुभव उसे होता है ॥ २८ ॥ वह फेन (झाग) उगल देता है तथा उसका मुख लार (थूक) से भर जाता है । पापियों के प्राण-

स्वस्थानाच्चलिते श्वासे कल्पाख्योह्यातुरक्षणः । शतवृश्चिकदंष्ट्रस्य या पीडा साऽनुभूयते ॥२८॥
फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत् । अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः ॥२९॥
यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ संरभसेक्षणौ । पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ ॥३०॥
ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ । स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः सकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥३१॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात् । तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यः पश्यन् स्वकं गृहम् ॥३२॥

वायु प्रायः गुदा द्वार से निकलते हैं ॥ २९ ॥ प्राण छूटते समय दो भयानक यमदूत उसके पास आते हैं जो क्रोधपूर्ण नेत्रों वाले, हाथों में पाश और दण्ड धारण किये हुए, नग्न, दाँत कटकटाते हुए ॥ ३० ॥ और ऊपर को उठे हुए केशों वाले, कौवे के समान काले टेढे मुख वाले तथा हथियार की तरह तीखे नखों वाले होते हैं । उन्हें देखकर भयाक्रान्त हृदय वाला मरणासन्न मनुष्य मल-मूत्र त्याग देता है ॥ ३१ ॥ जब अङ्गुष्ठ मात्र आकृति वाला पुरुष हाय-हाय करते हुए (प्राणों के साथ) शरीर से बाहर निकल कर अपने घर को देखने लगता है तभी

यमदूत उसे पकड़ लेते हैं ॥ ३२ ॥ उसको यातना देह से आवृत करके अर्थात् उस मृत पुरुष को यातना भोगने हेतु अन्य शरीर प्राप्त होने पर वे बल-पूर्वक उसे गले में पाशों से बाँध कर लम्बे यममार्ग में उसी प्रकार ले जाते हैं जिस प्रकार राजपुरुष दण्डनीय अपराधी को ले जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उसे ले जाते हुए वे यमदूत उसे धमकाते हैं तथा नरकों के तीव्र भय का पुनःपुनः वर्णन करते हैं ॥३४॥ वे कहते हैं—रे दुष्ट शीघ्र चल । तू यमलोक

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् । नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥३३॥
तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति च । प्रवदन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः ॥३४॥
शीघ्रं प्रचलदुष्टात्मन्! यास्यसि त्वं यमालयम् । कुम्भीपाकादिनरकास्त्वां नयावोऽद्यमाचिरम् ॥३५॥ एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः॥३६॥
तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः । पथि श्वभिर्भक्ष्यमाणः आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ ३७ ॥
क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्तबालुके । कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च

में जायेगा । हम तुझे शीघ्रमेव कुम्भीपाकादि नरकों में ले जायेगें ॥ ३५ ॥ उनके ऐसे वचनों और अपने बन्धुओं के रुदन को सुन कर वह भी उच्च स्वर से हाय-हाय करके रोने लगता है तथा यमदूतों द्वारा उसे ताडित किया जाता है ॥ ३६ ॥ उन दोनों यमदूतों के धमकाने से वह काँपने लगता है और उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है । मार्ग में उसे कुत्ते काटते रहते हैं । वह दुःखी होकर अपने पापों का स्मरण करता हुआ चलता है ॥३७॥ भूख-

प्यास से पीडित और तपते हुए सूर्य, दावाग्नि तथा गरम हवा के झोंकों से संतप्त होता हुआ और यमदूतों के

द्वारा चाबुक से पीटा जाता हुआ वह असमर्थ होने पर भी बड़ी कठिनाई से तपी हुई बालू वाले छायादार विश्राम-स्थल रहित निर्जल मार्ग से चलता है ॥ ३८ ॥ वह थक कर जगह-जगह गिरता और मूर्च्छित होता हुआ फिर उठ कर चलता है। इस प्रकार उसे पापी के समान अन्धकार पूर्ण मार्ग से यमलोक में ले जाया जाता है

ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥३८॥ तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥३९॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः। प्रदर्शयन्ति दूतास्ताः घोरा नरकयातनाः ॥४०॥ मुहूर्तमात्रात्त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान्। यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः ॥ ४१॥ आगम्य वासनाबद्धो देहमिच्छन् यमानुगैः। धृतः पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः ॥ ४२ ॥ भुंक्ते पिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुर-

॥३९॥ उसे वहाँ दो या तीन मुहूर्तों में पहुँचाया जाता है। उसे यमदूत घोर नरक-यातनाएँ दिखलाते हैं ॥ ४० ॥ मुहूर्त मात्र में यम को तथा उसके द्वारा दी जाने वाली यातनाओं को देख कर यम की आज्ञा से वह यमदूतों के साथ आकाश से होकर पुनः मनुष्य-लोक में लौट आता है ॥ ४१ ॥ वह अपने घर आकर सांसारिक वासना अर्थात् गृह-कुटुम्ब आदि के मोह से बँधा होने के कारण पुनः अपने उसी शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा करता है, किन्तु यमदूतों के द्वारा पाशों से बँधे रहने और भूख-प्यास से पीडित रहने के कारण रोता रहता है ॥ ४२ ॥ हे

गरुड ! उस समय वह पुत्र या अन्य अन्त्येष्टि-कर्ता द्वारा प्रदत्त पिण्ड तथा मृत्युकाल में प्रदत्त दान का भोग करता है, तथापि उस नास्तिक पापी को उससे तृप्ति नहीं होती ॥ ४३ ॥ श्राद्धकर्ता द्वारा प्रदत्त दान, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि से पापियों को तृप्ति नहीं प्राप्त होती, अतः पिण्ड-दान का भोग करने पर भी वे क्षुधाकुल रहते हैं ॥४४॥ जिन मृतात्माओं को पिण्डदान नहीं किया जाता वे प्रेत होते हैं और कल्प पर्यन्त निर्जन वन में अत्यन्त दुःखी

कालिकम् । तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य ! तृप्तिं याति न पातकी ॥ ४३ ॥ पापिनां नोपतिष्ठन्ति दानं श्राद्धं जलाञ्जलिः । अतः क्षुद्व्याकुला यान्ति पिण्डदानभुजोऽपि ते ॥४४॥ भवन्ति प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः । आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः ॥ ४५ ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अभुक्त्वा यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते न हि ॥४६॥ अतो दद्यात्सुतः पिण्डान् दिनेषु दश सुद्विज । प्रत्यहन्ते विभाज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तमम ॥४७॥ भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं सोपजीवति ॥ ४८ ॥

होकर भटकते रहते हैं ॥४५॥ कर्म का दुष्टफल जब तक भोगा नहीं जाता तब तक वह करोड़ों वर्षों तक भी समाप्त नहीं होता । विना नरक-यातना भोगे पापी प्राणी मनुष्य योनि को नहीं पाता ॥ ४६ ॥ अतः पुत्र मृत पिता को दश दिनों तक प्रतिदिन पिण्डदान करे । हे गरुड ! वे पिण्ड चार भागों में विभक्त होते हैं ॥ ४७ ॥ उनमें से दो भाग उस प्रेत की देह के पञ्चभूतों को पुष्ट करते हैं तीसरा भाग यमदूतों को प्राप्त होता है और चौथे भाग को वह

आहार रूप में ग्रहण करता है ॥ ४८ ॥ नौ दिनों तक प्रेत पिण्ड का भोग करता है और दशवें दिन उसका पिण्डज शरीर पूर्ण बन जाता है और उसे चलने की शक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४९ ॥ हे पक्षिराज! मृत पुरुष के शरीर के दग्ध हो जाने पर पुत्र या अन्य श्राद्धकर्ता के द्वारा प्रदत्त पिण्डों से पुनः उसका एक हाथ लम्बा शरीर उत्पन्न होता है और प्रेत इसी शरीर से यमलोक के मार्ग में शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है ॥ ५० ॥

अहोरात्रैश्च नवभिः प्रेतः पिण्डमवाप्नुयात्। जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात् ॥४९॥
दग्धे देहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग! हस्तमात्रः पुमान् येन पथि भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥५०॥
प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते। ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद् हृदयं भवेत् ॥५१॥
चतुर्थेन भवेत्पृष्ठं पञ्चमान्नाभिमेव च। षष्ठे च सप्तमे चैव कटिगुह्यं प्रजायते ॥ ५२ ॥
ऊरुः स्याच्चाष्टमे चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा। नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि क्षुधा तृषा ॥५३॥

प्रथम दिन दिये गये पिण्ड से उसका शिर बनता है। दूसरे दिन के पिण्ड से गरदन और कन्धे बनते हैं। तीसरे दिन के पिण्ड से उसका हृदय बनता है ॥ ५१ ॥ चौथे दिन के पिण्ड से पीठ और पाँचवे दिन के पिण्ड से नाभि, छठे दिन के पिण्ड से कटि प्रदेश (कमर) और गुह्याङ्ग (जननेन्द्रिय और गुदा) तथा सातवें दिन के पिण्ड से दोनों जाँघें बनती हैं ॥ ५२ ॥ आठवें दिन के पिण्ड से घुटने तथा नौवें दिन के पिण्ड से पैर बनते हैं। इस तरह पूर्णतः निष्पन्न शरीर में दशवें दिन के पिण्ड से क्षुधा-तृषा (भूख-प्यास) जागृत होती

है ॥ ५३ ॥ पिण्ड से जनित देह का आश्रय लेकर भूख-प्यास से पीड़ित प्रेत ग्यारहवें और बारहवें दिन भोजन करता है ॥ ५४ ॥ तेरहवें दिन यमदूतों द्वारा बन्दर की तरह बाँधा हुआ प्रेत अकेला यमलोक के मार्ग में प्रस्थान करता है ॥ ५५ ॥ हे गरुड ! बीच में पड़ने वाली वैतरणी की चौड़ाई को छोड़ कर भी यमलोक के मार्ग

पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः । एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् ॥५४॥
त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः । तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः ॥५५॥
षडशीति सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणीं खग ॥५६॥
अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम् । चत्वारिंशत्तथा सप्त दिवारात्रेण गच्छति॥ ५७ ॥
अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानि षोडश । प्रयाति धर्मराजस्य भवनं पातकी जनः ॥ ५८ ॥
सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ । क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम् ।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं शीताढ्यं बहुभीतिधर्मभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः

की दूरी का प्रमाण छियासी हजार योजन है ॥ ५६ ॥ प्रेत को रात और दिन मिलाकर प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन चलना पड़ता है ॥ ५७ ॥ पापी मनुष्य मार्ग में क्रमशः जिन सोलह पुरों को पार करके धर्मराज भवन में पहुँचता है वे इस प्रकार हैं ॥ ५८ ॥ सौम्यपुर, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रौञ्चपुर, क्रूर-पुर, विचित्रपुर, बह्वापदपुर, दुःखदपुर, नाना क्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रपुर, पयोवर्षणपुर, शीताढ्यपुर तथा बहुभीति-

पुर और इसके आगे यमपुर है जिसमें धर्मराज का भवन है ॥ ५९ ॥ यमदूतों के द्वारा पाशों से बँधा हुआ पापी हाहाकार करके रोता हुआ अपने घर को छोड़कर यमपुर को चलता है ॥ ६० ॥

॥ ५९ ॥ याम्यपाशैर्धृतः पापी हा हेति प्ररुदन् पथि । स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत् ॥ ६० ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापिनामैहिकामुष्मिकदुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

—○✻○—

अथ द्वितीयोऽध्यायः

यममार्गनिरूपणम्

गरुड बोले—हे केशव ! यमलोक का मार्ग कितना दुःखदायी है ? और वहाँ पापी कैसे जाते हैं ? यह मुझे

गरुड उवाच—

कीदृशो यमलोकस्य पन्था भवति दुःखदः । तत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव! ॥१॥

भगवानुवाच—

यममार्गं महद्दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम् । मम भक्तोऽपि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः ॥२॥

बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—मैं तुम्हें यमलोक के अत्यन्त दुःखप्रद मार्ग के विषय में बतलाता हूँ जिसे सुन

कर मेरे भक्त होने पर भी तुम काँप उठोगे ॥२॥ उसमें पापी मनुष्य के विश्राम हेतु वृक्षों की छाया नहीं होती। उस मार्ग में प्राण-धारण हेतु अन्न आदि खाद्य-पदार्थ भी नहीं होता ॥ ३ ॥ हे गरुड ! अत्यन्त प्यास लगने पर भी वहाँ पीने के लिए कहीं भी जल नहीं दिखलाई पड़ता। प्रलयान्त काल की भाँति बारह सूर्य वहाँ तपते रहते हैं ॥ ४ ॥ उस मार्ग में जाते समय पापी पुरुष कहीं अत्यन्त ठण्डी हवा में ठिठुरता है, कहीं काँटों से बींधा जाता

वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः। यस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत् ॥ ३ ॥ न जलं दृश्यते क्वापि तृषितोऽतीव यः पिबेत्। तप्यन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग ! ॥४॥ तस्मिन् गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः। कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः ॥ ५ ॥ सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत्। वृश्चिकैर्दंश्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना ॥ ६ ॥ ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत्। योजनानां सहस्रे द्वे विस्तारायामतः स्मृतम् ॥ ७ ॥ काकोलूकवटगृध्रसरघादंशसंकुलम्। स

है और कहीं अत्यन्त विषैले सर्पों के द्वारा काटा जाता है ॥५॥ कहीं वह पापी भयानक सिंहों बाघों और कुत्तों के द्वारा खाया जाता है, कहीं बिच्छुओं के द्वारा डसा जाता है तो कहीं आग से जलाया जाता है ॥६॥ तब कहीं वह घोर असिपत्र वन नामक नरक में जाता है जो दो हज़ार योजन लम्बाई और चौड़ाई वाला है ॥७॥ वहाँ भरे हुए कौवे, उल्लू, गीध, मधुमक्खियाँ और डाँस उसे काटते हैं तथा चारों ओर से प्रज्वलित दावाग्नि उसे जलाती है

और वहाँ के वृक्षों के असि (तलवार) के समान तेज धार वाले पत्तों से वह छिन्नभिन्न हो जाता है ॥ ८ ॥ कहीं अन्धकूप (अँधेरे कुएँ) में गिरता है, कहीं एक दम खड़े पहाड़ से गिरता है । कहीं उसे छुरों की धार पर चलना पड़ता है तो कहीं कीलों की नोकों के ऊपर से चलना पड़ता है ॥ ९ ॥ कहीं घने अँधेरे में गिर पड़ता है, कहीं तेज धार वाले जल में, कहीं जौंओं से भरे कीचड़ में और कहीं तपे हुए कीचड़ में गिरता है ॥ १० ॥ कहीं तपी

दावाग्नि च तत्पत्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते ॥८॥ क्वचित्पतत्यन्धकूपे विकटात् पर्वतात् क्वचित् । गच्छते क्षुरधारासु शंकूनामुपरि क्वचित् ॥ ९ ॥ स्खलत्यन्धे तमस्युग्रे जले निपतति क्वचित् । क्वचित्पङ्के जलौकाढ्ये क्वचित्सन्तप्तकर्दमे ॥ १० ॥ सन्तप्तवालुकाकीर्णे ध्मातताम्रमये क्वचित् । क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित् ॥ ११ ॥ क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च शिलावृष्टिः सवज्रका । रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम् ॥१२ ॥ क्षारकर्दमवृष्टिश्च महानिम्नानि च क्वचित् । वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम् ॥ १३ ॥ गाढान्धकारस्तत्रास्ति दुःखा-

हुई बालू से भरे हुए मार्ग में कहीं तपाये हुए ताँबे से भरे हुए मार्ग में चलता है, कहीं अङ्गारों की राशि के ऊपर से चलता है तो कहीं अत्यन्त धुएँ से भरे हुए मार्ग पर से चलता है ॥११॥ उसके ऊपर कहीं अङ्गार बरसते हैं, कहीं पत्थर बरसते हैं, तो कहीं वज्र । कहीं उसके ऊपर खून बरसता है, कहीं शस्त्र, तो कहीं उस पर गरम जल की वर्षा होती है ॥ १२ ॥ कहीं उसके ऊपर खारे कीचड़ की वर्षा होती है, उसके मार्ग में कहीं अत्यन्त गहरी खाइयाँ हैं तो कहीं पर्वत शिखरों की खड़ी चढाई है और कहीं गुफाओं में प्रवेश करना पड़ता है ॥१३॥ वहाँ कहीं घना अन्ध-

कार रहता है, कहीं ऐसी शिलाएँ हैं जिन में कठिनाई से चढ़ना पड़ता है। कहीं पीव (मवाद) से भरे हुए और कहीं खून से भरे हुए तथा विष्ठा से भरे हुए तालाबों पर से उसे जाना पड़ता है ॥१४॥ उसे मार्ग के बीच में बहने वाली घोर कष्टप्रद वैतरनी नदी पार करनी पड़ती है। वह नदी देखने में भी दुःखदायी है और उसकी चर्चा भी भयावह है ॥ १५ ॥ (पाठान्तर यस्यावती भयानक)। वह सौ योजन चौड़ी है और उसमें पीव (मवाद) और खून बहता है।

रोहशिलाः क्वचित्। पूयशोणितपूर्णाश्च विष्टापूर्णाह्रदः क्वचित् ॥ १४ ॥ मार्गमध्ये वहत्युग्रा घोरा वैतरणी नदी। सा दृष्टा दुःखदा किंवा ? यस्या वार्ता भयावहा ॥ १५ ॥ शतयोजन-विस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी। अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा ॥ १६ ॥ अगाधा दुस्तरा पापैः केशशैवालदुर्गमा। महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता ॥ १७ ॥ आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालाधूमसमाकुला। क्वथते सा नदी तार्क्ष्य ! कटाहान्तर्घृतं यथा ॥ १८ ॥

उसके तटों पर हड्डियों के ढेर लगे रहते हैं, उसमें चलना कठिन है क्योंकि उसमें रक्त और माँस का कीचड़ भरा रहता है ॥ १६ ॥ वह अथाह गहरी और पापियों के द्वारा दुःख से पार करने योग्य है, वह केश रूपी सिवार से भरी होने से दुर्गम है। उसमें विशालकाय ग्राह (घड़ियाल) भरे रहते हैं और सैकड़ों खूँखार पक्षी उसके ऊपर मँडराते रहते हैं ॥१७॥ पापी को आया हुआ देखकर वह नदी अग्नि की ज्वाला और धुएँ से भयङ्कर कढाई में

खौलते घी की तरह उबलने लगती है ॥१८॥ उसमें चारों ओर सुई के समान नोक वाले कीड़े भरे पड़े रहते हैं, वज्र के समान चौंच वाले बड़े-बड़े गीध और कौवे उसे चारों ओर से घेरे (ढके) रहते हैं ॥१९॥ वह नदी शिशुमार (सुईस), मगर, जौंक, मछली, कछुए तथा अन्य मांस-भेदक जल-जन्तुओं से भरी पड़ी है ॥ २० ॥ उस नदी की धारा में गिरे हुए पापी जोर से चीत्कार करते हैं और हे भय्या ! ओ बेटा ! ए पिताजी ! ऐसे पुकारते हुए बार-

कृमिभिः संकुला घोरैः सूचीवक्त्रैः समन्ततः । वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वायसैः परिवारिता ॥१९॥
शिशुमारैश्च मकरैर्जलौकामत्स्यकच्छपैः । अन्यैर्जलस्थैर्जीवैश्च पूरिता मांसभेदकैः ॥ २० ॥
पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दन्ति बहुपापिनः । हा भ्रातः पुत्र! तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः ॥२१॥
क्षुधितास्तृषिताः पापाः पिबन्ति किलशोणितम् । सा सरिद्रुधिरापूरं वहन्ती फेनिलं बहु ॥२२॥
महाघोराति गर्जन्ती दुर्निरीक्ष्या भयावहा । तस्या दर्शनमात्रेण पापाः स्युर्गतचेतनाः ॥२३॥
बहुवृश्चिकसङ्कीर्णा सेविता कृष्णपन्नगैः । तन्मध्ये पतितानां च त्राता कोऽपि न विद्यते ॥२४॥

वार विलाप करते हैं ॥ २१ ॥ भूखे-प्यासे पापी उस नदी में बहते हुए खून को पीते हैं । वह नदी अत्यन्त झाग-युक्त खून के प्रवाह से भरी पड़ी है ॥ २२ ॥ वह अत्यन्त घनघोर, अत्यन्त गर्जन करने वाली, देखने में बीभत्स लगने वाली और भयंकर है । उसको देखते ही पापी मूर्च्छित हो जाते हैं ॥२३॥ उसमें बहुत सारे विच्छू तथा काले साँप भरे रहते हैं । उसमें गिरे हुए पापियों को बचाने वाला कोई नहीं है ॥ २४ ॥ उसमें सैकड़ों हजारों भँवरों

में फँस कर पापी पाताल में पहुँच जाते हैं। वे एक क्षण तक पाताल में रहते हैं और क्षण भर बाद ऊपर आ जाते हैं ॥ २५ ॥ हे गरुड ! वह नदी पापियों के गिरने के लिए ही बनी है। उसके पार का ओर-छोर नहीं दिखाई देता। उसको पार करना अत्यन्त कठिन है और वह बहुत क्लेशप्रद है ॥ २६ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकार के क्लेश और अत्यन्त दुःख देने वाले यममार्ग में पापी रोते और चिल्लाते हुए यमलोक को जाते हैं ॥ २७ ॥ कोई

आवर्तशतसाहस्रैः पाताले यान्ति पापिनः। क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः ॥२५॥
पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग!। न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा ॥२६॥
एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे। क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः ॥२७॥
पाशेन यन्त्रिताः केचित्कृष्यमाणास्तथाङ्कुशैः। शस्त्राग्रैः पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः ॥२८॥
नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथाऽपरे। कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथाऽपरे ॥२९॥
ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठे च शृङ्खलैः। अयोभारचयं केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ते ॥३०॥

पापी पाश से बँधे हुए, अँकुशों से खींचे जाते हुए, भाले-बरछी आदि शस्त्रों की नोक से पीठ पर बींधे जाते हुए यमलोक को ले जाये जाते हैं ॥ २८ ॥ कोई पापी नाक के अग्रभाग में छेद करके उसमें बाँधे गये पाश से और कोई कानों में छेद करके उनमें बाँधे गये पाशोंसे खींचे जाते हैं। कोई कालपाशों से और कोई पापी कौओं के द्वारा झोंटी पकड़ कर खींचे जाते हैं ॥ २९ ॥ कोई पापी गरदन, बाँहो, पैरों में साँकडों से बँधे हुए और लोहे के भारी

टुकड़ों को ढोते हुए यममार्ग में चलते हैं ॥३०॥ कोई पापी यमदूतों के द्वारा मुद्‌गरों से पीटे हुए जाते हैं और फलतः मुख से खून उगलते हुए तथा पुनः उसी को पीते हुए चलते हैं ॥३१॥ अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों के विषय में सोचते हुए वे ग्लानि (पश्चात्ताप) से भर उठते हैं और अत्यन्त दुःखी होकर यमलोक को जाते हैं ॥३२॥ और इस प्रकार यमलोक के मार्ग में चलता हुआ मन्दबुद्धि पापी अपने पुत्र, पौत्र को······पुकारते हुए और हाय-

यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्‌गरैः । वमन्तो रुधिरं वक्त्रात्तदेवाश्नन्ति ते पुनः ॥३१॥ शोचन्ति स्वानि कर्माणि ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः । अतीव दुःखसम्पन्नाः प्रयान्ति यम-मन्दिरम् ॥३२॥ तथापि स व्रजन् मार्गे पुत्र ! पौत्र ! इति ब्रुवन् । हा ! हेति प्ररुदन् नित्य-मनु तप्यति मन्दधी ॥३३॥ महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ! तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम् ॥३४॥ मया न दत्तं न हुतं हुताशने, तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः । न तीर्थसेवा विहिता विधानतो, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३५॥

हाय करके रोते हुए दुःख-सन्तप्त होकर पश्चात्ताप करता है ॥ ३३ ॥ तब वह यह स्वीकार करता है कि बड़े पुण्य से मनुष्य का जन्म प्राप्त होता है। उसे पाकर भी मैंने धर्म नहीं किया। यह मैंने कैसी मूर्खता की ॥३४॥ वह स्वयं से कहता है कि तुमने न दान दिया, न अग्नि में हवन किया, न तप किया, न देवों की पूजा की। न विधान के अनुसार तीर्थों का सेवन किया। अतः हे जीव ! तू अपने किये हुए कर्मों का फल भोग ॥३५॥ तूने कभी ब्राह्मणों

की पूजा नहीं की, न गङ्गा-स्नान किया, न कभी सत्पुरुषों की सेवा की, न कभी परोपकार के काम किये। हे जीव ! अब तू अपने किये हुए कर्मों का फल भोग ॥३६॥ तूने निर्जल स्थान में मनुष्य और पशु-पक्षियों के पानी पीने के लिए जलाशय नहीं बनवाया। गायों और ब्राह्मणों की आजीविका हेतु अणुमात्र भी कुछ नहीं किया। अब हे जीव ! तू अपने किये हुए कर्मों का फल भोग ॥३७॥ तूने न तो नित्य धर्म के रूप में विहित अन्न आदि का

न पूजिताः विप्रगणाः सुरापगा, न चाश्रिताः सत्पुरुषा न सेविताः। परोपकारो न कृतः कदाचन, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३६॥ जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले, मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे। गोविप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३७॥ न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं, न वेदशास्त्रार्थवचः प्रमाणितम्। श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३८॥ भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम्। न गौरवं क्वापि कृतं गुरूचितं, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया

दान दिया, न कभी गौ को दिन भर के खाने योग्य पर्याप्त घास-पानी आदि दिया, न वेद और शास्त्रों के अर्थपूर्ण वचनों को प्रमाण माना, न कभी पुराणों को सुना, न उनके ज्ञाता और वक्ता विद्वान् को सम्मानित किया। हे जीव ! अब तू अपने दुष्कर्मों का फल भोग ॥ ३८ ॥ वहाँ गयी हुई नारी भी अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि तूने पति के द्वारा कहे गये हितकर वचनों का पालन नहीं किया और न कभी पतिव्रता धर्म का पालन

किया ; पति तथा सास-ससुर आदि गुरुजनों का उचित समादर और सेवा-शुश्रूषा नहीं की। अतः हे जीव ! अब अपने दुष्कर्मों का फल भोग ॥ ३९ ॥ तूने अपना धर्म समझ कर पति की सेवा नहीं की और मृत्यु हो जाने पर अनुसरण हेतु अग्नि में प्रवेश भी नहीं किया। विधवा हो जाने के बाद तपश्चर्यामय जीवन भी नहीं बिताया। अतः हे जीव अब तू अपने दुष्कर्मों का फल भोग ॥ ४० ॥ मैंने एक मास तक चलने वाले व्रतोपवास से अथवा चान्द्रा-

कृतम् ॥३९॥ न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो, वह्निप्रवेशो न कृतो मृते पतौ। वैधव्यमासाद्यतपो न सेवितं, देहिन् ! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥४०॥ मासोपवासैर्न विशोषितं मया, चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः। नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं, लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥४१॥ एवं विलप्य बहुशो संस्मरन् पूर्वदैहिकम्। मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति ॥४२॥ दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य ! प्रेतः सौम्यपुरं व्रजेत् ॥४३॥

यण से अथवा विधवा के लिए विहित अन्य विस्तृत धार्मिक नियमों से शरीर को नहीं सुखाया। मैंने पूर्वजन्म में किये हुए दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही बहुत से दुःखों को भोगने के लिए नारी का शरीर प्राप्त किया था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बहुत-बहुत विलाप करके और अपने पहले शरीर का स्मरण करके 'मेरा मानुषपन कहाँ गया' ऐसा कह कर रोते हुए यममार्ग में चलता है ॥ ४२ ॥ हे गरुड ! वह प्रेत सत्तरह दिनों तक अकेला वायु के वेग से चलता है और अठारहवें दिन सौम्यपुर में पहुँचता है ॥ ४३ ॥ उस पुर में प्रेत-गण रहते हैं। उसमें पुष्पभद्रा नाम

की नदी तथा एक वट का वृक्ष है जो देखने में बहुत प्रिय लगता है ॥ ४४ ॥ उस पुर में यमदूत उस प्रेत को विश्राम कराते हैं। वहाँ दुःखी होकर वह स्त्री, पुत्र आदि विषयक सुख का स्मरण करता है ॥ ४५ ॥ जब वह स्त्री, पुत्र और अपने धन तथा भृत्यों आदि का स्मरण करता है तो वहाँ के निवासी प्रेत तथा यमकिङ्कर उससे यह कहते हैं ॥ ४६ ॥ कि कहाँ धन, कहाँ पुत्र, कहाँ पत्नी, कहाँ मित्र और कहाँ बान्धव ? जीव अपने कर्मों का फल

तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान् । पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥४४॥
पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः । दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्रः दुःखितः ॥४५॥
धनानि भृत्यपौत्राणि सर्वं शोचति वै यदा। स्थिताः प्रेतास्तु तत्रत्याः किङ्कराश्चेदमब्रुवन् ॥४६॥
क्व धनं ? क्व सुता जाया ? क्व सुहृद् ? क्व च बान्धवाः ? स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ ! याहि चिरं पथि ॥ ४७ ॥ जानासि संबलबलं बलमध्वगानां, नो संबलाय यतसे परलोकपान्थ ! गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन, मार्गेण यत्र न भवति क्रयविक्रयो हि ॥४८॥ आबाल-

भोगता है । हे मूढ । अब तो तुझे चिरकाल अर्थात् एक वर्ष तक यमलोक के मार्ग में चलते रहना है ॥ ४७ ॥ हे परलोक के पथिक ! तुझे ज्ञात होना चाहिए कि सम्बल (खाने-पीने आदि का सामान) ही पथिकों का बल है । किन्तु तूने सम्बल को जुटाने का यत्न नहीं किया जब कि तुझे निश्चयमेव ऐसे मार्ग से जाना है जिसमें तनिक भी सौदेबाजी या घूसखोरी होती ही नहीं ॥ ४८ ॥ इस मार्ग के विषय में तो बच्चे भी जानते हैं । अरे मनुष्य !

क्या तूने इसके विषय में कुछ सुना ही नहीं था ? क्या तूने ब्राह्मणों के मुख से पुराणों के वचन भी नहीं सुने थे ?

॥ ४९ ॥ यमदूतों के द्वारा ऐसा कह कर मुद्गरों से ताडित किया जाता हुआ वह गिरता-पड़ता और पुनः उठ कर दौड़ता हुआ बलपूर्वक पाशों से बाँध कर खींचा जाता है ॥ ५० ॥ वह प्रेत सौम्यपुर में पुत्रों अथवा पौत्रों के द्वारा स्नेहवश अथवा दयावश मासिक (एकोद्दिष्ट) श्राद्ध में प्रदत्त पिण्ड को खाता है और तब सौरिपुर को

ख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य ! श्रुतस्त्वया । पुराणसम्भवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम् ॥४९॥
एवमुक्तस्ततो दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः । निपतन्नुत्पतन् धावन् पाशैराकृष्यते बलात् ॥५०॥
अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाऽथवा । मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत् ॥५१॥
तत्र नाम्नास्ति राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक् । तद्दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे कुरुते मतिम् ॥५२॥
उदकं चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तत्र पुरे गतः । त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं स तत्पुरमतिक्रमेत् ॥५३॥
ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वरान्वितः । वनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः ॥५४॥

प्रस्थान करता है ॥ ५१ ॥ उस सौरिपुर में कालरूप अर्थात् यम के स्वरूप को धारण करने वाला जंगम नामक राजा है उसे देखकर वह प्रेत भयभीत होकर विश्राम करना चाहता है ॥ ५२ ॥ उस पुर में प्रेत अपने बान्धवों के द्वारा त्रैपाक्षिक श्राद्ध में प्रदत्त अन्न-जल को खाकर उस पुर को पार करता है ॥ ५३ ॥ तब वह प्रेत शीघ्रता से नगेन्द्रभवन को चलता है, वहाँ मार्ग में भयंकर वनों को देखकर वह दुःखी होकर रोता है ॥५४॥ निर्दय यमदूतों

के द्वारा खींचे जाने पर वह बार-बार रोता है। दो मास के अन्त में वह व्यथाकुल होकर वहाँ पहुँचता है ।। ५५ ।। वहाँ वह अपने बान्धवों द्वारा प्रदत्त पिण्ड, जल, वस्त्र आदि को ग्रहण करता है। तब पुनः यमदूत उसे खींच कर आगे की यात्रा के लिए ले जाते हैं ।। ५६ ।। वह तीसरे मास गन्धर्वपुर में पहुँचता है। वहाँ तीसरे मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर पुनः आगे बढ जाता है ।। ५७ ।। चौथे मास में वह प्रेत शैलागमपुर पहुँचता है, जहाँ उसके

निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः। मासद्वयावसाने तु तत्पुरं व्यथितो व्रजेत् ।।५५।।
भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवैरिह। कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः ।।५६।।
मासे तृतीये सम्प्राप्ते प्राप्य गन्धर्वपत्तनम् । तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ।।५७।।
शैलागमं चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम् । पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः ।।५८।।
चतुर्थमासिकं पिण्डं भुक्त्वा किञ्चित्सुखी भवेत् । ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासेऽथ पञ्चमे ।।५९।।
हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः । यत्पंचमासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत् ।।६०।।
सार्धकैः पचंभिर्मासैर्न्यूनषाण्मासिकं व्रजेत् । तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः स्थितः ।।६१।।

ऊपर ढेर-सारे पत्थर बरसते हैं ।। ५८ ।। वह चौथे मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर कुछ सुख का अनुभव करता है। तब पाँचवें मास में वह प्रेत क्रौञ्चपुर में पहुँचता है ।। ५९ ।। क्रौञ्चपुर में प्रेत बान्धवों के द्वारा हाथ में प्रदत्त पाँचवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर क्रूरपुर को जाता है ।।६०।। साढे पाँच मास से लेकर पौने छः मास के भीतर

वह क्रूरपुर में पहुँचता है, वहाँ वह बान्धवों द्वारा प्रदत्त पिण्ड और घटोदक से आप्यायित (तृप्त) होता है ॥६१॥ आधे मुहूर्त तक विश्राम करके वह यमदूतों के द्वारा धमकाये जाने पर काँपते हुए और दुःखी होकर उस पुर को छोड़कर आगे बढ़ता है ॥ ६२ ॥ तब वह चित्रभवन (अर्थात् विचित्रपुर) में पहुँचता है जहाँ यमराज का छोटा भाई विचित्र नामक राजा राज्य करता है ॥ ६३ ॥ उस महाकाय राजा को देखने पर भयभीत होकर जब वह

मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सदुःखितः । तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ॥६२॥
प्रयाति चित्रभवनं विचित्रो नाम पार्थिवः । यमस्यैवानुज भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि ॥६३॥
तं विलोक्य महाकायं यदा भीतः पलायते । तदा संमुखमागत्य कैवर्ता इदमब्रुवन् ॥६४॥
वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम् । नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम् ॥६५॥
दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । इयं सा तीर्यते यस्मात्तस्माद्वैतरणी स्मृता ॥६६॥
यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा नौरुपसर्पति । नाऽन्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव! भाषते ॥६७॥

भागने लगता है तभी वैतरणी नदी के धीवर उसके समक्ष आकर यह कहते हैं ॥ ६४ ॥ कि तुम्हें इस विशाल वैतरणी नदी को पार करना है, हम तुम्हारे लिए नाव लेकर आये हैं, यदि तुमने अपने जीवन में कुछ पुण्य किया हो तो उसे देकर इसमें बैठ सकते हो ॥६५॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने दान को ही वितरण (देना या बाँटना) कहा है । उस वितरण के प्रभाव से ही इस नदी को सुख से तरा जा सकता है इसीलिए इसको वैतरणी कहते हैं ॥६६॥ यदि तूने गोदान किया तब तो नाव तेरे पास आयेगी, अन्यथा नहीं,—उनके ऐसे वचन सुनकर वह प्रेत 'हा दैव !'

ऐसा कहता है ॥६७॥ उसे देखकर वह नदी उफान मारने लगती है और उसे देख कर वह अत्यन्त क्रन्दन करने लगता है। वह पापी अपने जीवन में कभी कोई दान नहीं दिया होने के कारण उस नदी में डूब जाता है ॥६८॥ तब आकाशचारी यमदूतों के द्वारा उस प्रेत के मुख में काँटा फँसा कर बडिश (काँटे) से मछली की भाँति खींच कर पार ले जाया जाता है ॥६९॥ वहाँ वह अपने बान्धवों द्वारा प्रदत्त छठे महीने के श्राद्ध के पिण्ड को खाकर

तं दृष्ट्वा क्वथते सातु तां दृष्ट्वा सोऽतिक्रन्दते। अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति ॥६८॥

तन्मुखे कण्टकं दत्त्वा दूतैराकाशसंस्थितैः। बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते ॥६९॥

षाण्मासिकं च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति। मार्गे स विलपन् याति बुभुक्षापीडितो ह्यलम् ॥७०॥

सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्। तत्र भुङ्क्ते प्रदत्तं तत्सप्तमे मासि पुत्रकैः ॥७१॥

तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति। महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन् खेचरेश्वर! ॥७२॥

मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति। नवमे मासि सम्पूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत् ॥७३॥

फिर आगे बढ़ता है। वह आगे के मार्ग में भूख से पीड़ित होने पर विलाप करता हुआ चलता है ॥ ७० ॥ सातवें मास वह बह्वापद नामक पुर में पहुँचता है और वहाँ अपने पुत्रोंद्वारा प्रदत्त सातवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाता है ॥७१॥ तब उस पुर को पार कर वह दुःखदपुर में पहुँचता है। हे गरुड़! उस पुर में आकाश मार्ग से जाते समय वह बहुत दुःख पाता है ॥७२॥ वहाँ वह आठवें मास में दिये गये श्राद्ध के पिण्ड को खाकर फिर आगे बढ़ता

है और नवें मास के पूरा बीतने पर वह नानाक्रन्दपुर में पहुँचता है ।।७३।। वहाँ वह क्रन्दन करते हुए भयावह (दारुण) नानाक्रन्द-गणों को देख कर स्वयं भी शून्य-हृदय वाला और दुःखी होकर क्रन्दन करने लगता है ।।७४।। यमदूतों के द्वारा धमकाया हुआ वह प्रेत उस पुर से विदा होकर दशवें महीने के अन्त में बड़ी कठिनाई से सुतप्त-भवन में पहुँचता है ।।७५।। वहाँ दशवें मासिक श्राद्ध के पिण्डदान और जलाञ्जलि को पाकर भी वह सुखी नहीं हो

नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान् । स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः ।।७४।।
विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः । सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः ।।७५।।
पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वाऽपि न सुखी भवेत् । मासि चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति ।।७६।।
दशैकमासिकं तत्र भुंक्ते दत्तं सुतादिभिः । सार्धञ्चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति ।।७७।।
मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः । न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुंक्ते स दुःखितः ।।७८।।
सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत् । हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं पतत्यपि ।।७९।।

पाता । तब आगे बढ़ता हुआ ग्यारहवें मास के पूर्णतः बीतने पर वह रौद्रपुर में पहुँचता है ।।७६।। वहाँ वह पुत्रादि के द्वारा प्रदत्त ग्यारहवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाता है । फिर आगे चलता हुआ वह साढ़े ग्यारहवें मास में पयोवर्षणपुर में पहुँचता है ।।७७।। वहाँ प्रेतों को दुःख देने के लिए मेघ मूसलाधार वर्षा करते हैं । वह दुःखी प्रेत वहाँ न्यूनाब्दिक (न्यूनवार्षिक) श्राद्ध [के पिण्ड] को खाता है ।। ७८ ।। तदनन्तर आगे बढ़ता हुआ वह सम्पूर्ण

वर्ष बीतने पर शीताढ्य नगर में पहुँचता है । वहाँ हिम से भी सौगुनी अधिक ठण्ड पड़ती है ॥७९॥ वहाँ अतिशय शीत और भूख से पीड़ित प्रेत दशों दिशाओं में इस आशा से देखता है कि शायद कहीं मेरा कोई बान्धव हो जो मेरे दुःख को दूर करे ॥८०॥ ऐसी स्थिति में यमदूत उससे कहते हैं कि तूने वैसा पुण्य ही कहाँ किया है ? तब वह वार्षिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर धैर्य धारण करता है ॥८१॥ तब एक वर्ष के अन्त में यमपुर के निकटवर्ती

शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशोदश । तिष्ठते बांधवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति ॥८०॥
किङ्करास्ते वदन्त्यत्र क्व ते पुण्यं हि तादृशम् । भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः ॥८१॥
ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये । बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥८२॥
अङ्गुष्ठमात्रो वायुश्च कर्मभोगाय खेचर । यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च ॥८३॥
और्ध्वदेहिकदानानि यैर्न दत्तानि कश्यप । कष्टेन ते पुरं यान्ति गृहीत्वा दृढबन्धनैः ॥८४॥

बहुभीति नामक पुर में पहुँचने पर वह अपने हाथ भर के शरीर को त्याग देता है ॥८२॥ तब वह प्रेत अपने दुष्कर्मों का फल भोगने के लिए अङ्गुष्ठ-परिमित (अर्थात् अँगूठे भर लम्बा वायु-स्वरूप, आकाशचारी यातना-शरीर को धारण करके यमदूतों के साथ चलता है ॥ ८३ ॥ हे कश्यपपुत्र गरुड़ ! जिन मनुष्यों ने मृत्यु के समय और्द्ध्वदेहिक दान नहीं दिये हैं वे इस प्रकार यमदूतों द्वारा दृढ-बन्धनों (पाशों) से बँधे हुए कष्ट के साथ यमपुर को जाते

हैं ॥ ८४ ॥ हे आकाशचारी गरुड़ ! धर्मराज के पुर में प्रवेश के चार द्वार हैं जिनमें से मैंने दक्षिण द्वार के मार्ग का यह वर्णन तुमको सुना दिया है ॥ ८५ ॥ इस महाभयङ्कर मार्ग में भूख-प्यास और थकान से पीड़ित पापी

धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर ! । यत्राऽयं दक्षिणद्वारमार्गस्ते परिकीर्तितः ॥८५॥
अस्मिन् पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः । यथा यान्ति तथा प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८६॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

जैसे जाते हैं वह सब मैंने तुम्हें बतलाया । अब बतलाओ कि तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ८६ ॥

—○✱○—

अथ तृतीयोऽध्यायः

यमयातनानिरूपणम्

गरुड़ बोले—हे केशव ! यमलोक के मार्ग की यात्रा पूरी करके पापी यम के भवन में पहुँच कर कैसी

गरुड उवाच—

यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये । कीदृशीं यातनां भुंक्ते तन्मे कथय केशव ! ॥१॥

श्री भगवानुवाच—

आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज । कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि कम्पितः ॥२॥

यातना पाता है यह आप मुझे बतलाइए ॥ १ ॥ श्री भगवान् बोले—हे विनता के पुत्र गरुड़ ! सुनो, मैं आरम्भ

से अन्त तक नरक-यातनाओं का वर्णन करूँगा। मेरे द्वारा नरक के विषय में कहे जाते हुए वचनों को सुन कर भी तुम काँप उठोगे ॥२॥ हे कश्यप के पुत्र! बहुभीति पुर के आगे चौवालीस योजन की लम्बाई चौड़ाई में फैला हुआ धर्मराज का विशाल पुर है ॥ ३ ॥ हाहाकार युक्त उस पुर को देख कर पापी क्रन्दन करने लगता है। उनके क्रन्दन को सुनकर उस पुर में विचरण करने वाले यम के गण द्वारपाल को उस पापी के विषय में बतलाते हैं। यमराज

चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप!। बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत् ॥३॥
हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी। तत्क्रन्दनं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः ॥४॥
गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥५॥
स गत्वा चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाऽशुभम्। ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत् ॥६॥
नास्तिका ये नरास्तार्क्ष्य महापापरताः सदा। तांश्च सर्वान् यथायोग्यं सम्यग्जानाति धर्मराट् ॥ ७ ॥ तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति। चित्रगुप्तोऽपि सर्वज्ञः श्रवणान्

का धर्मध्वज नामक द्वारपाल सदा वहाँ (द्वार पर) रहता है ॥४–५॥ वह चित्रगुप्त के पास जाकर उस पापी के शुभाशुभ को बतलाता है। चित्रगुप्त भी उसके विषय में धर्मराज को बतलाते हैं ॥ ६ ॥ हे गरुड़! जो लोग नास्तिक और सदा महापाप में रत रहे हैं उन सबको धर्मराज यथायोग्य और भली भाँति जानते हैं ॥ ७ ॥ तथापि वह चित्रगुप्त से उन पापी मनुष्यों के पाप के विषय में पूछते हैं। चित्रगुप्त सर्वज्ञ होने पर भी श्रवणों से ही पापियों

के पापग के विषय में पूछते हैं ॥ ८ ॥ ये श्रवण ब्रह्मा के पुत्र हैं ये स्व, भूमि और पाताल में भी सर्वत्र विचरण करते हैं। ये दूर की बातें सुन लेते हैं दूरवर्ती तत्त्वों को भी जान लेते हैं तथा इनके नेत्र दूर के दृश्यों को भी देख लेते हैं ॥ ९ ॥ उनकी पत्नियाँ भी उन्हीं के समान हैं। वे श्रवणी कहलाती हैं किन्तु उनके नाम अलग-अलग होते हैं। वे स्त्रियों की सारी चेष्टाएँ तत्त्वतः जानती हैं ॥ १० ॥ मनुष्यों के द्वारा प्रच्छन्न (गुप्त) रूप से

परिपृच्छति ॥ ८ ॥ श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा स्वर्भूपातालचारिणः। दूरश्रवणविज्ञाना दूरदर्शन-चक्षुषः ॥ ९ ॥ तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। स्त्रीणां विचेष्टितं सर्वं ता विजानन्ति तत्त्वतः ॥ १० ॥ नरैः प्रच्छन्नं प्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत्। सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च ताः ॥११॥ चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाऽशुभम्। मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वतः ॥१२॥ एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम्। कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः ॥१३॥ व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः। भवन्ति

अथवा प्रत्यक्षतः सबके सामने जो कुछ कहा अथवा किया गया है उस सबको उन श्रवण तथा श्रवणियों के द्वारा चित्रगुप्त को यथावत् बतलाया जाता है ॥ ११ ॥ धर्मराज के वे गुप्तचर (श्रवण और उनकी पत्नियाँ) मनुष्यों के द्वारा मन, वचन और शरीर के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों को तत्त्वतः जानते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्यों और देवताओं के अधिकारी उन सत्यवादी श्रवणों की ऐसी शक्ति है कि वे मनुष्यों के सारे कर्म को बतला देते हैं ॥१३॥

जो मनुष्य व्रत, दान और सत्यवचन से उन्हें सन्तुष्ट किये रहता है उसके लिए वे सौम्य तथा स्वर्ग और मोक्षप्रद होते हैं ॥ १४ ॥ वे सत्यवादी श्रवण पापकर्मों को ज्ञात करके धर्मराज के आगे सब यथावत् कह देने के कारण पापियों के लिए दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, मनुष्य का अपना हृदय, यम, दिन, रात्रि, प्रातःकालिक सन्ध्या तथा सायंकालीन सन्ध्या और धर्म—ये सब मनुष्यों के समस्त

तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः ॥ १४ ॥ पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः । धर्मराजपुरः प्रोक्ता जायन्ते दुःखदायिनः ॥१५॥ आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ १६ ॥ धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः । कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वशः ॥ १७ ॥ एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः । आहूय तन्निजं रूपं दर्शयत्यतिभीषणम् ॥ १८ ॥ पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयङ्करम् । दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरि संस्थितम् ॥ १९ ॥

वृत्तान्त को जानते हैं ॥ १६ ॥ धर्मराज, चित्रगुप्त, श्रवण तथा सूर्य आदि मनुष्य के शरीर में स्थित समस्त पाप-पुण्य को पूरी तरह जानते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार यमराज पापियों के पाप का निश्चित ज्ञान करके उन्हें बुलाकर अपना अत्यन्त भीषण रूप दिखलाते हैं ॥ १८ ॥ वे पापी यम के रूप को ऐसा भयंकर देखते हैं जो कि हाथ में दण्डधारी, बड़े भारी शरीर वाले, भैंस के ऊपर बैठा हुआ, प्रलयकालीन मेघ की तरह गर्जन करने वाला, काजल के

पर्वत के समान रंग वाला, विद्युत् के समान दीप्त प्रभा वाले तीखे अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होने से भयंकर, बत्तीस भुजाओं वाले, तीन योजन लम्बे-चौड़े शरीर वाला, वावड़ी के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला, विकराल दाढ़ों के कारण भयंकर मुख वाला, लाल-लाल आँखों वाला तथा बड़ी-लम्बी नाक वाला है ॥ १९–२१ ॥ चित्रगुप्त भी अति भयानक आकृति वाला है। उसके साथ मूर्तिमान् मृत्यु तथा ज्वर आदि भी रहते हैं और उसके समीप यम के समान

प्रलयाम्बुदनिर्घोषकज्जलाचलसन्निभम् । विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम् ॥ २० ॥
योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम् । दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम् ॥ २१ ॥
मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः । सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके ॥२२॥
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हा हेति वदते खलः । अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः ॥२३॥
ततो वदति तान्सर्वान् क्रंदमानांश्च पापिनः । शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया ॥२४॥
भोः भो पापा दुराचारा अहङ्कारप्रदूषिताः । किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः? ॥२५॥

भयानक सभी दूत (पापियों को भयभीत करने के लिए) गर्जन करते रहते हैं ॥ २२ ॥ कभी दान न दिया होने के कारण पापात्मा दुष्ट प्रेत चित्रगुप्त को देखकर हाय-हाय करता है, काँपता है और फिर चीत्कार करता है ॥ २३ ॥ तब उन क्रन्दन करते हुए तथा अपने दुष्कर्मों के विषय में सोचते (मन में पश्चात्ताप करते) हुए उन सब पापियों से चित्रगुप्त यम की आज्ञा से कहते हैं ॥ २४ ॥ कि "अरे पापियों ! दुराचारियों ! अहँकारी-दुष्टों !

तुम अज्ञानियों ने किसलिए पाप किया था" ॥ २५ ॥ काम, क्रोध तथा पापियों की संगति के प्रभाव से तुमने जो पाप किया है वह दुःख-प्रद है, तब तुमने उसे क्यों किया ? ॥२६॥ जिस प्रकार पहले तुमने अत्यन्त प्रसन्नता से पाप किये थे वैसे ही अब नरक-यातना की यातना भी भोगनी चाहिए, इस समय उससे पराङ्मुख क्यों हो रहे हो ? ॥२७॥ तुम पापियों ने जो बहुत सारे पाप किये हैं वे ही तुम्हारे दुःख के कारण हैं, ये दुःख अकारण-

कामक्रोधाद्युत्पन्नं सङ्गमेन च पापिनाम् । तत्पापं दुःखदं मूढाः किमर्थं चरितं जनाः ॥२६॥
कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः । तथैव यातना भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः॥२७॥
कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि । तानि पापानि दुःखस्य कारणं न च वञ्चनाः॥२८॥
मूर्खेऽपि पण्डिते वाऽपि दरिद्रे वा श्रियान्विते । सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः ॥२६॥
चित्रगुप्तस्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ ३० ॥ धर्मराजोऽपि तान् दृष्ट्वा चोरवन्निश्चलसंस्थितान् । आज्ञापयति पापानां शान्तिं चैव यथोचितम् ॥३१॥ ततस्ते निर्दया दूतास्ताडयित्वा वदन्ति च । गच्छ पापिन्!

वञ्चना मात्र नहीं हैं ॥ २८ ॥ चाहे कोई मूर्ख हो या पण्डित, दरिद्र हो या धनी, बलवान् हो या निर्बल, यमराज का व्यवहार सभी के प्रति एक समान रहता है ॥ २९ ॥ तब वे पापी चित्रगुप्त के ऐसे वचनों को सुन कर अपने दुष्कर्मों के विषय में सोचते हुए निश्चेष्ट होकर चुप-चाप बैठ जाते हैं ॥ ३० ॥ धर्मराज भी उन पापियों को चोर की तरह निश्चल बैठे हुए देखकर उन्हें यथोचित दण्ड देने की आज्ञा देते हैं ॥ ३१ ॥ तब निर्दय यमदूत

प्रत्येक पापी को पीटते हुए कहते हैं कि अरे पापी अब महाघोर और अति भयानक नरकों में जाओ ॥ ३२ ॥ यम की आज्ञा का पालन करते हुए प्रचण्ड, चण्ड आदि दूत उन पापियों को एक ही पाश से बाँध कर नरकों में ले जाते हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ जलती हुई अग्नि के समान दीप्तिमान् एक विशाल वृक्ष है जो पाँच योजन चौड़ा तथा एक योजन ऊँचा है ॥ ३४ ॥ वे यमदूत उस वृक्ष में पापियों को शिर नीचे [और पैर ऊपर] करके साकलों

महाघोरान् नरकानतिभीषणान् ॥ ३२ ॥ यमाज्ञाकारिणो दूता प्रचण्डचण्डकादयः । एकपाशेन तान् बद्ध्वा नयन्ति नरकान् प्रति ॥ ३३ ॥ तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसमप्रभः । पञ्चयोजनविस्तीर्णा एकयोजनमुच्छ्रितः ॥ ३४ ॥ तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते । रुदन्ति ज्वलितास्तत्र तेषां त्राता न विद्यते ॥ ३५ ॥ तस्मिन्नेव शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः । क्षुत्पिपासा परिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः ॥ ३६ ॥ क्षमध्वं भोऽपराधं मे कृताञ्जलिपुटा इति । विज्ञापयन्ति तान् दूतान् पापिष्ठास्ते निराश्रयाः ॥ ३७ ॥ पुनः पुनश्च ते

(जञ्जीरों) से बाँध कर उन्हें पीटते हैं । वे पापी वहाँ [उस वृक्ष की उष्मा से] जलने पर रोते हैं । वहाँ उन्हें बचाने वाला कोई नहीं होता ॥ ३५ ॥ उस शाल्मली (सेमल) के वृक्ष में यमदूतों के द्वारा ताड़ित (मारे-पीटे गये) और भूख-प्यास से पीड़ित अनेक पापी लटके रहते हैं ॥ ३६ ॥ वे निराश्रित पापी उन दूतों से निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे महाशय ! हम हाथ जोड़ते हैं हमारे अपराध क्षमा कर दो ॥ ३७ ॥ किन्तु वे यमदूत

उन पापियों को लोहे की लाठियों, मुद्गरों, तोमरों (भालों), कुन्तों (बर्छियों), गदाओं और मुसलों से बार-बार और बेहद मारते हैं ॥ ३८ ॥ ताडित किये जाने से वे निश्चेष्ट और मूर्च्छित हो जाते हैं। उन्हें निश्चेष्ट हुआ देखकर यमदूत कहते हैं ॥३९॥ अरे! रे! दुराचारी पापियों! तुमने दुष्कर्म क्यों किया था ? सुलभ होने पर भी तुमने जल और अन्न आदि का दान नहीं दिया ॥ ४० ॥ तुमने कभी किसी को आधा ग्रास भी भोजन नहीं

दूतैर्हन्यन्ते लौहयष्टिभिः। मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम् ॥ ३८ ॥ ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते। तथा निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा किङ्करास्ते वदन्ति हि ॥३९॥ भो! भो! पापा दुराचाराः किमर्थं दुष्टचेतसः सुलभानि न दत्तानि जलान्यन्नान्यपि क्वचित् ॥४०॥ ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम्। नमस्कृता नाऽतिथयो न कृतं पितृतर्पणम् ॥४१॥ यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम्। न जप्तश्च तयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना ॥४२॥ नापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः। गृहाश्रमस्थितेनापि हन्तकारोऽपि नोद्धृतः ॥४३॥

दिया। न कभी कुत्ते और कौवे को बलि दी। अतिथियों को नमस्कार और भोजन आदि से सम्मानित नहीं किया और न कभी पितरों का तर्पण किया ॥ ४१ ॥ तुमने कभी यम और चित्रगुप्त का भी ठीक से ध्यान (स्मरण) नहीं किया और न कभी उनके मन्त्र का जप किया, यदि तुमने यह सब किया होता तो तुम्हें ऐसी यातना नहीं भोगनी पड़ती ॥४२॥ न तो तुमने कभी कोई तीर्थ-यात्रा की, न देवताओं की पूजा की। गृहस्थाश्रम में रहते हुए

भी तुमने हन्तकार (मनुष्यों को दिया जाने वाला अन्न का भाग) निकाल कर किसी को नहीं दिया ॥ ४३ ॥ तुमने कभी साधु-सन्तों की भी सेवा नहीं की। अब तुम अपने पाप का फल भोगो। चूँकि तुम धर्महीन हो इसी लिए तुमको खूब पीटा जा रहा है ॥ ४४ ॥ भगवान् हरि ही ईश्वर हैं—वे ही अपराध को क्षमा करने में समर्थ हैं। हम तो उन्हीं की आज्ञा से अपराधियों को दण्ड देते हैं ॥ ४५ ॥ ऐसा कह कर वे यमदूत उन्हें निर्दयता

शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुङ्क्ष्व पापफलं स्वयम्। यतस्त्वं धर्महीनोऽसि ततः सन्ताड्यसे भृशम्॥४४॥
क्षमापराधं कुरुते भगवान् हरिरीश्वरः। वयं तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया॥४५॥
एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान्। ज्वलदङ्गारसदृशाः पतितास्ताडनादधः॥४६॥
पतनात्तस्य पत्रैश्च गात्रच्छेदो भवेत्ततः। तानधः पतितान् श्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते॥४७॥
रुदन्तस्तं ततो दूतैर्मुखमापूर्य रेणुभिः। निबद्ध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ते केऽपि मुद्गरैः॥४८॥
पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा। क्षिप्त्वा चाऽन्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः

पूर्वक पीटते हैं। उनकी पिटाई से वे पापी [उल्मुक या मशाल में से] जलते हुए अङ्गारे के समान नीचे गिर जाते हैं ॥ ४६ ॥ गिरते समय शाल्मली (सेमर) वृक्ष के पत्तों से उनका शरीर कट जाता है। नीचे गिरे हुए उन पापियों को कुत्ते काट खाते हैं और वे पापी [असहाय होकर] रोते रहते हैं ॥ ४७ ॥ यमदूत उन रोते हुए पापियों के मुख में धूल भर देते हैं। वे कुछ पापियों को अनेक प्रकार के पाशों से बाँध कर मुद्गरों से मारते हैं ॥ ४८ ॥ कुछ पापियों को आरे से काठ की तरह दो टुकड़ों में चीरा जाता है। अन्य कुछ पापियों को धरती में

फेंक कर कुल्हाड़ी से उन्हें काट कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं ॥ ४९ ॥ कुछ पापियों को गढ्ढे में आधा (अर्थात् कमर तक) गाढ कर उनके शिर को बाणों से बींधा जाता है। अन्य कुछ पापियों को [रस निकालने या तेल पेरने] यन्त्र (कोल्हू) में डालकर ईख की तरह पीडित किया (पेरा) जाता है ॥ ५० ॥ कुछ पापियों को चारों ओर से जलते हुए और अङ्गारयुक्त उल्मुकों (जलती लकड़ी की मशालों) से खूब लपेट कर आग में डाले

कृताः ॥ ४९ ॥ अर्धं खात्वाऽवटे केचिद्भिद्यन्ते मूर्ध्नि सायकैः। अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्षुदण्डवत् ॥ ५० ॥ केचित्प्रज्वलमानैस्तु साङ्गारैः परितो भृशम्। उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते ते लोहपिण्डवत् ॥५१॥ केचिद्घृतमये पाके तैलपाके तथाऽपरे। कटाहे क्षिप्तवटव-त्प्रक्षिप्यन्ते यतस्ततः ॥ ५२ ॥ केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्यन्ते पुरतः पथि। बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियन्ते केऽप्यधोमुखाः ॥ ५३ ॥ क्षिप्यन्ते केऽपि कूपेषु पात्यन्ते केऽपि पर्वतात्।

हुए लोहे के पिण्ड की भाँति धौंका जाता है ॥५१॥ किसी को [कढाई में] खौलते घी में तथा किसी को खौलते हुए तेल में कढाई में बड़े के समान डाल कर इधर-उधर चलाया जाता है ॥ ५२ ॥ कुछ पापियों को मार्ग में मतवाले हाथियों के सामने फेंका जाता है और किसी को हाथ-पैर बाँध कर नीचे को मुख करके लटकाया जाता है ॥ ५३ ॥ कुछ को कुएँ में फेंका जाता है तो कुछ को पहाड़ से गिराया जाता है। कुछ को कीड़ों से भरे

कुण्ड में डुबाया जाता है जहाँ उन्हें कीड़े काट कर पीडित कर देते हैं ॥ ५४ ॥ वज्र के समान चौंच वाले बड़े कौओं और मांस के लोभी गीधों के द्वारा अपनी चौंचों से उनके शिर, नेत्र तथा मुख को खोद कर मांस निकाला जाता है ॥५५॥ कोई सूदखोर पापी ऋणी पापी को वहाँ देखकर उससे अपने ऋण को उगाहता है वह कहता है कि मेरा धन देदे। तू मुझे यमलोक में दिखलाई पड़ गया है, तूने मेरा धन खाया है ॥ ५६ ॥ नरक

निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे ॥ ५४ ॥ वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः। निष्कृष्यते शिरोदेशे नेत्रे वास्ये च चञ्चुभिः॥५५॥ ऋणं वै प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहि धनं मम। यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया ॥५६॥ एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये। छित्वा संदंसकैर्दूता मांसखण्डान् ददन्ति च ॥५७॥ एवं संताड्य तान् दूताः संकृष्य यमशासनात्। तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिपन्ति नरकेषु च ॥ ५८ ॥ नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः। तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम् ॥५९॥ चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर!।

में इस प्रकार विवाद करते हुए पापियों के मांस-खण्डों को यमदूत संड़सियों से काट कर उन्हें देते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार यमदूत उन पापियों को प्रताडित करके उन्हें खींच कर यम की आज्ञानुसार उन्हें तामिस्र आदि नरकों में फेंक देते हैं ॥ ५८ ॥ उस शाल्मली वृक्ष के समीप ही दुःखपूर्ण नरक हैं। उनमें पापियों को जो अत्यन्त दुःख मिलता है उसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५९ ॥ हे आकाशचारी गरुड! नरकों की कुल

संख्या चौरासी लाख है, उनमें से अत्यन्त भयंकर और प्रमुख इक्कीस नरक ये हैं ॥ ६० ॥ (१) तामिस्र, (२) लोहशङ्कु, (३) महारौरव, (४) शाल्मली, (५) रौरव, (६) कुड्मल, (७) कालसूत्र, (८) पूतिमृत्तिक, (९) संघात, (१०) लोहितोद, (११) सविष, (१२) संप्रतापन, (१३) महानिरय, (१४) काकोल, (१५) संजीवन, (१६) महापथ, (१७) अवीचि, (१८) अन्धतामिस्र, (१९) कुम्भीपाक, (२०) संप्रतापन और (२१) तपन-ये इक्कीस नरक हैं ॥६१-

तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेकविंशतिः ॥ ६० ॥ तमिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली ।
रौरवः कुड्मलः कालसूत्रकः पूतिमृत्तिकः ॥६१॥ संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रतापनः ।
महानिरयकाकोलौ सञ्जीवनमहापथौ ॥ ६२ ॥ अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च ।
संप्रतापननामैकस्तपनस्त्वेकविंशतिः ॥ ६३ ॥ नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः ।
नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः ॥६४॥ एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः ।
यत्र भुञ्जन्ति कल्पान्तं तास्ता नरकयातनाः ॥ ६५ ॥ यास्तामिस्रान्धतामिस्रारौरवाद्याश्च

॥६३॥ ये नरक नाना प्रकार की यातना देने वाले हैं, अनेक भेद-प्रभेद या अनेक तरह की बनावट वाले हैं, नाना प्रकार के पापों का फल देने वाले हैं और इनमें यम के दूतों के समूह के समूह भरे पड़े हैं ॥ ६४ ॥ इन नरकों में गिरे हुए मूर्ख और अधर्मी पापी एक कल्पपर्यन्त नाना नरक-यातनाएँ भोगते हैं ॥ ६५ ॥ ये जो तामिस्र,

अन्धतामिस्र और रौरव आदि नरक-यातनाएँ हैं, उन्हें नर-नारी पारस्परिक आसक्ति के कारण ही भोगते हैं ॥६६॥ इस प्रकार कुटुम्ब का भरण-पोषण करने वाला अथवा केवल अपना ही पेट भरने वाला भी मृत्यु के बाद उस कुटुम्ब तथा अपनी देह को यहीं छोड़ कर परलोक में इस तरह के फल अर्थात् नारकीय कष्ट पाता है ॥ ६७ ॥ प्राणियों से द्रोह करके पाले-पोषे गये स्थूल शरीर को यहीं छोड़ कर मनुष्य अपने पापकर्म को परलोक के

यातना। भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः ॥६६॥ एवं कुटुम्बविभ्राणं उदरम्भर एव वा। विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥६७॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्। कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ६८ ॥ दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान्। भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः ॥ ६९ ॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटम्बभरणोत्सुकः। याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ ७० ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः।

पाथेय (सम्बल) के रूप में लेकर अकेला ही अन्धकार पूर्ण नरक में जाता है ॥६८॥ अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण अधर्म से करने वाले पुरुष के पाप को दैव पहले ही नरक में पहुँचा देता है, अतः वहाँ पहुँचने पर वह अपने उस पाप का भोग आतुर होकर उस पुरुष की भाँति करता है जिसका धन चोरी हो गया हो ॥६९॥ केवल अधर्म से कुटुम्ब का भरण पोषण करने में उत्सुक रहने वाला मनुष्य अन्धकार के अन्तिम छोर में स्थित (अत्यन्त अन्धकारपूर्ण) अन्धतामिस्र नरक में गिरता है ॥ ७० ॥ मनुष्य-लोक के नीचे जितने नरक हैं तथा उनमें जितनी

यातनाएँ हैं, पापी मनुष्य क्रमशः भोगने (तथा विभिन्न पशुयोनियों में क्रमशः जन्म लेने) के पश्चात् शुद्ध होने

क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ७१ ॥

पर पुनः मर्त्यलोक में मनुष्य योनि में जन्म पाता है ॥ ७१ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

—○✱○—

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नरकप्रदपाप-निरूपणम्

गरुड बोले—हे केशव ! कृपया मुझे यह बतलाइए कि पापी मनुष्य किन पापकर्मों के कारण महाक्लेश-

गरुड उवाच—

कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः ? । कैः पापैर्नरके यान्ति तन्मे कथय केशव ! ॥१॥

श्री भगवानुवाच—

सदैवाकर्मनिरताः शुभकर्मपराङ्मुखाः । नरकान्नरकं यांति दुखाद्दुःखं भयाद्भयम् ॥२॥

प्रद और लम्बे यममार्ग में जाते हैं, किन पापों के कारण वैतरणी में गिरते हैं तथा किन पापों के कारण नरक में गिरते हैं ? ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—सदैव दुष्कर्मों में संलग्न रहने वाले, शुभकर्म से पराङ्मुख रहने वाले

मनुष्य नरक के बाद नरक, दुःख के बाद दुःख और भय के बाद फिर से भय को प्राप्त करते रहते हैं ॥ २ ॥ धर्मराज के पुर में पूर्व, पश्चिम और उत्तर इन तीन दिशाओं में स्थित द्वारों से धार्मिक जन प्रवेश करते हैं पापी उसमें दक्षिण द्वार के मार्ग से जाते हैं ॥ ३ ॥ इसी दक्षिण द्वार के महादुःखद मार्ग में वैतरणी नदी है, उसमें जो पापी जाते हैं उनको मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ ब्राह्मण की हत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, गौ हत्या

धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः। पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत् ॥३॥
अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी। तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते ॥४॥
ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च गोघ्ना वा बालघातकाः। स्त्रीघाती गर्भपाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः ॥५॥
ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा। स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बालद्रव्यहराश्च ये ॥६॥
ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः। विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः ॥७॥
दोषग्राही गुणश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः। नीचानुरागिणो मूढाः सत्सङ्गतिपराङ्मुखाः ॥८॥

करने वाले, बाल हत्या करने वाले, स्त्री की हत्या करने वाले, गर्भपात करने वाले, गुप्त रूप से पाप करने वाले ॥ ५ ॥ गुरु के धन का हरण करने वाले, देवता के धन का हरण करने वाले, ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाले, स्त्री के धन का हरण करने वाले, बालक के धन का हरण करने वाले ॥ ६ ॥ ऋण लेकर उसे न चुकाने वाले, न्यास (धरोहर) में रखे हुए धन को हड़प लेने वाले, विश्वासघाती, अन्न में जहर मिला कर किसी को मारने वाले ॥ ७॥ दूसरों के दोषों को ग्रहण करने वाले, दूसरों के गुणों की प्रशंसा नहीं करने वाले, गुणी व्यक्ति

के प्रति डाह रखने वाले, नीच पुरुषों से अनुराग रखने वाले, मूर्ख, सत्सङ्गति से दूर रहने वाले ॥ ८ ॥ तीर्थों, सज्जनों, सत्कर्मों गुरुजनों तथा देवों में से किसी की भी निन्दा करने वाले, वेद, पुराण, मीमांसा, न्याय और वेदान्त की बुराई करने वाले ॥ ९ ॥ दुःखी मनुष्य को देखकर प्रसन्न होने वाले, प्रसन्न (सुखी) मनुष्य को भी दुःखी बनाने वाले, दुर्वचन बोलने वाले, सदा दूषित चित्त वाले ॥ १० ॥ हितकर वचन और शास्त्र की बातों को

तीर्थ-सज्जन-सत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः । पुराण-वेद-मीमांसा-न्यायवेदान्तदूषकाः ॥९॥ हर्षिता दुखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः । दुष्टवाक्यस्य वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा ॥१०॥ न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्ताङ्कदापि न । आत्मसम्भाविताः स्तब्धा मूढाः पण्डित-मानिनः ॥११॥ एते चान्ये च बहवः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः । गच्छन्ति यममार्गे हि रोदमाना दिवानिशम् ॥१२॥ यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति । तस्यां पतन्ति ये पापास्ता-नहं कथयामि ते ॥१३॥ मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च । आचार्यं चापि

कभी भी न सुनने वाले, अपने मन से अपने को बड़ा समझने वाले, घमण्डी, मूर्ख, कुछ न जानते हुए भी स्वयं को पण्डित मानने वाले ॥ ११ ॥ ये तथा अन्य बहुत-से धर्म-हीन पापी यममार्ग में रात-दिन रोते हुए चलते हैं ॥ १२ ॥ जो पापी यमदूतों के द्वारा ताडित किये जाने पर वैतरणी को प्राप्त करते हैं और उसमें गिरते हैं उनका वर्णन मैं तुमसे करता हूँ ॥ १३ ॥ माता-पिता, गुरु, आचार्य तथा अन्य पूज्यजनों का अपमान करने वाले उस

वैतरणी नदी में डूबते हैं ।।१४।। पतिव्रता, सच्चरित्रवाली, कुलीन और नम्र स्वभाव की स्त्री को द्वेषवश त्यागने वाले वैतरणी में गिरते हैं ।।१५।। हजारों गुणों वाले सत्पुरुषों में भी दोषारोपण करने वाले तथा उनकी अवहेलना करने वाले भी वैतरणी में गिरते हैं ।। १६ ।। ब्राह्मण को दान देने का वचन देकर बाद में उसको यथार्थतः (उसी रूप में) न देनेवाला तथा जो ब्राह्मण को दान लेने के लिए बुलाकर भी उसे नहीं देता वे दोनों ही वैतरणी में गिर

पूज्यं च तस्यां मज्जन्ति ते नराः ।। १४ ।। पतिव्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम् । स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषाद्वैतरण्यां पतन्ति ते ।। १५ ।। सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये । तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते ।।१६।। ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः । आहूय नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च सन्ततम् ।। १७ ।। स्वयं दत्ताऽपहर्ता च दानं दत्वाऽनुतापकः । परवृत्तिहरश्चैव दाने दत्ते निवारकः ।।१८।। यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभंगकरश्च यः । क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचरकर्षकः ।। १९ ।। ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद्वृषलीपतिः ।

कर सदैव वहीं रहते हैं ।। १७ ।। स्वयं दिये हुए दान को बाद में वापस ले लेने वाला, दान देकर पश्चात्ताप करने वाला, दूसरे की आजीविका को छीनने वाला, दिये हुए या दिये जा रहे दान को देने से रुकवाने वाला ।।१८।। [विघ्न उपस्थित करके] यज्ञ को नष्ट करने वाला, कथा में विघ्न डालने वाला, खेत की सीमा को हटा-बढ़ा देने वाला और गोचर भूमि को खेती के लिए जोतने वाला मनुष्य ।। १९ ।। [दूध, दही, घी, तेल, गुड़,

आदि] रसयुक्त वस्तुओं को बेचने वाला ब्राह्मण, वृषली ! (अर्थात् शूद्र जाति की स्त्री या ....) का पति बनने वाला ब्राह्मण, वेद में बतलाये गये यज्ञ से भिन्न समय में केवल अपने खाने के लिए पशु को मारने वाला ब्राह्मण ॥ २० ॥ ब्राह्मण के योग्य कर्मों को न करने के कारण भ्रष्ट, मांसभोजी, मद्यपान करने वाला, उच्छृङ्खल स्वभाव का और शास्त्रों का अध्ययन न करने वाला ब्राह्मण ॥ २१ ॥ वेद पढ़ने वाला शूद्र, कपिला (भूरे रंग

वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः ॥ २० ॥ ब्रह्मकर्म परिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः । उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः ॥ २१ ॥ वेदाक्षरं पठेच्छूद्रः कापिलं यः पयः पिबेत् । धारयेद् ब्रह्मसूत्रं च भवेद्वा ब्राह्मणीपतिः ॥ २२ ॥ राजभार्याभिलाषी च परदारापहारकः । कन्यायां कामुकश्चैव सतीनां दूषकश्च यः ॥ २३ ॥ एते चाऽन्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः । विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते ॥ २४ ॥ सर्वं मार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा

की) गौ का दूध पीने वाला शूद्र, यज्ञोपवीत धारण करने वाला शूद्र तथा ब्राह्मणी स्त्री का पति बनने वाला शूद्र ॥२२॥ राजा की स्त्री के साथ व्यभिचार की इच्छा करने वाला किसी भी वर्ण का पुरुष, पराई स्त्री का हरण करने वाला, कन्या के साथ कामोपभोग की इच्छा करने वाला और पतिव्रता स्त्रियों के शील को दूषित करने वाला ॥२३॥ ये सभी पापी तथा निषिद्ध आचरण करने वाले (निषिद्ध आचरण करने के लिए उत्सुक रहने वाले) और शास्त्र द्वारा अपने लिए विहित कर्मों को छोड़ देने वाले पापी वैतरणी में गिरते हैं ॥ २४ ॥ यमलोक के समस्त मार्ग

को पार करके पापी यम के भवन में पहुँचते हैं और यम की आज्ञा से यमदूत उन्हें फिर से लाकर उसी वैतरणी में फेंक देते हैं ॥ २५ ॥ हे गरुड ! वह वैतरणी सभी प्रमुख (इक्कीस) नरकों की अपेक्षा सर्वाधिक कष्टप्रद है। अतः पापियों को यमदूत उसमें फेंकते हैं ॥ २६ ॥ जिन मनुष्यों की मृत्यु के पूर्व काली गौ का दान नहीं दिया गया हो तथा मृत्यु के बाद बान्धवों द्वारा और्ध्वदैहिक कृत्य (अन्त्येष्टि और पिण्डदान आदि) न किये गये हों

यमालये । पुनर्यमाज्ञयागत्य दूतास्तस्यां क्षिपन्ति तान् ॥ २५ ॥ या वै धुरन्धरा सर्वघोरेयाणां खगाधिप ! । अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति वैतरण्यां च पापिनः ॥ २६ ॥ कृष्णागौर्यदि नो दत्ता नोर्ध्वदेहक्रियाकृताः । तस्यां भुक्त्वा महद्दुःखं यान्ति वृक्षं तटोद्भवम् ॥२७॥ कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः । छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः ॥२८॥ छेदयन्त्यतिवृक्षांश्च वनारामविभञ्जकाः । व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशीलनाशकाः ॥२९॥ भर्तारं दूषये-

वे उस वैतरणी में अत्यन्त कष्ट भोगने के पश्चात् उसके तटवर्ती शाल्मली वृक्ष में जाते हैं ॥ २७ ॥ झूठी गवाही देने वाले, धर्म-पालन का ढोंग मात्र करने वाले (अथवा वेदबाह्य धर्म का पालन करने वाले), छल-छद्म (धोखाधड़ी) से धन कमाने वाले और चोरी करके अपनी आजीविका चलाने वाले ॥ २८ ॥ अत्यधिक वृक्षों को काटने वाले और वन-उपवन तथा बाग-बगीचों को नष्ट करने वाले, व्रत और तीर्थ करना छोड़ कर विधवा स्त्री के शील को नष्ट करने वाले ॥ २९ ॥ तथा पति के ऊपर दोषारोप करके मन से पर-पुरुष की कामना करने वाली नारी,

इत्यादि पापी शाल्मली के वृक्ष में अत्यधिक मार खाते हैं ।। ३० ।। यमदूतों के द्वारा मारे-पीटे जाने पर वे पापी उस वृक्ष से नीचे गिर पड़ते हैं। तब यमदूत उन्हें नरकों में फेंकते हैं। अब मैं तुम्हें उन पापियों के विषय में बतलाता हूँ जो उन नरकों में गिरते हैं ।। ३१ ।। नास्तिक (जो कि वेद को प्रमाण नहीं मानते अथवा ईश्वर पर विश्वास नहीं करते), मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, कदर्य (अर्थात् कञ्जूसी के कारण स्वयं अपने को, धार्मिक

नारी परं मनसि धारयेत्। इत्याद्याः शाल्मलीवृक्षे भुञ्जते बहुताडनम् ।। ३० ।। ताडनात्पतितान् दूताः क्षिपन्ति नरकेषु तान्। पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते ।। ३१ ।। नास्तिका भिन्नमर्यादाः कदर्या विषयात्मकाः। दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः ।।३२।। कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम्। प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः ।।३३।। विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून् भृत्यांस्तथा गुरून्। उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः

कृत्यों को, पुत्र, स्त्री, देवता, अतिथि और भृत्यों को पीडित करने वाले कञ्जूस) विषय-भोग में लिप्त रहने वाले, दम्भी और कृतघ्न (अर्थात् दूसरे के द्वारा किये गये उपकार का आभार नहीं मानने वाले) मनुष्य नरक में गिरते हैं ।। ३२ ।। कुआँ, तालाब, बावड़ी, देवालय तथा पूजा के घरों को तोड़ने वाले मनुष्य नरक में गिरते हैं ।। ३३ ।। जो मनुष्य स्त्री, छोटे बच्चों, पालन करने योग्य पारिवारिक जनों तथा नौकरों-चाकरों और गुरुजनों को खिलाये बिना तथा पितृयज्ञ (तर्पण) और देवयज्ञ (देवों के लिए हवन) किये बिना भोजन करते

हैं वे नरक में गिरते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य कीले गाड़ कर बाँध बना कर अथवा लकड़ी पत्थर या काँटे डाल कर मार्ग को रोकते हैं वे नरक में गिरते हैं ॥ ३५ ॥ शिव, पार्वती, विष्णु, सूर्य, गणेश, सदाचारी-सज्जन, गुरु तथा विद्वान् की पूजा जो मूर्ख नहीं करते वे नरक में गिरते हैं ॥ ३६ ॥ दासी (शूद्र वर्ण की स्त्री) को अपने साथ सेज में सुलाने वाले ब्राह्मण का अधःपतन हो जाता है। शूद्रा में सन्तान उत्पन्न करने पर वह ब्राह्मणत्व से

॥ ३४ ॥ शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा। ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ३५ ॥ शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम्। न पूजयन्ति ये मन्दास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३६ ॥ आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम्। प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥३७॥ न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि द्विजोऽधमः। तं पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः ॥३८॥ ब्राह्मणानां च कलहं गोयुद्धं कलहप्रियाः। न वर्जन्त्यनुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः ॥ ३९ ॥ अनन्यशरणस्त्रीणामृतुकालव्यतिक्रमम्। ये प्रकुर्वन्ति

हीन (च्युत) हो जाता है ॥ ३७ ॥ वह अधम ब्राह्मण नमस्कार के योग्य नहीं है। उसकी पूजा जो मूर्ख करते हैं वे नकर में गिरते हैं ॥ ३८ ॥ दूसरों के कलह से प्रसन्न होने वाले जो मनुष्य ब्राह्मणों के कलह तथा गायों अथवा बैलों की लड़ाई को नहीं रुकवाते, अपितु उसको बढावा देते हैं, वे नरक में जाते हैं ॥ ३९ ॥ अन्य किसी भी पुरुष की शरण में न जाने वाली पतिव्रता स्त्रियों के साथ द्वेषवश समागम न करके उनके ऋतुकाल को निष्फल

कर देने वाले पति भी नरक में गिरते हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष कामान्ध होकर रजस्वलागमन करते हैं, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति जैसे पर्वों की रात्रि में, दिन में, और स्वयं श्राद्ध करने या किसी के श्राद्ध में भोजन के दिन (रात में) स्त्री-समागम करते हैं वे नरक में गिरते हैं ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य शरीर के मल (मूत्र, विष्ठा, थूक, मवाद आदि) को अग्नि अथवा जल में फेंकते हैं या बगीचे या मार्ग या गोष्ठ में फेंकते हैं वे नरक में गिरते

विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः ॥ ४० ॥ येऽपि गच्छन्ति कामान्धा नरा नारीं रजस्वलाम् । पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरकगामिनः ॥ ४१ ॥ ये शारीरं मलं वह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च । आरामे पथि गोष्ठे वा ते व नरकगामिनः ॥४२॥ शस्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा । विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः ॥४३॥ चर्मविक्रयिणो वैश्याः केशविक्रेयकाः स्त्रियः । विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरकगामिनः ॥ ४४ ॥ अनाथं नाऽनुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः । विनाऽपराधं दण्डन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ४५ ॥ आशया समनुप्राप्तान्ब्राह्मणा-

हैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य शस्त्रों, बाणों तथा धनुषों का निर्माण तथा विक्रय करते हैं वे नरक में गिरते हैं ॥ ४३ ॥ चमड़ा बेचने वाले वैश्य, केश (अर्थात् भग) बेचने वाली (व्यभिचारिणी) स्त्रियाँ तथा विष को बेचने वाले सभी लोग नरक में गिरते हैं ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अनाथ पर दया नहीं करते, सत्पुरुषों से द्वेष करते हैं तथा जो अपराध के बिना भी दण्ड देते हैं वे नरक में गिरते हैं ॥ ४५ ॥ आशा लगा कर घर में आये हुए ब्राह्मणों, अति-

थियों तथा याचकों को रसोई तैयार होने पर भी भोजन नहीं कराने वाले नरक में गिरते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य किसी भी प्राणी में विश्वास नहीं करते तथा जो सभी प्राणियों के प्रति निर्दय और कुटिल हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य स्वयं ही जप (सन्ध्या वन्दन आदि) तप (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि) सम्बन्धी नियमों को संकल्प पूर्वक ग्रहण करके बाद में इन्द्रियां संयम नहीं रख पाने के कारण उन्हें छोड़ देते हैं वे नरक में गिरते

नर्थिनो गृहे । न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः ॥ ४६ ॥ सर्वभूतेष्वविश्वस्तस्तथा तेषु विनिर्दयाः । सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः ॥ ४७ ॥ नियमान्समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः । विप्लापयन्ति तान् भूयस्ते वै नरकगामिनः ॥ ४८ ॥ अध्यात्मविद्या-दातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम् । तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः ॥४९॥ मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये । आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः ॥५०॥ विवाहं देवयात्रां च तीर्थसार्थान्विलुम्पति । स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः ॥ ५१ ॥ अग्निंदद्यान्महा-

हैं ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य अध्यात्म विद्या का ज्ञान देने वाले गुरु तथा पुराण को सुनाने वाले का सम्मान नहीं करते वे नरक में गिरते हैं ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य मित्र से द्रोह करते हैं, दो प्रेमियों की पारस्परिक प्रीति को समाप्त करते हैं अथवा किसी की आशा को तोड़ते हैं वे भी नरक में जाते हैं ॥ ५० ॥ जो मनुष्य विवाह और देवयात्रा में विघ्न डालता है तथा जो तीर्थयात्रियों के समूह को लूटता है सदा वह घोर नरक में रहता है और उसमें से

फिर कभी भी नहीं लौट पाता ॥ ५१ ॥ जो महापापी किसी के घर में, ग्राम में तथा वन में आग लगाता है उसे यमदूत नरक में ले जाकर अग्नि-कुण्डों में पकाते हैं ॥ ५२ ॥ अग्नि से शरीर जल जाने पर जब वह छाया की माँग करता है तो यमदूत उसे असिपत्र वन के बीच में पहुँचा देते हैं ॥ ५३ ॥ वहाँ तलवार के समान तीखे पत्तों से जब उसका शरीर कट जाता है तब यमदूत उससे कहते हैं—अरे पापी ! इस शीतल छाया में तू सुख की नींद

ग० पु०

पापी गृहे ग्रामे तथा वने । स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते ॥५२॥ अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यदा छायां प्रयाचते। नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे ॥ ५३ ॥ खड्गतीक्ष्णैश्च तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत् । तदोचुः शीतलच्छाये सुखनिद्रां कुरुष्व भो ! ॥५४॥ पानीयं पातुमिच्छन्वै तृषार्तो यदि याचते । पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते ॥५५॥ पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते । पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते ॥ ५६ ॥ कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत् । विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन् ॥५७॥

ले ॥ ५४ ॥ प्यास से पीडित होने पर जब वह पीने की इच्छा से पानी माँगता है तो उसे यमदूतों के द्वारा अत्यन्त गरम तेल पीने के लिए दिया जाता है ॥ ५५ ॥ तब वे यमदूत कहते हैं पानी पियो और अन्न खाओ। उस (गरम तेल) के पीते ही उनकी आँतें जल जाती हैं और वे गिर पड़ते हैं ॥ ५६ ॥ किसी प्रकार फिर से उठ कर वे अत्यन्त दीन होकर विलाप करते हैं। वे विवश होकर केवल उच्छ्वास (लम्बी सांस) लेते रहते हैं और

.भाटी.

कुछ कहने की सामर्थ्य भी उनमें नहीं रहती है ॥ ५७ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार पापियों की बहुत-सी यातनाएँ बतलाई गई हैं । उनको विस्तार से कहने से क्या लाभ ? उनका वर्णन तो इतिहास, पुराण और स्मृति आदि सभी शास्त्रों में किया ही गया है ॥५८॥ इस प्रकार क्लेश भोगते हुए हजारों नर-नारियों को घोर नरक में प्रलय पर्यन्त सन्तप्त किया जाता है ॥ ५९ ॥ पापी नरक में अपने पाप का अक्षय फल भोग कर पुनः वहीं पर जन्मग्रहण

इत्येवं बहुशस्तार्क्ष्य यातनाः पापिनां स्मृताः । किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ॥५८॥
एवं वै क्लिश्यमानास्ते नरा नार्यः सहस्रशः । पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम् ॥५९॥
तस्याऽक्षयं फलं भुक्त्वा तत्रैवोत्पद्यते पुनः । यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः ॥६०॥
वृक्ष-गुल्म-लता-वल्ली-गिरयश्च तृणानि च । स्थावरा इति विख्याता महामोहसमावृताः ॥६१॥ कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः । चतुरशीतिलक्षेषु कथिता देवयोनयः ॥६२॥

करता है । यम की आज्ञा से पृथिवी में आकर पापी स्थावर आदि की योनियों को प्राप्त करते हैं ॥ ६० ॥ वृक्ष, गुल्म (झाड़ी), लता, वल्ली (बेल), तृण (घास) और पर्वतों को स्थावर कहा जाता है और ये सब महामोह से आवृत (ढके) रहते हैं ॥ ६१ ॥ [वृक्ष, गुल्म, लता आदि स्थावर तथा] कीड़े, पशु, पक्षी, जलचर तथा देवयोनियों के प्राणियों सहित कुल मिला कर चौरासी लाख योनियाँ कही गयी हैं ॥ ६२ ॥ [नरक से आये

हुए पापी] इन सभी चौरासी लाख योनियों में क्रमशः पैदा होने के पश्चात् मनुष्य योनि में आते हैं। मनुष्य योनि में भी वे सर्वप्रथम चाण्डाल योनि में पैदा होते हैं। उसमें भी वे पापचिह्नों (कोढ़ आदि) से युक्त तथा

एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति मनुष्यताम्। मनुष्येऽपि श्वपाकेषु जायन्ते नरकागताः॥ तत्रापि पापचिह्नैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः॥ ६३ ॥ गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः। भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः॥ ६४॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे नरकप्रदपापनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥ ४॥

अत्यन्त दुःखी होते हैं॥ ६३ ॥ पापचिह्नों से युक्त नर-नारी महा गलित कुष्ठी [कोढ से गलते हुए अङ्गोंवाले] जन्मान्ध या किसी महारोग से युक्त होते हैं॥ ६४ ॥

—◌*◌—

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पापचिह्ननिरूपणम्

गरुड बोले—हे केशव ! जिस-जिस पाप को करने से शरीर में जो-जो चिह्न होता है और जिस-जिस पाप से पापी जिस-जिस योनि में जाते हैं वह सब मुझे बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—नरक भोग कर आये हुए पापी अपने जिस पाप से जिस योनि में जाते हैं और जिस पाप से उनके शरीर में जो चिह्न होता है वह मुझ से

गरुड उवाच—

येन येन च पापेन यद्यच्चिह्नं प्रजायते। यां यां योनिं च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव ! ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

यैः पापैर्यान्ति यां योनिं पापिनो नरकागताः। येन पापेन यच्चिह्नं जायते मम तच्छृणु ॥२॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्याद् गोघ्नः स्यात्कुब्जको जडः। कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डाल-

सुनो ॥ २ ॥ ब्रह्महत्या करने वाले महापापी नरक भोगने के बाद पुनर्जन्म में क्षयरोगी होता है, गोहत्या करने वाला कुबड़ा तथा जड (मूर्ख) होता है, कन्या की हत्या करने वाला कोढ़ी होता है और ये तीनों ही चाण्डाल

योनि में उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ स्त्री की हत्या करने वाला और गर्भपात करने वाला पुलिन्द जाति में उत्पन्न होकर रोगी होता है। अगम्यागमन (अर्थात् जिस स्त्री के साथ संभोग निषिद्ध है उसके साथ समागम) करने वाला नपुंसक होता है और गुरु (जन्मदाता, विद्यादाता आदि) की स्त्री के साथ संभोग करने वाला चर्मरोग से पीडित होता है ॥ ४ ॥ मांस खाने वाले ब्राह्मण का रंग अत्यन्त लाल होता है, मद्यपान करने वाला ब्राह्मण काले दाँतों

योनिषु ॥ ३ ॥ स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान् भवेत्। अगम्यागमनात्षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ४ ॥ मांसभोक्ताऽतिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः। अभक्ष्यभक्षको लौल्याद्-ब्राह्मणः स्यान्महोदरः ॥५॥ अदत्त्वा मिष्टमश्नाति स भवेद्गलगण्डवान्। श्राद्धाऽन्नमशुचि दत्त्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते ॥६॥ गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः। निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥ कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात्पंक्तिभेदकः। अनोष्ठः स्याद्विवाहघ्नो

वाला होता है, चपलता या स्वादिष्ट खाने के लोभ वश अभक्ष्यभक्षण करने वाला ब्राह्मण बड़े पेट वाला होता है ॥ ५ ॥ दूसरों को दिये विना मिष्टान्न आदि खाने वाला गलगण्ड (गण्डमाला) नामक रोग से युक्त होता है। श्राद्ध में अशुद्ध अन्न देने वाला चित्रकुष्ठी (सफेद कोढ़ से युक्त) होता है ॥६॥ अभिमान वश गुरु का अपमान करने वाला मनुष्य अपस्मार (मृगी) रोग से पीडित होता है। वेद और शास्त्रों की निन्दा करने वाला पाण्डुरोग (पीलिया) से पीडित होता है ॥७॥ झूठी गवाही देने वाला गूँगा होता है, एक पंक्ति में भोजन के लिए बैठे

हुए लोगों को भेद-भाव पूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन देने वाला काना होता है। किसी के विवाह में बाधा डाल कर उसे न होने देने वाला ओष्ठरहित अर्थात् विना होंठ का होता है और पुस्तक चुराने वाला जन्मान्ध होता है ॥८॥ गौ तथा ब्राह्मण को एक पैर से लात मारने वाला खञ्ज अर्थात् एक पैर से लँगड़ा और दोनों पैरों से लात मारने पर पङ्गु अर्थात् दोनों पैरों से लँगड़ा होता है। झूठ बोलने वाला गूँगा होता है और झूठी बात सुनने

जन्मान्धः पुस्तकं हरेत् ॥८॥ गोब्राह्मणपदाघातात्खञ्जः पङ्गुश्च जायते। गद्गदोऽनृतवादी स्यात्तच्छ्रोता बधिरो भवेत् ॥ ९ ॥ गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटोऽग्निप्रदायकः। दुर्भगः पलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक् ॥ १० ॥ हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः। कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः ॥११॥ अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः। चातको जलहर्ता स्याद्विषहर्ता च वृश्चिकः ॥१२॥ शाकं पत्रं शिखी हृत्वा गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान्।

वाला बहिरा होता है ॥ ९ ॥ विष देने वाला जड (मूर्ख) और उन्मत्त (पागल) होता है, आग लगाने वाला गञ्जा होता है। मांस विक्रेता अभागा होता है और दूसरे का मांस खाने वाला रोगी होता है ॥ १० ॥ रत्नों की चोरी करने वाला हीनजाति में उत्पन्न होता है, सोने की चोरी करने वाला कुनखी अर्थात् खराब और विगड़े हुए नाखूनों वाला होता है और किसी भी धातु को चुराने वाला निर्धन होता है ॥ ११ ॥ अन्न की चोरी करने वाला चूहा होता है, धान्य (अर्थात् छिलके युक्त अनाज जैसे धान आदि) को चोरी करने वाला शलभ (पतङ्गा या

टिड्डी) होता है, जल की चोरी करने वाला चातक होता है और विष की चोरी करने वाला विच्छू होता है ।।१२।। साग-पात चुराने वाला मोर होता है, शुभ गन्ध वाली वस्तुओं की चोरी करने वाला छछून्दर होता है, मधु चुराने वाला डाँस होता है, मांस चुराने वाला गीध होता है और नमक की चोरी करने वाला चींटी की योनि में पैदा होता है ।। १३ ।। पान, फल और फूल आदि की चोरी करने वाला वन में बन्दर होता है । जूता, घास और

मधु दंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका ।।१३।। ताम्बूलफलपुष्पादिहर्ता स्याद्वानरो वने । उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु ।।१४।। यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान्विलुम्पति । मृगयाव्यसनी यस्तु छागः स्याद्वधिकगृहे ।।१५।। यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद्गिरौ । निरंकुशस्वभावः स्यात्कुञ्जरो निर्जने वने ।। १६ ।। वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्षाश्च ये द्विजाः । अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने ।। १७ ।। गायत्रीं न स्मरेद्यस्तु यो न सन्ध्यामु-

कपास में से किसी भी वस्तु की चोरी करने वाला मेष (भेड़) की योनि में जन्म लेता है ।। १४ ।। हिंसा और लूटपाट से जीविका चलाने वाला जो व्यक्ति मार्ग में वनियों अथवा यात्रियों के समूह को लूटता है तथा जो मनुष्य मृगया का व्यसनी (अर्थात् आखेट का शौकीन) है वह वधिक (कसाई) के घर में बकरा होता है ।।१५।। विषपान करके मरने वाला पहाड़ में काला सर्प होता है । निरंकुश स्वभाव का मनुष्य निर्जन वन में हाथी होता है ।। १६ ।। जो ब्राह्मण बलि-वैश्वदेव आदि नहीं करते और [भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोड़ कर] सब कुछ खा लेते

हैं और जो द्विजाति किसी भोज्य पदार्थ को जाँचे परखे बिना खा लेते हैं वे निर्जन वन में बाघ होते हैं ॥१७॥ जो ब्राह्मण गायत्री मन्त्र को भूल जाता है, जो सन्ध्या-वन्दन नहीं करता हृदय से दूषित मनोवृत्ति वाला होने पर भी बाहर से सज्जन की तरह दिखलाई पड़ता है, वह बगुला होता है ॥१८॥ जिनका यज्ञ नहीं करना चाहिए उनका यज्ञ करने वाला ब्राह्मण गाँव में का सूअर होता है। [दक्षिणा के लोभ से] अनेक यजमानों का यज्ञ कराने

पासते। अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः स भवेद्ब्राह्मणो बकः ॥ १८ ॥ अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद्ग्रामसूकरः। खरो वै बहुयाजित्वात्काकोऽनिर्मन्त्रभोजनात् ॥१९॥ पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद्द्विजः। गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद्गोखरः पशुः ॥२०॥ गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ २१ ॥ प्रतिश्रुतं

वाला गधा होता है। अमृतोपस्तरणं० आदि मन्त्रों को पढ़े बिना (अथवा बिना निमन्त्रण पाये किसी भोज में) भोजन करने वाला कौआ होता है ॥ १९ ॥ योग्य शिष्य को विद्या न देने वाला ब्राह्मण बैल होता है और जो शिष्य गुरु की सेवा नहीं करता वह गो-खर[1] (बैल और गधा) जैसे पशुओं की योनि को प्राप्त करता है ॥२०॥ गुरु के प्रति हुँकार और तुंकार (अर्थात् तू-तू करके अपशब्दों का प्रयोग) करने वाला तथा ब्राह्मण को वाद-विवाद में पराजित करने वाला निर्जन वन-प्रदेश में ब्रह्मराक्षस होता है ॥ २१ ॥ [जो मनुष्य] ब्राह्मण को

१. सस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं सतुषं धान्यमुच्यते। निस्तुषः तण्डुलः प्रोक्तः स्विन्नमन्नमुदाहृतम् ॥

पृ०८१ टि०१ देखें

दान देने का वचन देकर भी नहीं देता वह सियार होता है। सत्पुरुषों का अनादर करके मुख से आग उगलने वाला फेत्कार (सियार) होता है ॥२२॥ मित्र से द्रोह करने वाला पर्वत में गीध होता है, क्रय-विक्रय में धोखा-धड़ी करने वाला उल्लू होता है और वर्णाश्रम व्यवस्था की निन्दा करने वाला वन में कबूतर होता है ॥ २३ ॥ जो किसी की आशा को तोड़ता है, जो किसी के प्रेम को तोड़ता है और जो द्वेष के कारण अपनी स्त्री को छोड़

द्विजे दानमदत्त्वा जम्बुको भवेत्। सतामसत्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत् ॥ २२ ॥
मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्। वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने ॥२३॥
आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः। यो द्वेषात् स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत् ॥२४॥
मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत्। गर्भे योनौ विनष्टः स्याद् यावद्योनिसहस्रशः ॥२५॥ श्वश्रो-ऽपशब्ददा[1] नारी नित्यं कलहकारिणी। सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्सते च या ॥२६॥

देता है वह चिरकाल तक चकोर (चकवा) होता है ॥ २४ ॥ माता-पिता अथवा गुरु से द्वेष करने वाला तथा भाई-बहिनों से वैर करने वाला हजारों जन्मों तक गर्भ में ही नष्ट होता है या योनि में ही मरता रहता है ॥२५॥ अपने सास-ससुर को गाली देने वाली तथा नित्य कलह करने वाली नारी जोंक होती है और अपने पति को झिड़कने वाली नारी जूँ होती है ॥ २६ ॥ अपने पति को छोड़ कर परपुरुष का सेवन करने वाली नारी वल्गुली,

१. श्वश्रोगालिप्रदा-निर्णयसागर की प्रति का पाठ।

छिपकली अथवा दो मुखों वाली नागिन (सर्पिणी) होती है ॥ २७ ॥ अपने गोत्र को स्त्री के साथ मैथुन करके अपने गोत्र को भ्रष्ट करने वाला क्रमशः लकड़बग्घा, सल्लक (साही) और रीछ की योनियों में जन्म लेता है ॥ २८ ॥ तपस्विनी (भिक्षुणी) के साथ संभोग करने वाला कामुक पुरुष मरुस्थल (रेगिस्तान) में पिशाच होता है और जो स्त्री युवती या ऋतुमती नहीं हुई हो उसके साथ संभोग करने वाला पुरुष वन में अजगर होता है ॥२९॥

स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी । वल्गुली गृहगोधा स्याद् द्विमुखी वाऽथ सर्पिणी ॥२७॥
यः स्वगोत्रोपघाती च स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात् । तरक्षः शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते ॥२८॥
तापसीगमनात्कामी भवेन्मरुपिशाचकः । अप्राप्तयौवनासङ्गात्भवेदजगरो वने ॥ २९ ॥ गुरु-दाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः । राज्ञीं गत्वा भवेद्दुष्टो मित्रपत्नीं च गर्दभः ॥३०॥
गुदगो विड्वराहः स्याद् वृषः स्याद् वृषलीपतिः । महाकामी भवेद्यस्तु स्यादश्वः काम-लम्पटः ॥ ३१ ॥ मृतस्यैकादशाहं तु भुञ्जानः श्वा विजायते । लभेद्देवलको विप्रो योनिं

गुरु (जन्मदाता अथवा विद्यादाता) की स्त्री के साथ कामोपभोग की इच्छा करने वाला कृकलास (गिरगिट या विषखोपड़ा) होता है रानी तथा मित्र की पत्नी के साथ संभोग करने वाला दुष्ट मनुष्य गधा होता है ॥३०॥ गुदामैथुन करने वाला विष्ठाभोजी वराह होता है । वृषली (शूद्री) का पति वृषभ अर्थात् बैल होता है । अत्यन्त कामी मनुष्य कामलम्पट (कामुक) घोड़ा होता है ॥ ३१ ॥ मृतका शौच वाले के घर में एकादशाह तक भोजन

१. श्रीमद्भागवत पुराण ११।२९।१६ प्रणमेद दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् में प्रयुक्त 'गोखरम्' का तात्पर्य भी गो एवं गधा ही है।

करने वाला कुत्ता होता है और देवलक (देव सम्बन्धी धन को खाने वाला) ब्राह्मण मुर्गे की योनि को प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ जो अधम ब्राह्मण धनप्राप्ति के लिए देव-पूजा करता है वह देवलक कहलाता है। ऐसा ब्राह्मण हव्य अर्थात् देवकार्य और कव्य अर्थात् पितृकार्य में गर्हणीय (त्याज्य) है ॥ ३३ ॥ महापापी अपने द्वारा किये हुए महापापों के फलस्वरूप घोर और दारुण नरकों को प्राप्त करके [वहाँ प्राप्त नाना यातनाओं से पाप] कर्मों का

कुक्कुटसंज्ञकाम् ॥ ३२ ॥ द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः । स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ॥३३॥ महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य दारुणान्। कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ॥ ३४ ॥ खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा योनिमृच्छति। वृकश्वानशृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु ॥ ३५ ॥ कृमिकीटपतंगत्वं स्वर्णस्तेयी समाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥ ३६ ॥ परस्य योषितं हृत्वा न्यासापहरणेन च । ब्रह्मस्वहर-

क्षय हो जाने पर पुनः इस लोक में जन्म ग्रहण करते हैं ॥ ३४ ॥ ब्रह्महत्या करने वाला गधा, ऊँट और भैंस की योनि पाता है। सुरा (मद्य) पीने वाले भेड़िया, कुत्ता और सियार की योनि पाते हैं ॥ ३५ ॥ सोने की चोरी करने वाला कीड़ा-मकोड़ा, पतङ्गा आदि की योनि पाता है, गुरुतल्पग (गुरु की पत्नी के साथ दुष्कर्म करने वाला) क्रमशः तृण (घास), गुल्फ (झाड़ी-झुरमुट) और लता की योनि पाता है ॥ ३६ ॥ परस्त्रीहरण, न्यास

(धरोहर) का हरण तथा ब्राह्मण के धन का हरण करने वाला ब्रह्म राक्षस होता है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण का धन प्रेमवश खाने पर भी कुल की सात पीढ़ियों तक के पुरुषों को जला देता है और वही धन यदि बलात् छीन कर अथवा चोरी से खाया जाता है तो वह खाने वाले के कुल को चन्द्रमा और तारों की स्थिति रहने तक अर्थात् सदा के लिए जला देता है ॥ ३८ ॥ मनुष्य लोहे के चूर्ण को तथा पत्थर के चूर्ण को और यहाँ तक कि विष

णाच्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः ॥३७॥ ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । बलात्कारेण चौर्येण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥ ३८ ॥ लोहचूर्णाश्मचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः । ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ? ॥ ३९ ॥ ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च । युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ४० ॥ देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ४१ ॥ स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम् । अन्येभ्यो

को भी पचा सकता है, किन्तु तीनों लोकों में ब्राह्मण के धन को कौन पुरुष पचा सकता है ? ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण के धन से पाले-पोसे गये वाहन और सैन्य-बल युद्धकाल में, बालू से बाँधे गये बाँध की तरह, नष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥ देवता के धन के उपभोग, ब्राह्मण के धन के अपहरण तथा ब्राह्मण के अतिक्रमण से कुलों का पतन (अथवा नाश) हो जाता है ॥ ४१ ॥ अपने आश्रित या अपने द्वारा अपनाये गये ब्राह्मण के वेदशास्त्र-परायण

होने पर भी उसे छोड़ कर अन्य ब्राह्मणों को दान देना ही ब्राह्मण का अतिक्रमण कहलाता है ॥ ४२ ॥ वेदाध्ययन रहित ब्राह्मण को छोड़ कर अन्य वेदशास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को दान देने में ब्राह्मण का अतिक्रमण नहीं होता, क्यों कि जलती हुई अग्नि को छोड़ कर भस्म में हवन नहीं किया जाता ॥ ४३ ॥ हे गरुड ! ब्राह्मण का अतिक्रमण करने वाला क्रमशः अनेक नरकों को भोग कर मनुष्य योनि पाने पर जन्मान्ध और दरिद्र होता है, जो कि कभी दाता

दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते: ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ४३ ॥ अतिक्रमे कृते तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जन्मान्धः सन्दरिद्रः स्यान्न दाता किन्तु याचकः ॥ ४४ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ४५ ॥ स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति । स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ४६ ॥ दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत् । न रक्षति हरेद्यस्तु स पङ्गुः श्वाऽभिजायते ॥४७॥ विप्रस्य वृत्तिकरणे

(दान देने वाला) नहीं हो पाता अपितु सदा याचक ही बना रहता है ॥ ४४ ॥ जो अपने द्वारा दान दी गई अपने ही दूसरे द्वारा दी गई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्षों तक टट्टी का कीड़ा होता है ॥ ४५ ॥ जो पापी स्वयं अपने द्वारा दी गई वस्तु को स्वयं ही छीन लेता है वह प्रलय पर्यन्त नरक में रहता है ॥ ४६ ॥ [ब्राह्मण को] वृत्ति आजीविका) के साधन रूप में भूमि का दान देकर उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए । जो उसकी रक्षा नहीं करता और उसे छीन लेता है वह लँगड़ा कुत्ता होता है ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण को वृत्ति अर्थात्

आजीविका प्रदान करने से एक लाख गायों के दान के तुल्य फल होता है और ब्राह्मण की वृत्ति के हरण से मकड़ी, कुत्ता तथा बन्दर की योनि पाता है ॥ ४८ ॥ हे पक्षिराज! ये चिह्न तथा योनियाँ इस लोक में देहधारियों को अपने कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दुष्कर्म (पाप) करने वाले मनुष्य नरक में यातना भोगने के पश्चात् शेष रह गये पाप के कारण इन ऊपर कही हुई योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं ॥५०॥

लक्षधेनुफलं भवेत्। विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत् ॥ ४८ ॥ एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च खगेश्वर!। स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम् ॥४९॥ एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम्। जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु ॥ ५० ॥ ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्यतिर्यक्शरीरताम्। दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते ॥५१॥ पक्षिदुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीतातपोद्भवम्। मानुषं लभते पश्चात्समीभूते शुभाऽशुभे ॥५२॥ स्त्रीपुंसोऽस्तु प्रसंगेन

नरकयातना भोगने के पश्चात् पापी हजारों जन्मों तक पशुओं का शरीर धारण करते हैं। वे [घोड़ा, गधा, ऊँट, बैल आदि पशु बन कर] भार ढोने आदि से होने वाले दुःखों को प्राप्त करते हैं ॥ ५१ ॥ उसके बाद पक्षी बन कर वर्षा, शीत और धूप से होने वाले दुःखों का अनुभव करते हैं। इस तरह शुभ और अशुभ (पुण्य और पाप) के समान हो जाने पर जीव अन्ततः मनुष्य योनि प्राप्त करता है ॥ ५२ ॥ स्त्री-पुरुष के समागम के फलस्वरूप जीव

गर्भ में आता है और गर्भ में आने से लेकर मृत्यु पर्यन्त आजीवन दुःख पाते हुए वह फिर मर जाता है ॥५३॥ सभी शरीर धारियों का जन्म और कालानुसार मृत्यु होती रहती है । यह जन्म-मृत्यु का चक्र [अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज] चारों प्रकार के प्राणि-समूह में चलता रहता है ॥ ५४ ॥ कर्मों के पाश (जाल) से बँधे हुए सभी मनुष्य मेरी (अर्थात् भगवान् विष्णु की) माया के प्रभाव से कभी भूलोक में तो कभी नरक में घटीयन्त्र

भुक्त्वा गर्भे क्रमादसौ। गर्भादिमरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः ॥५३॥ समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम् । एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ॥ ५४ ॥ घटीयन्त्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया। भूमौ कदाचिन्नरके कर्मपाशसमावृताः ॥५५॥ अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम् । पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥५६॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटिशतैरपि॥५७॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापचिह्ननिरूपणो नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

(घड़ी) की तरह घूमते रहते हैं ॥ ५५ ॥ दान न देने से मनुष्य दरिद्र होता है, दरिद्र हो जाने पर पाप करता है, पापी के फलस्वरूप नरक में गिरता है और तब पुनर्जन्म में भी दरिद्र और फिर पापी होता रहता है ॥५६॥ मनुष्य को अपने द्वारा किया हुआ शुभाशुभ कर्म अवश्यमेव भोगना पड़ता है । विना भोगे सैकड़ों-करोड़ कल्पों तक भी कर्म [का प्रभाव] समाप्त नहीं होता ॥ ५७ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

पापिजन्मादिदुःखनिरूपणम्

गरुड बोले—हे केशव ! नरक से आया हुआ जीव माता के गर्भ में कैसे जन्म ग्रहण करता है ? और गर्भवासादि जो-जो दुःख जीव भोगता है वह सब भी मुझे बतलाइए ॥ १ ॥ विष्णु बोले—स्त्री-पुरुष के समागम

गरुड उवाच—

कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः। गर्भादिदुःखं यद्भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव ! ॥१॥

विष्णुरुवाच—

स्त्री-पुंसोस्तु प्रसंगेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। यथाऽयं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव ॥२॥

ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते। इन्द्रस्य ब्रह्महत्यास्ति यस्मिन् तस्मिन्दिनत्रये ॥३॥

से वीर्य और रज के गर्भ में ठहर जाने पर जैसे मनुष्य उत्पन्न होता है वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ स्त्रियों के ऋतुकाल के जिन प्रथम तीन दिनों में इन्द्रकृत विश्वरूप-वध से जनित ब्रह्महत्या चतुर्थांश से उनके शरीर में रहती है उन्हीं दिनों कामुकाधम पुरुषों के द्वारा किये गये गर्भाधान के फलस्वरूप पापात्माओं की देह की उत्पत्ति होती

है ॥ ३ ॥ रजस्वला स्त्री प्रथम दिन में चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तथा तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के समान बतलायी गयी है । नरक से आये हुए जीवों की माताएँ ये ही तीन प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं ॥ ४ ॥ दैव के द्वारा प्रेरित कर्म के प्रभाव से जीव देह प्राप्ति हेतु पुरुष के शुक्राणु का आश्रय लेकर [उसके साथ] स्त्री के गर्भ में प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥ गर्भाशय में प्रविष्ट शुक्राणु स्त्री-रज के साथ मिल कर एक रात में कलल[1] (सिङ्घाण

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता नरकागतमातरः ॥४॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये । स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः ॥५॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् । दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ ६ ॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यङ्गविग्रहः । नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ७ ॥

या श्लेष्मा के समान) बनता है पाँच रातों में बुद्बुद (बुलबुले के समान गोल), दस दिनों में कर्कन्धू (बेर के फल के समान कठोर तथा इसके बाद वह मांसपेशी अथवा अण्डे के आकार का हो जाता है ॥ ६ ॥ एक मास में शिर तथा दो मास में बाहु आदि शरीर के सभी प्रमुख अङ्ग बन जाते हैं । तीसरे मास में नख, लोम, अस्थियाँ, त्वचा, स्त्री-पुरुष या नपुंसकत्व बोधक लिङ्ग और अन्य छिद्रयुक्त उपाङ्ग बनते हैं ॥ ७ ॥ चार मास में [रस, रक्त,

1. सुश्रुत संहिता (शारीरस्थानं ३।१५) के अनुसार कलल एक मास में बनता है—तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ।

मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र-ये] सातों धातु बनते हैं। पाँचवें मास से भूख और प्यास जागृत हो उठती है। छठें मास में गर्भस्थ भ्रूण जरायु (झिल्ली) से लिपट कर (आवृत होकर) दाहिनी कोख में घूमने लगता है ॥ ८ ॥ माता के द्वारा खाये हुए अन्न-पान से बढ़ते हुए धातुओं वाला वह जीव मलमूत्र के कुत्सित गर्त में सोता है जिसमें कि बहुत से कृमि आदि जन्तु उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ वहाँ स्थित भूखे कृमियों के द्वारा बार-बार

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ८ ॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते। शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥९॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्। मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ १० ॥ कटु-तीक्ष्णोष्ण-लवण-रूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः। मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः। उल्वेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ॥ ११ ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः

सारे अङ्ग को काटे जाने से अत्यन्त क्लेश होने पर सुकुमार शरीर वाला वह जीव प्रतिक्षण मूर्छित होता रहता है ॥ १० ॥ गर्भ में वह जीव जरायु से लिपटा और उसके ऊपर आँतों से ढका रहता है तथा माता के द्वारा खाये हुए कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे और खट्टे पदार्थों के कठोर स्पर्श से पीड़ित होने से उसके सारे अङ्गों में वेदना होती है ॥ ११ ॥ वह अपने शिर को कोख में दबाये रहता है, उसकी पीठ और गरदन झुकी रहती है और

१. रक्तासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

अपने अङ्गों (हाथ-पैर आदि) को हिलाने-डुलाने में भी वह असमर्थ रहता है। उसकी स्थिति पिंजड़े में पड़े पक्षी के समान रहती है ॥ १२ ॥ वहाँ दैववश उसको स्मरणशक्ति प्राप्त हो जाती है और वह सौ जन्मों के कर्म का स्मरण करता हुआ लम्बी साँस लेता है । ऐसी स्थिति में भला वह क्या प्रसन्नता या सुख का अनुभव कर सकता है ॥ १३ ॥ सप्त धातुओं के चर्म-पट्टिका के सदृश बन्धनों से बँधा हुआ भयातुर जीव ऋषि की तरह आत्मदर्शी

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥१२॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् । स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ? ॥ १३ ॥ नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः[1] कृताञ्जलिः । स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ १४ ॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः । नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ १५ ॥

जीव उवाच–

श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम् । व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम् ॥ १६ ॥ त्वन्मायामोहितो

होकर हाथ जोड़कर याचना करते हुए दीन वचनों से उस ईश्वर की स्तुति करता है जिसने उसे गर्भ में प्रविष्ट कराया ॥ १४ ॥ सातवें महीने के आरम्भ से ही बोध प्राप्त हो जाने पर भी प्रसूति-वायु (अर्थात् प्रसव कराने वाले पवन) के द्वारा कँपाये जाने के कारण वह जीव उसी (पेट) में उत्पन्न टट्टी के कीड़े के समान एक स्थान में नहीं ठहर पाता ॥ १५ ॥ तब वह गर्भस्थ जीव कहता है—मैं लक्ष्मी के पति, जगत् के आधार स्वरूप, अशुभ को नष्ट करने वाले

१. सप्तवर्ध्रिः । पाठान्तर

और शरणागतवत्सल (शरण में आये हुए जीव के प्रति दयालु) भगवान् विष्णु की शरण में जाता हूँ ॥ १६ ॥ हे नाथ ! आपकी माया से मोहित होकर मैं अपने शरीर तथा पुत्र, पत्नी आदि में अहंता और ममत्व के अभिमान (अर्थात् मैं और मेरा की भावना) के कारण सांसारिक बन्धन और आवागमन के चक्र में पड़ा हूँ ॥ १७ ॥ मैंने शुभाशुभ कर्म अपने परिजनों अर्थात् स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बीजनों के लिए किये थे किन्तु उनके दुष्प्रभाव से अकेला मैं

देहे तथा पुत्रकलत्रके । अहं ममाभिमानेन गतोऽहं नाथ ! संसृतिम् ॥ १७ ॥ कृतं परिजन-स्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम् । एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः ॥ १८ ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव । तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥१९॥ विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना । इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः ॥२०॥ येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना । तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः ॥२१॥

ही जला हूँ, और उनके फल को भोगने वाले वे सब अलग चले गये हैं ॥ १८ ॥ यदि मैं इस योनि से बाहर आ जाता हूँ तो तब आपके चरणों का ध्यान करूँगा और ऐसा उपाय करूँगा जिससे कि मैं मुक्ति को प्राप्त कर सकूँ ॥ १९ ॥ मल-मूत्र के कुएँ में पड़ा हुआ और जठराग्नि से जलता हुआ तथा यहाँ से बाहर निकलने की इच्छा करता हुआ मैं कब बाहर निकल पाऊँगा ? ॥ २० ॥ जिस दीनदयालु ईश्वर ने मुझे ऐसा आत्मज्ञान दिया है मैं उसी की शरण में जाता हूँ ताकि मुझे पुनः संसार में जन्म न लेना पड़े ॥ २१ ॥ [फिर अपने मन में विकल्प

करते हुए जीव कहता है] मैं गर्भ से बाहर कभी भी नहीं जाना चाहता, [क्योंकि] वहाँ जाने पर पापकर्म करने से फिर मेरी दुर्गति हो जायगी ॥ २२ ॥ अतः यहाँ [गर्भ के अन्दर] अत्यन्त दुःख में पड़ा हुआ भी मैं खेद-रहित हूँ। आपके चरणों का आश्रय लेकर मैं संसार से अपना उद्धार कर लूँगा ॥ २३ ॥ श्री भगवान् बोले—ऐसा विचार करके स्तुति में संलग्न और अधोमुख पड़े हुए दस मास में उस ऋषिकल्प जीव को प्रसूति-मारुत

न च निर्गन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन। यत्र यातस्य मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत् ॥२२॥
तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितोऽपि विगतक्लमः। उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते पदाश्रयः ॥२३॥

श्री भगवानुवाच—

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन् ऋषिः। सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥२४॥
तेनाऽवसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः। विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हत-स्मृतिः ॥ २५ ॥ पतितो भुवि विण्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते। रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२६॥ गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्। सा यदि स्थिरतां याति

(प्रसव करने वाला पवन) प्रसव हेतु शीघ्र नीचे को ले आता है ॥ २४ ॥ उस प्रसूति वायु के द्वारा सहसा शिर नीचे करके गिराये जाने पर वह आतुर जीव अत्यन्त कठिनाई से बाहर निकलता है। उस समय उसकी साँस रुक जाती है और स्मृति नष्ट हो जाती है ॥२५॥ पृथिवी पर मल-मूत्र में पड़ा हुआ वह टट्टी के कीड़े की जैसी चेष्टा करता है। [जैसा उसने पहले सोचा था उससे] विपरीत गति को प्राप्त हो जाने और [गर्भ में प्राप्त हुए] ज्ञान

के नष्ट होने पर वह अत्यन्त रुदन करता है ॥ २६ ॥ गर्भ में रहने पर, व्याधिग्रस्त होने पर, मृतक-को लेकर श्मशान में जाने पर तथा पुराण सुनने पर मनुष्य की जैसी मति होती है वह यदि स्थिर रह जाय तो कौन सांसारिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता ॥ २७ ॥ कर्म [का फल] भोगने के बाद जीव जब गर्भ से बाहर आता है तभी भगवान् विष्णु की माया उसे मोहित कर देती है ॥ २८ ॥ तब माया के द्वारा मोहित होने के कारण वह विवशता

को न मुच्येत बन्धनात् ॥ २७ ॥ यदा गर्भाद्बहिर्याति कर्मभोगादनन्तरम् । तदैव वैष्णवी माया मोहयत्येव पूरुषम् ॥ २८ ॥ स तदा माययास्पृष्टो न किञ्चिद्वदतेऽवशः । शैशवादिभवं दुःखं पराधीनतयाऽश्नुते ॥ २९ ॥ परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः । अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ ३० ॥ शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते । नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥३१॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः । रुदन्तं

के कारण कुछ नहीं बोल पाता । शैशवावस्था के दुःखों को पराधीन होकर झेलता है ॥ २९ ॥ दूसरे के अभिप्राय (अर्थात् उस शिशु के मनोभावों) को न जानने वाले माता-पिता आदि जनों के द्वारा उसका पालन किया जाता है । जो वस्तु उसे अभीष्ट नहीं है वही उसको खिलाये-पिलाये जाने पर वह मना करने में भी असमर्थ रहता है ॥ ३० ॥ पसीने से उत्पन्न जूँ [तथा खटमल] जैसे जन्तुओं से दूषित खाट पर सुलाया हुआ वह शिशु अपने अङ्गों को खुजलाने, आसन से उठने तथा अन्य चेष्टा करने में भी असमर्थ [होने से रोता] रहता है ॥ ३१ ॥

रोते हुए और ज्ञानशून्य उस शिशु की कोमल त्वचा को डाँस, मच्छर तथा खटमल आदि उसी तरह काटते हैं, जैसे कि कीड़े किसी कीड़े को काटते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शैशवावस्था में कष्ट भोग कर पौगण्ड[1] अवस्था (दश वर्ष तक की अवस्था) पर्यन्त भी दुःख भोगता रहता है। तदनन्तर युवावस्था आने पर आसुरी सम्पत्ति[2] अर्थात् दर्प, दम्भ, अभिमान आदि अवगुणों [का भाजन होने से कष्टमय स्थिति] को प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥

विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ ३२ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च। ततो यौवनमासाद्य याति सम्पदमासुरीम् ॥ ३३ ॥ तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसङ्गपरायणः। शास्त्र-सत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः। प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ३५ ॥ कुरङ्ग-मातङ्गपतङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः

तब वह दुर्व्यसनों में फँस जाता है नीच स्वभाव के मनुष्यों की संगति करता है, शास्त्रों और सत्पुरुषों से द्वेष करता है और कामलम्पट हो जाता है ॥ ३४ ॥ ईश्वर की माया रूप स्त्री को देखकर इन्द्रिय-संयम न कर पाने वाला पुरुष उसके हाव-भावों के प्रलोभन में आकर महामोह रूप अन्धतम में उसी प्रकार गिर जाता है जैसे कि अग्नि में पतंगा ॥ ३५ ॥ हिरन, हाथी, पतंगा, भौंरा तथा मछली ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और

---

१. द्र०—शिशुरादन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखम्। आपञ्चवर्षात्कौमारः पौगण्डो दशहायनः ॥ किशोरः षोडशसमास्ततो यौवनमादिशेत्।

२. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ श्रीमद्भगवद्गीता १६।४।

गन्ध इन पाँच विषयों (के व्यसन) के कारण मारे जाते हैं (उदाहरणार्थ—हिरन संगीत के शब्द को सुनने के प्रलोभन में मारा जाता है, हाथी हथिनी के कोमल स्पर्श के प्रलोभन में, पतंगा अग्नि की लौ के रूप के प्रलोभन में एवं भौंरा पुष्प के रस के प्रलोभन में मारा जाता है और मछली काँटे में लगे भोज्य पदार्थ [की गन्ध से आकृष्ट होकर उसको खाने के] प्रलोभन में पड़ कर मारी जाती है) । तब भला एक प्रमादी मनुष्य, जो कि अपनी पाँचों इन्द्रियों से पाँचों विषयों का सेवन करता है, क्यों नहीं मारा जायेगा ॥ ३६ ॥ अभीष्ट वस्तु (कामिनी नारी

पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥३६॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः । सह देहेन मानेन वर्द्धमानेन मन्युना ॥३७॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः । बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ ३८ ॥ एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमतिदुर्लभम् । वृथा नाशयते मूढस्तस्मात्पापतरो हि कः ? ॥३९॥ जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् । यस्तन्न पालयति

आदि) के न प्राप्त हो पाने से अज्ञानवश क्रोध के उभड़ने तथा शोकमग्न होने और शरीर के साथ ही अभिमान और क्रोध की वृद्धि हो जाने पर ॥ ३७ ॥ वह कामी पुरुष स्वयं अपने नाश हेतु अन्य कामियों के साथ लड़ बैठता है और बलिष्ठ हाथियों से लड़ने वाले हाथी के समान वह अन्य बलशाली मनुष्यों के हाथों मारा जाता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार जो मूर्ख पुरुष विषयों की आशक्ति में पड़ कर अति दुर्लभ मनुष्य जीवन को व्यर्थ नष्ट कर देता है उससे बड़ा पापी और कौन होगा ? ॥ ३९ ॥ अन्य सैकड़ों (हजारों किं वा लाखों) योनियों में भटकने

के बाद मनुष्य योनि मिलती है। मनुष्यों में भी द्विजत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है और उसे पाकर भी जो उसके योग्य धर्म-कर्म का पालन नहीं करता, केवल इन्द्रियों को सुख देने में लगा रहता है उसके हाथ में आया हुआ अमृत उसके प्रमाद के कारण चूकर समाप्त हो जाता है ॥ ४० ॥ तब यौवन बीतने पर फिर उसी वृद्धावस्था को

लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥ ४० ॥ ततस्तां वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः। मृत्युं प्राप्य महद्दुःखं नरकं याति पूर्ववत् ॥ ४१ ॥ एवं गताऽगतैः कर्मपाशैर्बद्धाश्च पापिनः। कदापि न विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः ॥ ४२ ॥ इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकी गतिः। अन्त्येष्टिकर्महीनानां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ? ॥४३॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापजन्मादिदुःखनिरूपणो नाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

प्राप्त होने पर महाव्याधियों से व्याकुल होकर मृत्यु को प्राप्त करके पहले की भाँति ही महा दुःखप्रद नरक को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कर्म-पाशों में बँधे हुए पापी आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं और मेरी माया से मोहित होने के कारण कभी भी वैराग्य को नहीं प्राप्त करते ॥ ४२ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार मैंने तुमको अन्त्येष्टि कर्म रहित पापियों की नारकीय गति का वर्णन सुनाया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४३ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

बभ्रु वाहनप्रेतसंस्कारादिवर्णनम्

सूत उवाच—

इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् । जनानामुपकारार्थं पुनः पप्रच्छ केशवम् ॥१॥

गरुड उवाच—

कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादाद्बुद्धितोऽपि वा । न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन कथ्यताम् ॥२॥ संसारार्णवमग्नानां नराणां दीनचेतसाम् । पापोपहतबुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम् ॥३॥

सूत जी ने कहा—[भगवान् विष्णु के मुख से पापियों के जन्मादि दुःख का] ऐसा वर्णन सुन कर गरुड पीपल के पत्ते के समान काँप उठे। उन्होंने मनुष्य के उपकार हेतु पुनः भगवान् विष्णु से पूछा ॥१॥ गरुड बोले—असावधानी से या अज्ञान में अथवा बुद्धिपूर्वक अर्थात् जानबूझ कर पाप करबैठने पर भी मनुष्य कौन-सा उपाय करने से यमयातना को नहीं प्राप्त करते? यह बतलाइए ॥ २ ॥ हे प्रभो! हे माधव! संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए, दीन-चित्त वाले, पाप से नष्ट-बुद्धि और विषय-वासना से पीड़ित आत्मा वाले मनुष्यों के उद्धार के

लिए पुराण के अर्थ के सारभूत निश्चित उपाय को बतलाइए, जिससे कि मनुष्य सद्गति को प्राप्त कर सकें । ३-४॥ श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! तुमने मनुष्यों के हित के लिए अच्छी बात पूछी है । ध्यान देकर सुनो । मैं तुम्हें सब बतलाता हूँ ॥ ५ ॥ मैंने तुम्हें पहले पुत्रहीन और पापी मनुष्यों की दुर्गति के विषय में बतलाया । हे

उद्धारार्थं वद स्वामिन् ! पुराणार्थविनिश्चयम् । उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव ! ॥४॥

श्रीभगवानुवाच—

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य ! मानुषाणां हिताय वै । शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम् ॥५॥
दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम् । पुत्रिणां धार्मिकाणां तु न कदाचित्खगेश्वर ॥६॥
पुत्रजन्मनिरोधः स्याद्यदि केनापि कर्मणा । तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्तिं प्रसाधयेत् ॥७॥
हरिवंशकथां श्रुत्वा शतचण्डीविधानतः । भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः ॥८॥

गरुड ! पुत्रवान् तथा धार्मिक मनुष्यों की कभी भी दुर्गति नहीं होती ॥ ६ ॥ अतः यदि पूर्वजन्म [के] किसी पाप-कर्म [या शारीरिक अक्षमता आदि] के कारण पुत्र उत्पन्न न हो पाया हो तो [बुद्धिमान् पुरुष] कोई-न-कोई उपाय करके पुत्र उत्पन्न करे ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य हरिवंश पुराण की कथा सुन कर, विधान पूर्वक शतचण्डी याग करा कर तथा भक्तिपूर्वक शिवजी की अराधना करके पुत्र उत्पन्न करे ॥ ८ ॥ पुत्र पिता को पुम्

नामक नरक में गिरने से बचाता है, इसीलिए स्वयं विधाता ने ही उसको पुत्र कहा है ॥ ९ ॥ एक ही धर्मात्मा पुत्र भी सारे कुल का उद्धार कर देता है, पुरुष अपने पुत्र के द्वारा लोकों को जीतता है। यह सनातन वेदवचन है ॥ १० ॥ इस प्रकार पुत्र का उत्तम माहात्म्य वेदों में भी बतलाया गया है। पुरुष अपने पुत्र के मुख को देख कर पितृऋण से मुक्त होता है ॥ ११ ॥ पौत्र के स्पर्श से मनुष्य (देवों, पितरों और ऋषियों के) तीनों ऋणों

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥९॥
एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम्। पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी ॥१०॥
इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात् ॥११॥ पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो[1] मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्येदिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥१२॥ ब्राह्मोढापुत्रोन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत्। एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ! हीनजातिसुतांस्त्यजेत्[2]

से मुक्त हो जाता है। पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों के द्वारा पुरुष यमलोक आदि को पार कर लेता है और स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१२॥ ब्राह्म विवाह की विधि से विवाहिता पत्नी से उत्पन्न औरस-पुत्र ऊपर (स्वर्ग में) पहुँचाता है और संगृहीत (अर्थात् दूसरों से प्राप्त या बिना विवाह किये रखी गयी स्त्री से उत्पन्न) पुत्र अधोगति अर्थात् नरक को प्राप्त कराता है। अतः हे गरुड! ऐसा जानकर मनुष्य हीन जाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्रों को त्याग दे

१. पाठान्तर–मृत्योर्मुच्यते। २. पाठान्तर—हीनजातिसुतां त्यजेत् (अर्थात् हीनजाति की कन्या से विवाह न करे।)

ग० पु०

अर्थात् ऐसे पुत्रों को ग्रहण न करे ॥ १२ ॥ हे पक्षी ! सवर्ण पुरुषों से सवर्णा स्त्रियों में जो औरस पुत्र उत्पन्न होते हैं वे ही श्राद्ध-दान करने से पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति कराने में हेतु बनते हैं ॥ १४ ॥ पुत्र के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध के फलस्वरूप पिता स्वर्ग को प्राप्त करता है। इस विषय में तो कहना ही क्या ? दूसरे के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध से भी एक प्रेत स्वर्ग को प्राप्त हुआ था। अब तुम उसके विषय में सुनो ॥१५॥ यहाँ पर मैं प्राचीन इतिहास का उदाहरण

॥१३॥ सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग ! त एव श्राद्धदानेन पितॄणां स्वर्गहेतवः ॥१४॥
श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वर्यातीति किमुच्यते । प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो शृणु ॥१५॥
अत्रैवोदाहरिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । और्ध्वदेहिकदानस्य परं माहात्म्यसूचकम् ॥१६॥ पुरा
त्रेतायुगे तार्क्ष्य ! राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः । महोदये पुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥१७॥
यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः । शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥१८॥

प्रस्तुत करता हूँ जो कि और्ध्वदेहिक दान के परम महत्त्व को सूचित करता है ॥ १६ ॥ हे गरुड ! बहुत पहले त्रेतायुग में महोदय नामक पुर में बभ्रुवाहन नामक महाबलशाली और धर्मनिष्ठ राजा [राज्य करता] था ॥ १७ ॥ वह यज्ञानुष्ठान-परायण, अतिशय दानी, श्री-सम्पत्ति-सम्पन्न, ब्राह्मण-भक्त, सत्पुरुषों के प्रति अनुराग रखने वाला तथा शीलवान् (सच्चरित्र) और सदाचार एवं दया और दाक्षिण्य (नम्रता या शिष्टता) जैसे सद्गुणों से युक्त

था ॥ १८ ॥ क्षत्रियोचित धर्म का पालन करने वाला वह राजा अपनी प्रजाओं का औरस पुत्रों की तरह पालन करता था और दण्डनीय अपराधियों को दण्डित करता था ॥ १९ ॥ वह महाबाहु राजा बभ्रुवाहन एक बार अपनी सेना सहित आखेट के लिए नाना प्रकार के वृक्षों वाले घने वन में प्रविष्ट हुआ ॥ २० ॥ वहाँ नाना प्रकार के मृगों के झुण्ड भरे पड़े थे और नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे । उस वन के मध्य में राजा ने दूर से एक

पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन्नृपः ॥१९॥
स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयाङ्गतः । वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् ॥२०॥
नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत ॥२१॥
तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च । बाणमादाय स तस्य वनेऽदर्शनमेयिवान् ॥२२॥
कक्षेण रुधिरार्द्रेण स राजानुजगाम तम् । ततो मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेश सः ॥२३॥
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्छितः । जलाशयं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत ॥२४॥

मृग को देखा ॥ २१ ॥ उस राजा ने उस मृग को एक अति तीक्ष्ण और सुदृढ़ बाण से बींधा । वह मृग उसके बाण सहित वन में अदृश्य हो गया ॥ २२ ॥ उस राजा ने खून से सनी घास के सहारे उस मृग का पीछा किया और तब उस मृग की खोज के प्रसंग में वह दूसरे वन में पहुँच गया ॥ २३ ॥ भूख-प्यास से सूखे हुए कण्ठ वाले तथा श्रम (थकान) और धूप के कारण अर्द्धमूर्च्छित हुए उस राजा ने एक जलाशय में पहुँचने पर घोड़े सहित

ग० प०

स्नान किया ॥ २४ ॥ उसने उस जलाशय के कमलों की गन्ध से सुवासित जल का पान किया। उसके बाद जल से बाहर आने पर राजा बभ्रुवाहन श्रमरहित हो गया था ॥२५॥ उसने शीतल छाया वाले, बड़ी-बड़ी और विस्तृत शाखाओं वाले तथा पक्षियों के समूह के कलरव से युक्त एक मनोहर वटवृक्ष को देखा ॥ २६ ॥ जो कि उस समूचे वन की महान् पताका के समान लगता था। वह राजा उस वृक्ष की जड़ में जाकर बैठ गया ॥ २७ ॥ तब

पपौ तदुदकं शीतं पद्मगन्धादिवासितम्। ततोऽवतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः ॥२५॥
ददर्श न्यग्रोधतरुं शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसंघनिनादितम् ॥२६॥
वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम्। मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः ॥२७॥
अथ प्रेतं ददर्शाऽसौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥२८॥
तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मतो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तं घोरामटवीमागतं नृपम् ॥२९॥
समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः। अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य! प्रेतराजो नृपं वचः ॥३०॥

उस राजा ने भूख-प्यास से व्याकुल इन्द्रियों वाले, ऊपर को उठे बालों वाले, मैले-कुचैले, कुबड़े, मांसरहित शरीर वाले तथा भयानक दिखलाई पड़ने वाले एक प्रेत को देखा ॥ २८ ॥ उस विकृत और घोर आकृति वाले प्रेत को देख कर राजा बभ्रुवाहन विस्मित हो उठा और घोर वन में आये हुए उस राजा को देख कर वह प्रेत भी विस्मित हो उठा था ॥ २९ ॥ हे गरुड ! तब वह प्रेत उत्सुक मन वाला होकर उस राजा के पास आया और यह

वचन बोला ॥ ३० ॥ हे महाबाहु ! मैंने प्रेतभाव छोड़ दिया (अर्थात् मेरा प्रेतभाव छूट गया) और मैं परम गति को प्राप्त हुआ हूँ । आपके संयोग से मैं अति धन्य हुआ हूँ ॥ ३१ ॥ राजा ने कहा—हे कृष्णवर्ण वाले और भयानक मुख वाले प्रेत ! यह भयानक दिखलाई पड़ने वाला और अत्यन्त अमङ्गल प्रेतत्व तुमको किस कर्म

प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् । त्वत्संयोगान्महाबाहो ! जातो धन्यतरोऽस्म्यहम्

राजोवाच—

॥३१॥ कृष्णवर्ण ! करालास्य ! प्रेतत्वं घोरदर्शनम् । केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते ह्यमंगलम्॥३२॥

प्रेतत्वकारणं तात ! ब्रूहि सर्वमशेषतः । कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विनश्यति ? ॥३३॥

प्रेत उवाच—

कथयामि नृपश्रेष्ठ ! सर्वमेवादितस्तव । प्रेतत्वकारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ३४ ॥

वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम् । नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥ ३५ ॥

के परिणाम से प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ हे तात ! तुम अपने प्रेतत्व की प्राप्तिका सारा कारण पूरी तरह बतलाओ । तुम कौन हो ? और किस वस्तु के दान से तुम्हारा प्रेतत्व दूर होगा ॥ ३३ ॥ प्रेत ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! मैं आदि से अन्त तक तुम्हें सब कुछ बतलाता हूँ । मेरे प्रेतत्व की प्राप्ति का कारण सुनकर तुम मुझ पर दया करना ॥३४॥ वैदिश (विदिशा) नामक एक नगर है, जो सभी प्रकार की सम्पत्तियों से समृद्ध, नाना जनपदों से आये हुए

१. हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम् । अमर २।२।९।

मनुष्य की भीड़ से भरा हुआ, नाना रत्नों से परिपूर्ण, हर्म्यों और प्रासादों (अर्थात् हवेलियों और राजभवनों) से सुशोभित तथा नाना प्रकार के धर्मानुष्ठानों से गौरवान्वित है, हे तात ! मैं वहाँ निवास करता था और सदा देवार्चन में निरत रहता था ॥ ३५–३६ ॥ आप यह भी जान लीजिए कि मैं जाति का वैश्य हूँ और सुदेव मेरा नाम है ! मैंने हव्य से देवों तथा कव्य[2] से पितरों को तर्पित किया था ॥ ३७ ॥ मैंने नाना प्रकार के दानों से ब्राह्मणों

हर्म्यप्रासादशोभाढ्यं नानाधर्मसमन्वितम् । तत्राऽहं न्यवसन् तात! देवार्चनरतः सदा ॥३६॥
वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते । हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा ॥३७॥
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पिता मया । दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा ॥ ३८ ॥
तत्सर्वं निष्फलं राजन्! मम दैवादुपागतम् । यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद्वदामि ते ॥३९॥
ममैव सन्ततिर्नास्ति न सुहृन्न च बान्धवः । न च मित्रं हि मे तादृग्यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥४०॥
यस्य न स्यान्महाराज ! श्राद्धं मासिकषोडशम् । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि

को सन्तुष्ट किया था और दीन, अन्धे और निर्धन मनुष्यों को अनेक तरह, अनेक बार अन्नदान दिया था ॥३८॥ हे राजन् ! दुर्भाग्यवश मेरा वह सब धर्म-कर्म निष्फल हो गया है, मेरा सत्कर्म (पुण्य) जिस कारण निष्फल हुआ वह मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ २९ ॥ मेरा कोई पुत्र नहीं है और मेरा कोई बन्धु-बान्धव तथा मित्र भी नहीं है जो कि मेरी और्द्ध्वदेहिक क्रिया करता ॥ ४० ॥ हे महाराज ! जिसके [मृत्यु के बाद] षोडश मासिक श्राद्ध

२. देवार्थमन्नं हव्यं स्यात् पित्रर्थं कव्यमेव च ।

नहीं होते उसका प्रेतत्व सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी सुस्थिर (अटल) रहता है ।। ४१ ।। हे राजन् ! तुम मेरा और्ध्वदेहिक कृत्य करके मेरा उद्धार करो। इस लोक में राजा को सभी वर्णों [के मनुष्यों] का बन्धु कहा जाता है ।। ४२ ।। अतः हे राजेन्द्र ! मेरा उद्धार करदो। मैं तुमको मणिरत्न दूँगा। हे वीर ! यदि तुम मेरा प्रिय (हित) करना चाहते हो तो जैसे मेरी सद्‌गति हो और प्रेतयोनि छूट जाय वैसा उपाय करो। भूख-प्यास आदि दुःखों से

।। ४१ ।। त्वमौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते ! । वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ।। ४२ ।। तन्मां तारय राजेन्द्र ! मणिरत्नं ददामि ते । यथा मे सद्‌गतिर्भूयात्प्रेतयोनिश्च गच्छति ।। ४३ ।। तथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम् । क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम ।। ४४ ।। स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिन् शीतलं शिवम् । न प्राप्नोमि क्षधार्तोऽहं तृषार्तो न जलं क्वचित् ।।४५।। यदि मे हि भवेद्राजन् ! विधिर्नारायणो महान् । तदग्रे वेदमन्त्रैश्च क्रिया सर्वौर्ध्वदेहिकी ।।४६।। तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नाऽत्र संशयः ।

यह प्रेतयोनि मेरे लिए असह्य हो गयी है ।। ४३–४४ ।। इस वन में स्वादिष्ट फल तथा शीतल और निर्मल जल है किन्तु मैं भूख और प्यास से पीडित होने पर भी उन फलों को तथा जल को नहीं प्राप्त कर पाता हूँ ।। ४५ ।। हे राजन् ! यदि मेरे लिए यथाविधि नारायणबलि को सम्पादित करके उसके आगे की और्ध्वदेहिक क्रियाएँ वेद-मन्त्रों से की जाय तो तब निश्चय ही मेरा प्रेतत्व छूट जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। वेदमन्त्रों के पाठ, तप,

दान तथा सभी प्राणियों में दया, उत्तम शास्त्रों के श्रवण-मनन, विष्णु की पूजा और सत्सङ्गति के प्रभाव से प्रेत-योनि छूट जाती है, ऐसा मैंने सुना है ॥ ४६--४८ ॥ अतः मैं तुमको प्रेतत्व की नाशक विष्णु पूजा की विधि बतलाता हूँ । हे राजन् ! न्यायतः अर्जित दो सुवर्ण (बत्तीस मासे) के बराबर सोने को लेकर उसकी एक नारायण प्रतिमा बनवाये ॥ ४९ ॥ उस प्रतिमा को स्नान और अधिवासन करा कर एक जोड़े पीले कपड़ों से आच्छा-

वेदमन्त्रास्तपोदानं दया सर्वत्र जन्तुषु ॥ ४७ ॥ सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसङ्गतिः । प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम् ॥ ४८ ॥ अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम् । सुवर्णद्वयमानीय सुवर्णं न्यायसंचितम् ॥ तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमां भूप! कल्पयेत् ॥४९॥ पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य यजेत्ततः ॥५०॥ पूर्वे तु श्रीधरं तस्य दक्षिणे मधुसूदनम् । पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम् ॥५१॥ मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम् । पूजयेच्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक् ॥ ५२ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य वह्नौ सन्तर्प्य देवताः । घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत् ॥५३॥

दित करके तथा सभी आभूषणों से अलंकृत करके पूजन करे ॥ ५० ॥ उस प्रतिमा के पूर्व में श्रीधर, दक्षिण में मधुसूदन, पश्चिम में वामन, उत्तर में गदाधर और मध्य में ब्रह्मा तथा शिव की पृथक्-पृथक् गन्ध, पुष्प आदि से विधान पूर्वक पूजा करे ॥ ५१--५२ ॥ तब प्रदक्षिण करके अग्नि में [हवन से] देवताओं को तृप्त करके घृत,

दही और दूध से विश्वेदेवों को तृप्त करे ।। ५३ ।। उसके बाद यजमान एकाग्रचित्त होकर विनीतभाव से नारायण [प्रतिमा] के समक्ष विधिपूर्वक और्द्धदेहिक क्रिया करे ।। ५४ ।। वह क्रोध और लोभ को छोड़ कर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रिया आरम्भ करे । वह क्रमशः सभी श्राद्धों को करे और वृषोत्सर्ग करे ।। ५५ ।। तब ब्राह्मणों को तेरह पदों[1] का दान करे और फिर शय्यादान देकर प्रेत के निमित्त जलपूर्ण घट प्रदान करे ।।५६।।

ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः । नारायणाग्रेविधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदेहिकीम् ।।५४

आरभेत यथा शास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः । कुर्याच्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ।।५५।।

ततः पदानि विप्रेभ्यो दद्याच्चैव त्रयोदश । शय्यादानं प्रदत्त्वा च घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ।।५६।।

राजोवाच—

कथं प्रेतघटं कुर्याद्दद्यात्केन विधानतः ? । ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम् ।।५७।।

प्रेत उवाच—

साधु पृष्टं महाराज ! कथयामि निबोध ते । प्रेतत्वं न भवेद्येन दानेन सुदृढेन च ।।५८।।

राजा ने कहा—प्रेतघट कैसे तैयार करना चाहिए और किस विधान से इसका दान करना चाहिए । तुम सब जीवों की अनुकम्पा हेतु प्रेत को मुक्ति दिलाने वाले घटदान की विधि को बतलाओ । ५७ ।। प्रेत ने कहा—हे महाराज ! तुमने ठीक ही पूछा । तुम ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें उस सुदृढ दान के विषय में बतलाता हूँ जिसको

१. त्रयोदश पदों का नाम-निर्देश आगे अध्याय १३ श्लोक ८३-८४ में है ।

देने से प्रेतत्व से मुक्ति मिल जाती है ॥ ५८ ॥ प्रेतघट का दान सभी प्रकार के अशुभ का विनाशक है। यह दान सर्वलोक-दुर्लभ और दुर्गति को समाप्त करने वाला है ॥ ५९ ॥ तपाये हुए सोने का घट बनाकर उसमें ब्रह्मा, शिव, विष्णु तथा (इन्द्रादि) लोकपालों का आवाहन करके तथा उसे दूध और घी भर कर भक्ति पूर्वक प्रणिपात (प्रणाम) करके ब्राह्मण को दान दो। तुम्हें अन्य सैकड़ों दान देने की कोई आवश्यकता नहीं ॥ ६० ॥ उस घट के

दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशकम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम् ॥ ५९ ॥ सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः। क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः? ॥६०॥ ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शंकरः शंकरोऽव्ययः। प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु ॥६१॥ सम्पूज्य विधिवद्राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः। ततो दुग्धाऽऽज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम् ॥ ६२ ॥ सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन्! प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥ ६३ ॥

मध्य में ब्रह्मा, विष्णु तथा अविनाशी शङ्कर का तथा उस [घट] के कण्ठ में पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः लोकपालों का आवाहन, स्थापन करके उनकी चन्दन, पुष्प धूप आदि से विधिवत् पूजा करके उस दूध और घी से भरे सोने के घट का [ब्राह्मण को] दान करे ॥ ६१–६२ ॥ हे राजन्! महापातकों का नाश करने वाला यह दान सभी दानों से बड़ा है। अतः प्रेतत्व को दूर करने के लिए श्रद्धा पूर्वक यह दान करना चाहिए ॥ ६३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! प्रेत के साथ उस राजा की ऐसी बात-चीत के समय ही उसकी हाथी, घोड़े और रथों पर सवार सेना पीछे से वहाँ आ गयी ॥ ६४ ॥ तब सेना के आ पहुँचने पर राजा को महामणि प्रदान करके, नमस्कार करके और पुनः [अपने उद्धार हेतु] प्रार्थना करके प्रेत अदृश्य हो गया ॥ ६५ ॥ राजा भी उस वन से निकल कर अपने पुर को चल पड़ा और वहाँ पहुँच कर उसने प्रेत के कहे हुए वचनों के अनुसार कार्य किया

श्री भगवानुवाच

एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह काश्यप । सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला ॥ ६४ ॥
ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम् । नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान् ॥६५॥
तस्माद् वनाद् विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ । स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम् ॥६६॥
चकार विधिवत्पक्षिन्नौर्ध्वदेहिकजं विधिम् । तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ ॥६७॥
श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम् । किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाद्भुतम् ॥६८॥

॥ ६६ ॥ हे गरुड ! उसने विधिवत् उसकी और्ध्वदेहिक क्रिया की और उसके द्वारा प्रदत्त पुण्य के प्रभाव से वह प्रेत [प्रेतत्व से] मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ था ॥ ६७ ॥ दूसरे के द्वारा दिये हुए श्राद्ध से प्रेत ने भी सद्गति प्राप्त की थी, तब पुत्र के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध से पुरुष की सद्गति होती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या ॥६८॥

इस पवित्र इतिहास को जो सुनता है और जो सुनाता है वे दोनों यदि पापी भी हों तो भी वे प्रेतत्व (प्रेतयोनि) को नहीं प्राप्त होते ॥ ६९ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः । न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि ॥६९॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कारो नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

—○*○—

अथ अष्टमोऽध्यायः

आतुरदाननिरूपणम्

गरुड बोले—हे प्रभो ! आप मुझे पुण्यात्माओं की परलोक सम्बन्धी क्रिया के विषय में बतलाइए और

गरुड उवाच—

आमुष्मिकीं क्रियां सर्वां वद सुकृतिनां मम । कर्तव्या सा यथा पुत्रैस्तथा च कथय प्रभो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै । धार्मिकार्हं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते ॥२॥

यह भी बतलाइए कि पुत्रों को यह क्रिया कैसे करनी चाहिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! तुमने मनुष्यों

के हित के लिए उत्तम प्रश्न पूछा है। धार्मिक मनुष्य के लिए जो कुछ करने योग्य है वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ पुण्यकर्म करने वाला पुरुष वृद्धावस्था में अपने शरीर को व्याधि-ग्रस्त तथा ग्रह-दशा को प्रतिकूल देख कर और अपने हाथों से अपने कानों को बन्द करने पर शरीर के अन्दर नाड़ियों में रक्त-संचार से होने वाले शब्द के न सुनायी पड़ने पर अपनी मृत्यु को निकट समझे और निर्भय एवं सावधान होकर अपने द्वारा अज्ञान में हुए

सुकृती वार्धके दृष्ट्वा शरीरं व्याधिसंयुतम्। प्रतिकूलान्ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम् ॥३॥
तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रितः। अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥४॥
यदा स्यादातुरः कालस्तदा स्नानं समारभेत्। पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः ॥५॥
अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च कुङ्कुमैस्तुलसीदलैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदकादिभिः ॥६॥
दत्त्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्यादेव भोजयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च ॥७॥

पापों तथा ज्ञानपूर्वक किये गये पापों का प्रायश्चित्त कर ले ॥ ३-४ ॥ प्राणान्त के पूर्व आतुरावस्था में वह स्नान करना प्रारम्भ करे तथा शालग्राम स्वरूप विष्णु का पूजन करावे ॥ ५ ॥ भगवान् विष्णु की पूजा गन्ध (चन्दन), पुष्प, कुङ्कुम, तुलसीदल, धूप, दीप तथा बहुत से लड्डू आदि नैवेद्यों से करे ॥ ६ ॥ विप्रों को दक्षिणा देकर उन्हें नैवेद्य का भोजन करावे। तब अष्टाक्षर मन्त्र[१] (ॐ नमो नारायणाय) तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'

१. ॐ नमो नारायणाय—यह अष्टाक्षर मन्त्र ब्रह्मपुराण ६०।२३–२४ (प्रयाग संस्करण) में है।

इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करे ॥ ७ ॥ वह विष्णु और शिव के नाम का स्मरण करे और उनके नाम का कीर्तन अपने पुत्रादि के मुख से भी सुने । हरि का नाम कानों में सुनायी पड़ने पर भी मनुष्यों के पापों को नष्ट करता है ॥ ८ ॥ रोगी की मृत्यु निकट होने पर उसके बन्धु-बान्धवादि को शोक नहीं करना चाहिए, अपितु बारम्बार मेरे (अर्थात् भगवान् विष्णु के) पवित्र नाम का स्मरण (कीर्तन) करते रहना चाहिए ॥ ९ ॥ मत्स्य, कूर्म,

संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च । हरेर्नाम हरेत्पापं नृणां श्रवणगोचरम् ॥८॥
रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयं न बान्धवैः । स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः ॥९॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च ॥१०॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः । समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः ॥११॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते । तस्य भस्मीभवन्त्याशु महापातककोटयः ॥१२॥
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥१३॥

वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—इन दश नामों का स्मरण बुद्धिमान् पुरुषों को सदैव करना चाहिए । वे ही वस्तुतः अच्छे बान्धव हैं जो रोगी के समीप इन दश नामों का उच्चारण करते रहते हैं ॥ १०–११ ॥ जिसकी वाणी कृष्ण के मङ्गलमय नाम का उच्चारण करती रहती है उसके करोड़ों महापाप भी शीघ्र भस्मीभूत हो जाते हैं ॥ १२ ॥ भगवान् विष्णु के नाम का उच्चारण अपने पुत्र के नाम रूप में करने से अजामिल

जैसा पापी भी वैकुण्ठ लोक में पहुँचा था तो श्रद्धापूर्वक उनके नाम का उच्चारण करने वाले का तो कहना ही क्या ! ॥ १३ ॥ दूषित अन्तःकरण वाले पुरुषों के द्वारा स्मरण किये जाने पर भी हरि उनके पापों को नष्ट कर डालते हैं । यह ठीक ही है, क्यों कि अनिच्छया छू जाने पर भी अग्नि जला ही डालता है ॥ १४ ॥ हे गरुड ! हरि के नाम में पापों को दूर करने की जितनी शक्ति है उतने पापों को करने की सामर्थ्य पापीजनों में होती ही

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः । अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥१४॥
हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज[1] । तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः ॥१५॥
किङ्करेभ्यो यमः प्राह नयध्वं नास्तिकं जनम् । नैवानयत भो दूता हरिनामस्मरं नरम् ॥१६॥
अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् । श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥१७॥ कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।

नहीं ॥१५॥ यम ने अपने दूतों से यह कह रखा है कि तुम नास्तिक मनुष्य को ही मेरे पास लाओ । हरि नाम का स्मरण करने वाले मनुष्य को मेरे पास मत लाया करो ॥ १६ ॥ "मैं अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिका-वल्लभ और जानकी-नायक रामचन्द्र का भजन करता हूँ" ॥१७॥ "हे पुण्डरीकाक्ष । हे वासुदेव ! हे विष्णु ! हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शङ्खचक्रपाणि ! आप ही मेरे शरणदाता

१. दन्तविप्रण्डजा द्विजाः । अमरकोष ३।३

होवें।" हे दूत! जो मनुष्य ऐसा कहते हैं उनसे तुम दूर रहना॥ १८॥ भगवान् विष्णु के चरणारविन्द के जिस मकरन्द रस का आस्वादन अकिञ्चन परमहंस साधुओं के द्वारा किया गया है उससे विमुख रहने वाले और गृहस्थी के प्रपञ्चपूर्ण नरकावह मार्ग में तृष्णा रखने वाले असत्पुरुषों को ही तुम मेरे पास लाया करो॥ १९॥ जिनकी जिह्वा भगवान्‌के गुणों और नामों का कीर्तन नहीं करती, जिनका चित्त भगवान् के चरण-कमलों का चिन्तन नहीं

भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान्॥ १८॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम्। निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥ १९॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्। कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥ २०॥ तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्। महतामपि पक्षीन्द्र विद्ध्यैकान्तिक-निष्कृतिम्॥ २१॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्। न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं

करता, जिनका मस्तक एक बार भी कृष्ण को प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता और जो विष्णु के आराधनादि कृत्यों को नहीं करते उन्हीं असज्जनों को तुम मेरे पास लाओ॥ २०॥ इसलिए हे पक्षिराज! तुम यह समझ लो कि जगत् के लिए मङ्गलस्वरूप भगवान् विष्णु के नाम का संकीतन महापापों का भी एकमात्र प्रायश्चित्त है॥ २१॥ जिस प्रकार मदिरा से पूर्ण कलश को गङ्गा आदि नदियाँ भी पवित्र नहीं करती उसी प्रकार भगवान् विष्णु से विमुख रहने वाले (अर्थात् उनका स्मरण, कीर्तन आदि न करने वाले) दुर्बुद्धि मनुष्य के द्वारा किये गये प्रायश्चित्त

भी उसको शुद्ध (पाप से मुक्त) नहीं कर पाते ॥ २२ ॥ भगवान् कृष्ण या विष्णु के नाम कीर्तन से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे नरक को, यम को और उसके दूतों को कभी स्वप्न में भी नहीं देखते ॥ २३ ॥ प्राणान्त काल में ब्राह्मण को गोदान करने वाला मांस, हड्डी और रक्त से पूरित वैतरणी में नहीं गिरता और प्राणान्त में अपने मुख से नन्दनन्दन-कृष्ण की वाणी का उच्चारण करने वाला मांस, अस्थि और रक्त से पूरित काया रूप वैतरणी

सुराकुम्भमिवापगा ॥२२॥ कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गतकिल्बिषाः । यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन ॥ २३ ॥ मांसास्थिरक्तवत्काये वैतरण्यां पतेन्न सः । योऽन्ते दद्याद् द्विजेभ्यश्च नन्दनन्दनगामिति ॥२४॥ अतः स्मरेन्महाविष्णोर्नाम पापौघनाशनम् । गीतासहस्रनामानि पठेद्वा शृणुयादपि ॥ २५ ॥ एकादशीव्रतं गीता गङ्गाम्बु तुलसीदलम् । विष्णोः पादाम्बु नामानि मरणे मुक्तिदानि च ॥२६॥ ततः संकल्पयेदन्नं सघृतं च सकाञ्चनम् ।

में नहीं गिरता अर्थात् उसे पुनः शरीर-धारण नहीं करना पड़ता, तात्पर्य यह है कि वह मुक्त हो जाता है ॥२४॥ अतः प्राणान्त काल में पाप-समूह के नाशक भगवान् विष्णु के नाम का स्मरण करना चाहिए और गीता तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ पढ़ना या दूसरों के मुख से सुनना चाहिए ॥२५॥ मृत्यु काल में एकादशी का व्रत, गीता का पाठ, गङ्गा-जल का पान, तुलसीदल-भक्षण, विष्णुचरणामृत का पान, एवं विष्णु का नाम-स्मरण मुक्तिप्रदायक होता है ॥२६॥ मरणासन्न मनुष्य स्नानादि करने के पश्चात् घृत और सुवर्ण सहित अन्न के दान का सङ्कल्प करे

तथा वेदपाठी ब्राह्मण को बछड़ों सहित दुधारू गायों का दान करे ॥ २७ ॥ हे गरुड ! मनुष्य प्राणान्त काल में जो भी स्वल्प या अधिक दान देता है और जिस दान का अनुमोदन उसका पुत्र करता है वह अक्षय होता है ॥२८॥ अच्छा पुत्र पिता के अन्तःकाल में उसके हाथों सभी प्रकार के दान दिलवावे। इसी आतुर दान आदि के लिए ही लोक में धर्मज्ञ पुरुष पुत्र की कामना करते हैं ॥ २९ ॥ आतुरावस्था में अधमुँदी आँखों वाले और भूमि

सवत्सा धेनवो देयाः श्रोत्रियाय द्विजातये ॥ २७ ॥ अन्ते जनो यद्ददाति स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्ताक्ष्र्य यत्पुत्रश्चानुमोदते ॥२८॥ अन्तकाले तु सत्पुत्रः सर्वदानानि दापयेत् । एतदर्थं सुतो लोके प्रार्थ्यते धर्मकोविदैः ॥ २९ ॥ भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा अर्धोन्मीलितलोचनम् । पुत्रैस्तृष्णा न कर्तव्या तद्धने पूर्वसञ्चिते ॥ ३० ॥ स तद्ददाति सत्पुत्रो यावज्जीवत्यसौ चिरम् । अतिवाहस्तु तन्मार्गे दुःखं न लभते यतः ॥ ३१ ॥ आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते । अतोऽवश्यं प्रदातव्यमष्टदानं तिलादिकम् ॥ ३२ ॥ तिला लोहं

पर पड़े हुए पिता को देख कर पुत्रों को उसके द्वारा पूर्वसञ्चित धन में तृष्णा नहीं करनी चाहिए ॥ ३० ॥ सत्पुत्र के द्वारा प्रदत्त उस दान से पिता जीवितावस्था पर्यन्त और मृत्यु के बाद परलोक मार्ग में भी दुःख नहीं प्राप्त करता ॥ ३१ ॥ आतुरावस्था (मृत्युकाल) और ग्रहण—इन दो कालों में प्रदत्त दान विशेष महत्त्व का होता है। अतः मृत्युकाल में तिल आदि आठ वस्तुओं का दान अवश्य देना चाहिए ॥ ३२ ॥ (१) तिल, (२) लोहा,

(३) सोना, (४) कपास (रुई), (५) नमक, (६) सप्तधान्य, (७) भूमि और (८) गौ—इनमें से प्रत्येक का दान पवित्र करने वाला होता है ॥ ३३ ॥ महापातकों का नाश करने वाले इन आठों महादानों को प्राणान्त काल में देना चाहिए। अब तुम इन दानों का फल सुनो ॥ ३४ ॥ तिल मेरे (अर्थात् भगवान् विष्णु के) शरीर से उत्पन्न हुए हैं। वे पवित्र होते हैं और तीन प्रकार के होते हैं। असुर, दानव और दैत्य तिलों के दान से तृप्त

हिरण्यं च कार्पासी लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर्गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥
एतदष्टमहादानं महापातकनाशनम्। अन्तःकाले प्रदातव्यं शृणु तस्य च यत्फलम् ॥ ३४ ॥
मम स्वेदसमुद्भूताः पवित्रास्त्रिविधास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्यास्तृप्यन्ति तिलदानतः ॥३५॥
तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णा दानेन कपिलास्तिलाः। संहरन्ति त्रिधा पापं वाङ्मनःकाय-सञ्चितम् ॥ ३६ ॥ लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना। यमसीमां न चाप्नोति न गच्छेत्तस्य वर्त्मनि ॥३७॥ कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा। शस्त्राणि यमहस्ते

होते हैं ॥ ३५ ॥ तिल सफेद, काले और कपिल (भूरे) वर्ण के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनके दान से वाणी, मन और वचन से किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ लोहे का दान भूमि में हाथ रख कर (या हाथ में मिट्टी लेकर) करना चाहिए। इस दान को देने वाला यमराज की सीमा को नहीं प्राप्त करता और यम के मार्ग में नहीं जाता है ॥ ३७ ॥ यम के हाथ में पापी मनुष्यों के निग्रह हेतु कुठार (कुल्हाड़ी-फरसा), मुसल,

दण्ड, खड्ग और छुरी जैसे शस्त्र रहते हैं ॥ ३८ ॥ लोहे का दान यम के इन आयुधों (शास्त्रों) को सन्तुष्ट करने वाला बतलाया गया है। अतः यमलोक में सुख देने वाला लोहे का दान देना चाहिए ॥ ३९ ॥ ऊरण, श्यामसूत्र, शुण्डामर्क, उदुम्बर, शेषम्बल, महादूत लोहे के दान से सुखप्रद होते हैं ॥ ४० ॥ हे गरुड ! अब तुम दानों

च निग्रहे पापकर्मणाम् ॥ ३८ ॥ यमायुधानां सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम्। तस्माद्द्याल्लोहदानं यमलोके सुखावहम् ॥ ३९ ॥ उरणः[1] श्यामसूत्रश्च शण्डामर्कोऽप्युदुम्बरः। शेषम्बलो महादूता लोहदानात्सुखप्रदाः[2] ॥ ४० ॥ शृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम्। दत्तेन तेन तुष्यन्ति भूर्भुवःस्वर्गवासिनः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माद्या ऋषयो देवा धर्मराजसभासदाः। स्वर्णदानेन सन्तुष्टा भवन्ति वरदायकाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्देयं स्वर्णदानं प्रेतोद्धरणहेतवे। न याति

में सर्वोत्तम दान (स्वर्णदान) के विषय में गोपनीय बात सुनो, उसको देने से भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक के निवासी सन्तुष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषिगण तथा धर्मराज के सभासद स्वर्णदान से सन्तुष्ट होकर अभीष्ट वरदान देते हैं ॥ ४२ ॥ अतः प्रेत के उद्धार हेतु सोने का दान देना चाहिए, हे गरुड ! सोने का

१. पाठान्तर–ऊरणः, ऊर्णः।

२. द्र०–छुरिणः श्यामशवलौ षण्डामर्का उदुम्बराः। शवलाः श्यामदूता ये लोहदानेन प्रीणिताः ॥ गरुडमहापुराण (वैङ्कटेश्वर-संस्करण) धर्मकाण्ड (प्रे० खण्ड ३०।२८)। कुरिणाः सार्वसूत्रापाः शण्डामर्कास्त्वनुर्वराः। शवलाः श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिताः ॥ गरुडमहापुराण (पण्डित पुस्तकालय संस्करण) उ० ख० २०।२३।

दान देने से मृतात्मा यमलोक में नहीं जाता, अपितु वह स्वर्ग में जाता है ॥ ४३ ॥ वह चिर काल तक सत्यलोक में रहता है। तत्पश्चात् इस लोक में रूपमान्, धार्मिक, वाक्पटु, श्री-सम्पन्न और अमित पराक्रमी राजा होता है ॥ ४४ ॥ कपास (रूई) का दान देने से यमदूतों से कोई भय नहीं होता। नमक का दान देने से यमराज से कोई भय नहीं होता ॥ ४५ ॥ लोहे, नमक, कपास (रूई), तिल और सोने का दान देने से यमपुरवासी चित्र-

यमलोकं स स्वर्गतिं तात गच्छति ॥ ४३ ॥ चिरं वसेत् सत्यलोके ततो राजा भवेदिह । रूपवान् धार्मिको वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ४४ ॥ कार्पासस्य तु दानेन दूतेभ्यो न भयं भवेत् । लवणं दीयते यच्च तेन नैव भयं यमात् ॥४५॥ अयोलवणकार्पासतिलकाञ्चनदानतः । चित्रगुप्तादयस्तुष्टा यमस्य पुरवासिनः ॥४६॥ सप्तधान्यप्रदानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् । तुष्टा भवन्ति येऽन्येऽपि त्रिषु द्वारेष्वधिष्ठिताः ॥४७॥ व्रीहयो यवगोधूमा मुद्गा माषाः प्रियङ्गवः चणकाः सप्तमा ज्ञेया सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥४८॥ गोचर्ममात्रं वसुधा दत्ता पात्रे विधानतः ।

गुप्त आदि सन्तुष्ट होते हैं ॥ ४६ ॥ सप्तधान्य के दान से धर्मध्वज और यमपुरी के तीनों द्वारों पर स्थित द्वारपाल प्रसन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ (१) धान, (२) जौ, (३) गेहूँ, (४) मूँग, (५) माष (उड़द), (६) प्रियङ्गु (काकुन या कंगुनी) और सातवाँ (७) चना—ये सप्तधान्य कहे गये हैं ॥ ४८ ॥ सत्पात्र को विधिपूर्वक गोचर्म-

ᐧपरिमित भूमि का दान देने से मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर पवित्र हो जाता है। ऐसा दिव्यदृष्टि वाले मुनियों का कथन है ॥ ४९ ॥ राज्य-संचालन में राजा से होने वाला पाप न तो व्रतों को करने से दूर होता है, न तीर्थों में स्नान से और न किसी अन्य वस्तु के दान से दूर होता है, अपितु वह केवल भूमिदान से ही नष्ट होता है ॥ ५० ॥ धान्यपूर्ण भूमि का दान ब्राह्मण को देने वाला मनुष्य देवों और असुरों द्वारा पूजित होता

पुनाति ब्रह्महत्याया दृष्टमेतन्मुनीश्वरैः ॥ ४९ ॥ न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नान्यदानाद्विनश्यति।
राज्ये कृतं महापापं भूमिदानाद्विलीयते ॥ ५० ॥ पृथिवीं सस्यसम्पूर्णां यो ददाति द्विजातये।
स प्रयातीन्द्रभुवने पूज्यमानः सुराऽसुरैः ॥ ५१ ॥ अत्यल्पफलदानि स्युरन्यदानानि काश्यप।
पृथिवीदानजं पुण्यमहन्यहनि वर्द्धते ॥ ५२ ॥ यो भूत्वा भूमिपो भूमिं नो ददाति द्विजातये।
स नाप्नोति कुटीं ग्रामे दरिद्री स्याद्भवे भवे ॥ ५३ ॥ अदानाद्भूमिदानस्य भूपतित्वाभि-

हुआ इन्द्रलोक में जाता है ॥ ५१ ॥ हे कश्यप के पुत्र गरुड ! अन्य दान अत्यल्प फल देने वाले होते हैं किन्तु भूमि-दान से जनित पुण्य प्रतिदिन बढ़ता रहता है ॥ ५२ ॥ राजा होकर भी जो व्यक्ति ब्राह्मण को भूमि-दान नहीं देता वह अगले प्रत्येक जन्म में दरिद्र होता है और अपने निवास हेतु ग्राम में एक कुटिया तक उसे नहीं प्राप्त होती ॥ ५३ ॥ राजा होने के अभिमान वश भूमि-दान न करने वाला तब तक नरक में रहता है जब

१–द्र० दशहस्तेन दण्डोऽत्र त्रिंशद् दण्डा निवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म ब्रह्मगोचर्म लक्षलम् ॥ पद्म ६।२३।८ । दशहस्तेन कुण्डेन त्रिंशत्

तक शेषनाग धरती को धारण करता है ॥ ५४ ॥ अतः राजा भूमिदान अवश्य करे। अन्य लोगों के लिए भूमिदान के स्थान पर मैंने गोदान का विधान किया है ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् (१) मृत्युकालिक कष्ट से मुक्ति हेतु अन्तधेनु, (२) मृत्युञ्जय रुद्र की सन्तुष्टि से मृत्यु-जन्य कष्ट से बचने के लिए रुद्रधेनु (३) ज्ञाताज्ञात ऋण से मुक्ति पाने के लिए ऋणधेनु, (४) मोक्ष प्राप्ति हेतु मोक्षधेनु और (५) वैतरणी को सुखपूर्वक पार करने के लिए वैतरणीधेनु

मानतः। निवसेन्नरके यावच्छेषो धारयते धराम् ॥ ५४ ॥ तस्माद्भूमीश्वरो भूमिदानमेव प्रदापयेत्। अन्येषां भूमिदानार्थं गोदानं कथितं मया ॥५५॥ ततोऽन्तधेनुर्दातव्या रुद्रधेनुं प्रदापयेत्। ऋणधेनुं ततो दत्त्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत् ॥५६॥ दद्याद्वैतरणीं धेनुं विशेषविधिना खग ! । तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ॥ ५७ ॥ बालत्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम्। वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥ ५८ ॥ यन्निशायां तथा प्रात-

का दान विशेष विधि से करे। इन गोदानों में दी गयी गायें मनुष्य को मनसा, वाचा और कर्मणा किये गये पाप से मुक्त करके उसका उद्धार करती हैं ॥ ५६–५७ ॥ मनुष्य ने अपनी बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था या वृद्धावस्था में अथवा दूसरे जन्म में प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, अपराह्णकाल तथा दोनों सन्ध्याओं के समय

कुण्डा निवर्तनम्। तान्येव दश विस्ताराद् गोचर्मो तत्प्रदोऽघभित् ॥ अग्नि २११।१३–१४। गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः। तद् गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ॥ भविष्य २।३।२।२५। सवृषं गोसहस्रन्तु यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इति स्मृतम् ॥ पद्म ६।३३।९

शरीर से, मन से या वाणी से जो भी पाप किये हों वह तपस्वी और सदाचारी वेदज्ञ ब्राह्मण को एक बार भी दुधारू गौ बछड़े और दोहनी आदि समस्त सामग्रियों सहित दान देने से उन सब पापों से मुक्त हो जाता है। दान में दी गयी वह गौ अन्तकाल में गोदान करने वाले को पाप-राशि से मुक्त करके उसका उद्धार करती है ॥ ५८–६१ ॥ स्वस्थचित्त व्यक्ति के द्वारा एक गौ का दान किये जाने पर उसे जो फल मिलता,है वही

यन्मध्याह्नापराह्णयोः । सन्ध्ययोर्यत्कृतं पापं कायेन मनसा गिरा ॥ ५९ ॥ दत्त्वा धेनुं सकृ-
द्वापि कपिलां क्षीरसंयुताम् । सोपस्करां सवत्सां च तपोवृत्तसमन्विते ॥६०॥ ब्राह्मणे वेदविदुषे
सर्वपापैः प्रमुच्यते । उद्धरेदन्तकाले सा दातारं पापसञ्चयात् ॥६१॥ एका गौः स्वस्थचित्तस्य
ह्यातुरस्य च गोः शतम् । सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम् ॥ ६२ ॥ मृतस्यैतत्पुनर्लक्षं
विधिपूतं च तत्समम् । तीर्थपात्रसमोपेतं दानमेकं च लक्षधा ॥ ६३ ॥ पात्रे दत्तं च यद्दानं
तल्लक्षगुणितं भवेत् । दातुः फलमनन्तं स्यान्न पात्रस्य प्रतिग्रहः ॥ ६४ ॥ स्वाध्यायहोम-

फल आसन्न मृत्यु वाले व्यक्ति को एक सौ गायों के दान से मिलता है तथा उतना ही फल मृत्यु काल में प्राण निकलते समय चित्त-विभ्रंश के कारण संज्ञाशून्य व्यक्ति को एक हजार गायों के दान से प्राप्त होता है और वही फल मृत्यु के पश्चात् [मृतक के लिए उसके पुत्रादि बान्धवों के द्वारा] विधिपूर्वक एक लाख गायों का दान देने से प्राप्त होता है। तीर्थ में सत्पात्र को एक गौ का दान भी एक लाख गायों के दान के तुल्य होता है ॥ ६२–६३ ॥ सत्पात्र को प्रदत्त एक गौ के दान का फल लाखगुना अधिक होता है। उस दान का दाता अनन्त फल

का भागी होता है और उसके प्रतिगृहीता सुपात्र ब्राह्मण को भी प्रतिग्रह (अर्थात् दान लेने) का दोष नहीं लाता ॥ ६४ ॥ नित्य स्वाध्याय और होम करने वाला तथा परिवार के बाहर किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा पकाया हुआ अन्न न खाने वाला स्वपाकी ब्राह्मण रत्नों से परिपूर्ण पृथिवी का दान लेने पर भी प्रतिग्रह दोष से लिप्त नहीं होता ॥ ६५ ॥ भला विष को दूर करने वाले मन्त्र तथा शीत को दूर करने वाली अग्नि भी क्या दोष के

संयुक्तः परपाकविवर्जितः । रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥ ६५ ॥ विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभागिनौ । अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् ॥ ६६ ॥ कुलैक-शतसंयुक्तं गृहीतारं तु पातयेत् । नाऽपात्रे विदुषा देया ह्यात्मनः श्रेय इच्छता ॥६७॥ एका ह्येकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन । सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ६८ ॥

भागी होते हैं ? कदापि नहीं । किन्तु कुपात्र को दान में दी गयी गाय दाता को नरक में गिराती है ॥ ६६ ॥ तथा दान लेने वाले कुपात्र ब्राह्मण को भी वह गौ उसके कुल के एक सौ एक पीढ़ी के पुरुषों सहित नरक में गिराती है । अतः अपना श्रेय चाहने वाला विद्वान् व्यक्ति कुपात्र को गोदान न करे ॥ ६७ ॥ एक गौ का दान केवल एक ब्राह्मण को देना चाहिए । अनेक ब्राह्मणों को एक गौ का दान कदापि नहीं देना चाहिए । उस दान में दी हुई गौ का यदि विक्रय या विभाजन किया गया तो वह दाता के कुल के सात पीढ़ी तक के पुरुषों को

दग्ध कर देती है ॥ ६८ ॥ मैंने पहले तुमसे जिस वैतरणी नदी के विषय में कहा था उसको पार करने के उपाय रूप गोदान की विधि को मैं अब तुम्हें बतलाता हूँ ॥ ६९ ॥ इसके लिए कृष्ण अथवा रक्त वर्ण की गौ को अलंकृत करे। उस गौ के सींग सोने और खुर चाँदी की पतर से मंढे गये हों और उसे दुहने का पात्र काँसे का हो ॥ ७० ॥ उसको एक जोड़ा कृष्ण वर्ण के वस्त्रों से आच्छादित किया गया हो और उसके गले में घण्टी बँधी

कथिता या मया पूर्वं तव वैतरणी नदी। तस्या ह्युद्धरणोपायं गोदानं कथयामि ते ॥ ६९ ॥
कृष्णां वा पाटलां वापि धेनुं कुर्यादलंकृताम्। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहिनीम् ॥७०॥
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम्। कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रं सचलैकम् ॥७१॥
यमं हेमं न्यसेत्तत्र लोहदण्डसमन्वितम्। कांस्यपात्रे घृतं कृत्वा सर्वं तस्योपरि न्यसेत् ॥७२॥
नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्। गर्तं विधाय सजलं कृत्वा तस्मिन्क्षिपेत्तरीम् ॥७३॥
तस्योपरि स्थितां कृत्वां सूर्यदेहसमुद्भवाम्। धेनुं संकल्पयेत्तत्र यथाशास्त्रविधानतः ॥ ७४ ॥

हो। तब भूमि पर रुई फैला कर उसके ऊपर सवस्त्र ताम्रपात्र रखे ॥७१॥ और उसके ऊपर लोहे के दण्ड सहित सहित स्वर्णनिर्मित यम की प्रतिमा तथा घृत-पूरित काँसे के पात्र को रखे ॥ ७२ ॥ तब ईख की नाव बनाकर उसे रेशम के धागे से आवेष्टित करे और भूमि पर एक गड्ढा खोद कर उसे जल से पूरित करके ऊपर उस ईख की नाव को रख दे ॥ ७३ ॥ तब उसके ऊपर सूर्य की देह से उत्पन्न गौ को खड़ी करके शास्त्रीय विधान के

अनुसार उसके दान का संकल्प करे ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण को आभूषण सहित वस्त्रों का दान देकर गन्ध, अक्षत और पुष्प आदि से उसकी पूजा करे ॥ ७५ ॥ तब उस गौ की पूँछ को पकड़ कर ईख की नाव में पैर रख कर और ब्राह्मण को अपने आगे करके यह मन्त्र पढ़े ॥ ७६ ॥ हे जगत् के स्वामी ! हे शरणागतवत्सल ! आप भवसागर में डूबे हुए और इस [भवसागर] की शोक और सन्ताप रूपी लहरों से दुःखी जनों के रक्षक हैं ॥ ७७ ॥ हे ब्राह्मण

सालंकाराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत्। पूजां कुर्याद्विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥७५॥
पुच्छं संगृह्य धेनोस्तु नावमाश्रित्य पादतः। पुरस्कृत्य ततो विप्रमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥७६॥
भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम्। त्राता त्वं हि जगन्नाथः शरणागतवत्सलः ॥७७॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर। सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः ॥७८॥
यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्। तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः ॥७९॥
धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारमहापथे। उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते ॥८०॥

श्रेष्ठ आप विष्णुस्वरूप हैं। हे भूमिदेव ! आप मेरा उद्धार करें। मैंने आपको दक्षिणा सहित इस वैतरणी गौ का दान किया है। आपको नमस्कार है ॥ ७८ ॥ महाघोर यममार्ग में पड़ने वाली सौ योजन चौड़ी उस वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा से मैं आपको इस वैतरणी गौ का दान दे रहा हूँ। आपको नमस्कार है ॥ ७९ ॥ हे वैतरणी गौ ! तुम यमद्वार के महामार्ग में पड़ने वाली वैतरणी नदी को पार कराने के लिए मेरी प्रतीक्षा करना।

हे वैतरणी गौ ! तुमको नमस्कार है ॥ ८० ॥ मेरे आगे गायें हों, मेरे पीछे भी गायें हों, मेरे हृदय में गायें वास करें और मैं गायों के मध्य में निवास करूँ ॥ ८१ ॥ जो लक्ष्मी सभी प्राणियों में अवस्थित है और जो लक्ष्मी देव-देव विष्णु में प्रतिष्ठित है वही देवी धेनु गौ रूप में अवस्थित होकर मेरे पापों का नाश करे ॥ ८२ ॥ इन मन्त्रों से प्रार्थना करके हाथ जोड़ कर उस वैतरणी गौ तथा यम की प्रतिमा की प्रदक्षिणा करके उन दोनों को ही

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥८१॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे प्रतिष्ठिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥८२॥
इति मन्त्रैश्च सम्प्रार्थ्य साञ्जलिर्धेनुकां यमम् । सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८३॥
एवं दद्याद्विधानेन यो गां वैतरणीं खग ! । स याति धर्ममार्गेण धर्मराजसभान्तरे ॥८४॥
स्वस्थावस्थशरीरे तु वैतरण्यां व्रतं चरेत् । देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥८५॥
सा नायाति महामार्गे गोदानेन नदी खग ! । तस्मादवश्यं दातव्यं पुण्यकालेषु सर्वदा ॥८६॥

ब्राह्मण को दान कर दे ॥ ८३ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य विधान पूर्वक वैतरणी गौ का दान करता है वह धर्ममार्ग से धर्मराज की सभा में जाता है ॥ ८४ ॥ स्वस्थ शरीर रहने पर अथवा अस्वस्थ हो जाने पर भी वैतरणी गौ के दान का संकल्प करे । वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा वाले को चाहिए कि वह विद्वान् प्रतिग्रहीता को ही उस गौ का दान करे ॥ ८५ ॥ हे गरुड ! वैतरणी गौ का दान कर देने पर वह नदी यमलोक के महामार्ग में

नहीं आती । अतः सर्वदा पुण्यकाल में अवश्य गोदान करना चाहिए ॥ ८६ ॥ गङ्गा आदि तीर्थों में, ब्राह्मणों के निवास-स्थलों में, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय, संक्रान्ति के दिन, अमावास्या के दिन, उत्तरायण की मकर संक्रान्ति और दक्षिणायन की कर्क संक्रान्ति के दिन, विषुवत् की मेष और तुला संक्रान्तियों के दिन, व्यतीपात योग में अक्षयतृतीया प्रभृति युगादि तिथियों में तथा अन्य पुण्य कालों में भी उत्तम गोदान, करना चाहिए

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु ब्राह्मणावसथेषु च । चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥८७॥
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते युगादिषु । अन्येषु पुण्यकालेषु दद्याद्गोदानमुत्तमम् ॥८८॥
यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा । स एव पुण्यकालः स्याद्यतः सम्पत्तिरस्थिरा ॥८९॥
अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसञ्चयः ॥९०॥
आत्मवित्तानुसारेण तत्र दानमनन्तकम् । देयं विप्राय विदुषे स्वात्मनः श्रेय इच्छता ॥९१॥

॥ ८७–८८ ॥ जब भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और जब भी दान का पात्र प्राप्त हो जाय वही दान का पुण्य काल है [अतः उस समय दान करना चाहिए] क्यों कि सम्पत्ति अस्थिर होती है ॥ ८९ ॥ मनुष्य का शरीर नश्वर है, धन-सम्पत्ति भी सदा नहीं रहती और मृत्यु नित्य निकट आती रहती है । अतः धर्म का सञ्चय करना चाहिए ॥ ९० ॥ अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार प्रदत्त दान अनन्त फल-प्रद होता है । अतः अपना श्रेय चाहने

वाला मनुष्य अच्छे ब्राह्मण को अवश्य दान दे ।। ९१ ।। अपने कल्याण हेतु अपने हाथ से दिया हुआ अल्प धन का दान भी अक्षय होता है और उसका शुभ फल मृत्यु के तत्काल बाद ही प्राप्त होने लगता है ।। ९२ ।। मृत्यु के पश्चात् जीव अपने द्वारा प्रदत्त दान रूपी पाथेय को लेकर यमलोक के गमहामा में सुख से जाता है अन्यथा वह दानरूपी पाथेय से रहित होने पर उस मार्ग में क्लेश पाता है ।। ९३ ।। भूलोक में मनुष्य जो भी दान देते

अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम् । तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्काले चोपतिष्ठति ।।९२।।
गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि । अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ।।९३।।
यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः । यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ।।९४।।
महापुण्यप्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते । यस्तत्प्राप्य चरेद्धर्मं स याति परमां गतिम् ।।९५।।
अविज्ञाय नरो धर्मं दुःखमायाति याति च । मनुष्यजन्मसाफल्यं केवलं धर्मसेवनम् ।।९६।।
धनपुत्रकलत्रादि शरीरमपि बान्धवाः । अनित्यं सर्वमेवेदं तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।।९७।।

हैं वे सब उन्हें आगे यमलोक के मार्ग में प्राप्त होते हैं ।। ९४ ।। मनुष्य योनि में जन्म बड़े पुण्य के प्रभाव से मिलता है । जो प्राणी उस मानव योनि में जन्म पाकर धर्म का पालन करता है वह परम गति को प्राप्त करता है ।। ९५ ।। धर्म को न जानने [और उसका पालन न करने] वाला मनुष्य दुःखपूर्ण भवसागर में जन्म लेता और मरता रहता है । मनुष्य जन्म की सार्थकता केवल धर्म के पालन में ही है ।। ९६ ।। मनुष्य का धन, पुत्र,

पत्नी, बान्धव और उसका शरीर आदि सब कुछ अनित्य है। अतः उसे धर्माचरण करना चाहिए ॥ ९७ ॥ जब तक मनुष्य जीवित रहता है तभी तक भाई-बन्धु या पिता आदि का स्नेहमय सम्बन्ध रहता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् यह स्नेह-सम्बन्ध क्षणभर में ही निवृत्त होने लगता है ॥ ९८ ॥ अतः उसे बार-बार यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उसकी जीवितावस्था में भी उसका अपना आत्मा ही उसका बन्धु है। उसकी मृत्यु के पश्चात्

तावद्बन्धुः पिता तावद्यावज्जीवति मानवः। मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते ॥९८॥
आत्मेव ह्यात्मनो बन्धुरिति विद्यान्मुहुर्मुहुः। जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य मृतानां कः प्रदास्यति ।९९॥
एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दीयताम्। अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात्कोऽपि न दास्यति ॥१००॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥१०१॥
गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवाः। शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति ॥१०२॥

अन्य कौन उसके निमित्त कुछ देगा ॥ ९९ ॥ ऐसा जान कर अपने हाथ से ही दान देना चाहिए, क्यों कि जीवन अनित्य है और उसकी मृत्यु के पश्चात् कोई भी उसके निमित्त दान नहीं देगा ॥ १०० ॥ मनुष्य के मृत शरीर को भूमि में काठ या मिट्टी के ढेले के समान उपेक्षित छोड़ कर उससे मुँह मोड़ कर बान्धव लौट जाते हैं। केवल धर्म ही उसके साथ जाता है ॥ १०१ ॥ मृत पुरुष का साथ छोड़ कर उसकी धन-सम्पत्ति उसके घर में ही पड़ी रह जाती है और श्मशान से उसके सभी बन्धु-बान्धव उसका साथ छोड़ कर लौट जाते हैं, किन्तु उसके

द्वारा किया हुआ शुभ या अशुभ कर्म ही उसका अनुगमन करता है ॥ १०२ ॥ मृतक के शरीर को अग्नि भस्मसात् कर देता है। केवल उसके द्वारा किया गया कर्म ही उसके साथ रह जाता है। उसने जो भी पुण्य या पाप-कर्म किया हो उसका भोग ही वह आगे सर्वत्र करता है ॥ १०३ ॥ इस दुःखमय संसार-सागर में कोई किसी का बन्धु नहीं है। प्राणी अपने कर्म के सम्बन्ध से संसार में जन्म लेता है और कर्म के फल का भोग पूरा हो जाने

शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम्। पुण्यं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः ॥१०३॥
न कोऽपि कस्यचिद्बन्धुः संसारे दुःखसागरे। आयाति कर्मसम्बन्धाद्याति कर्मक्षये पुनः ॥१०४॥
मातृपितृसुतभ्रातृबन्धुदारादिसङ्गमः। प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥१०५॥
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च कस्य भार्या धनं च वा। संसारे नास्ति कः कस्य स्वयं तस्मात्प्रदीयताम्॥१०६
आत्मायत्तं धनं यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत्। पराधीने धने जाते न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहेत् ॥१०७॥

पर देहत्याग कर चला जाता है ॥ १०४ ॥ माता-पिता, पुत्र, भ्राता, बन्धु, पत्नी आदि के साथ सङ्गम प्याऊ या जलाशय में मिलने वाले जीवों के समान तथा नदी के प्रवाह में सङ्गत काष्ठों के समान है, जो कि कुछ क्षण बाद चलायमान होकर पुनः अलग-थलग हो जाते हैं ॥ १०५ ॥ किसके पुत्र और पौत्र ? किसकी स्त्री अथवा किसका धन ? संसार में कोई किसी का नहीं है। अतः स्वयं अपने हाथ से ही दान दीजिए ॥ १०६ ॥ जब तक धन अपने आधीन है तभी तक उसे ब्राह्मण को दान करदे। जब धन दूसरे के हाथ में चला जाता है तो उसका दान

देने के लिए कहने का भी साहस नहीं हो पाता ॥ १०७ ॥ पूर्वजन्म में किये गये दान के फलस्वरूप इस जन्म में प्रभूत धन प्राप्त हुआ है। अतः ऐसा विचार करके धर्मार्थ धन का दान दीजिए ॥ १०८ ॥ धर्म का पालन करने से अर्थ की प्राप्ति होती है। धर्माचरण से ही कामोपभोगो का सुख मिलता है और धर्माचरण ही मोक्ष-साधक बनता है। अतः मनुष्य को धर्माचरण करना चाहिए ॥ १०९ ॥ धर्म को श्रद्धा के द्वारा धारण किया जाता है

पूर्वजन्मकृताद्दानादत्र लब्धं धनं बहु। तस्मादेवं परिज्ञाय धर्मार्थं दीयतां धनम् ॥१०८॥
धर्मात्सञ्जायतेऽर्थश्च धर्मात्कामोऽभिजायते। धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥१०९॥
श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः। निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः॥११०॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि नरस्य प्रयतात्मनः॥१११॥
तस्मादवश्यं दातव्यं तदा दानं विधानतः। अल्पं वा बहु वेतीमां गणानां नैव कारयेत् ॥११२॥

अर्थात् धर्म का आचरण श्रद्धा से होता है, न कि बहुत-सी धनराशि से। प्राचीन काल के अकिञ्चन मुनिजन श्रद्धा से धर्माचरण करने के फलस्वरूप ही स्वर्ग में गये थे ॥ ११० ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल और जल आदि मुझे प्रदान करता है मैं उस शुद्धबुद्धि भक्त के द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त उन वस्तुओं को सहर्ष ग्रहण करता हूँ ॥ १११ ॥ अतः उस समय (आतुरकाल) में विधिविधानपूर्वक अवश्य दान देना चाहिए। वह दान अल्प या अधिक जितना भी हो उस विषय में कोई गणाना या चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥ ?१२ ॥ जो धर्मात्मा पुत्र

भूमि में आतुर अवस्था में पड़े हुए पिता के हाथ से दान दिलवाता है वह देवताओं के द्वारा भी पूजनीय होता है ॥ ११३ ॥ पुत्रों के द्वारा अपने माता-पिता के निमित्त सत्पात्र को जो दान दिया जाता है उससे स्वयं उनका आत्मा तो पवित्र होता ही है, उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र भी पवित्र हो जाते हैं ॥११४॥ पिता के निमित्त प्रदत्त दान का सौगुना अधिक पुण्य होता है, माता के निमित्त प्रदत्त दान का सहस्रगुना पुण्य होता है। बहिन के निमित्त प्रदत्त दान का दश हजार गुना पुण्य होता है और सोदर भ्राता के निमित्त प्रदत्त दान का अनन्त पुण्य

धर्मात्मा च स पुत्रो वै दैवतैरपि पूज्यते। दापयेद्यस्तु दानानि पितरं ह्यातुरं भुवि ॥११३॥
पित्रोर्निमित्तं यद्वित्तं पुत्रैः पात्रे समर्पितम्। आत्मापि पावितस्तेन पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥११४॥
पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरेव च। भगिनीदशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥११५॥
न चैवोपद्रवा दातुर्न वा नरकयातनाः। मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥११६॥

होता है ॥ ११५ ॥ अथवा इसका (यह तात्पर्य भी समझा गया है कि) अपने द्वारा प्रदत्त दान की अपेक्षा पिता के हाथों दिलवाये गये दान का सौ गुना अधिक पुण्य होता है, माता के हाथों दान दिलवाने का सहस्रगुना और भगिनी के हाथों दिलवाये गये दान का दश हजार गुना अधिक पुण्य होता है तथा सहोदर भ्राता के हाथों से दिलवाया गया अक्षय पुण्यदायक होता है ॥ ११५ ॥ दान देने वाला न तो उपद्रवों से पीडित होता है, न उसे नरकयातना भोगनी पड़ती है और न मृत्युकाल में उसे यमदूतों का कोई भय होता है ॥ ११६ ॥ हे गरुड ! यदि

कोई कदर्य मनुष्य आतुर काल में लोभवश दान नहीं देते हैं तो वे पापी मृत्यु के बाद शोकमग्न होते हैं ॥११७॥

यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके। मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनः खग ॥११७॥

पुत्राः पौत्राः सहभ्रात्रा सगोत्राः सुहृदस्तु ये। यच्छन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नास्ते न संशयः॥११८॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे आतुरदाननिरूपणो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो पुत्र, पौत्र, भ्राता, सगोत्रजन और सुहृद्जन आतुर काल में दान नहीं देते वे निःसन्देह ब्रह्महत्यारे हैं ॥११८॥

—◡*◠—

अथ नवमोऽध्यायः

म्रियमाणकृत्यनिरूणम्

श्री गरुड बोले—हे भगवन्! आपने आतुरकालिक दान के विषय में भली-भाँति बतलाया। अब मनुष्य

श्री गरुड उवाच—

कथितं भवता सम्यग्दानमातुरकालिकम्। म्रियमाणस्य यत्कृत्यं तदिदानीं वद प्रभो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि देहत्यागस्य तद्विधिम्। मृता येन विधानेन सद्गतिं यान्ति मानवाः॥२॥

के प्राण त्यागते समय जो कृत्य करने चाहिए उनके विषय में बतलाइए ॥ १ ॥ श्री भगवान् बोले—हे गरुड!

देहत्याग के समय करने योग्य कृत्यों की विधि सुनो। इन कृत्यों को यथाविधान करके प्राणत्याग करने वाले मनुष्य सगद्‌ति को प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ जब मानव देहधारी पुरुष कर्मवश देह-त्याग करने लगता है तो उस समय वह तुलसी के पौधे के निकट गोबर से एक मण्डल बनाये या बनवाये ॥ ३ ॥ उस मण्डल के ऊपर तिलों को बिखेर कर दर्भों (कुशों) को बिछाये और तब उनके ऊपर श्वेत वस्त्र के आसन पर शालग्राम शिला को स्थापित

कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः। तुलसीसन्निधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु ॥३॥
तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत्। स्थापयेदासने शुभ्रे शालग्रामशिलां तदा ॥४॥
शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा। तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता ॥५॥
तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा। तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा ॥६॥
तुलसीविटपस्थानं गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्‌गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिङ्कराः ॥७॥

करे ॥ ४ ॥ शालग्राम शिला पाप, दोष और भय को दूर करती है उसके सान्निध्य में प्राणत्याग करने से मनुष्य निश्चयमेव मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ जहाँ पर सांसारिक संताप को दूर करने वाली तुलसी वृक्ष की छाया विद्यमान हो वहाँ प्राणत्याग करने से सदैव मुक्ति प्राप्ति होती है जो कि सभी दानों को देने पर भी दुर्लभ होती है ॥ ६ ॥ जिसके घर में तुलसी वृक्ष के लिए स्थान विद्यमान रहता है उसका घर तीर्थस्वरूप है। उसमें यमदूत

नहीं आते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य तुलसी की मञ्जरी को धारण कर प्राणत्याग करता है वह भले ही सैकड़ों पाप किया हो तब भी यम उसे नहीं देख सकते ॥ ८ ॥ तुलसीदल को मुख में धारण करके तिलों के ऊपर फैलाये हुए कुशों के ऊपर प्राणत्याग करने वाला मनुष्य पुत्रहीन होने पर भी निःसन्देह विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ तीनों प्रकार के तिल, दर्भ और तुलसी ये तीनों पवित्र होते हैं और दुर्गति को प्राप्त करते हुए आतुर मनुष्य का

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति । यमस्तं नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥८॥
तस्या दलं मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृतः । नरो विष्णुपुरं याति पुत्रहीनोऽप्यसंशयः ॥९॥
तिलाः पवित्रास्त्रिविधा दर्भाश्च तुलसी तथा । नरं निवारयन्त्येते दुर्गतिं यान्तमातुरम् ॥१०॥
मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः । असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्ततः ॥११॥
दर्भा विभूतिर्मे तार्क्ष्य ! मम रोमसमुद्भवाः । अतस्तत्स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥१२॥
कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः । कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥१३॥

उद्धार करते हैं ॥ १० ॥ चूँकि तिल मेरे पसीने से उत्पन्न हुए हैं, अतः पवित्र हैं और इसीलिए उनके प्रभाव से असुर, दानव और दैत्य पलायित हो जाते हैं ॥११॥ हे गरुड ! मेरे रोमों से उत्पन्न कुश मेरी विभूति हैं । अतः मृत्युकाल में उनका स्पर्श होने मात्र से भी मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥ १२ । कुश के मूल में ब्रह्मा स्थित हैं, कुश के मध्य में विष्णु स्थित हैं और कुश के अग्रभाग में शङ्कर स्थित हैं । इस प्रकार तीनों देवता कुश में स्थित हैं

॥ १३ ॥ अतः कुश, अग्नि, मन्त्र, तुलसी, विप्र और गौ—ये सब पुनः पुनः उपयोग में लाये जाने पर भी निर्माल्य अर्थात् अशुद्ध नहीं होते ॥ १४ ॥ किन्तु पिण्डदान में प्रयुक्त दर्भ, प्रेत के निमित्त भोजन कर लेने पर ब्राह्मण, नीच कर्म करने वाले अथवा निम्न वर्ण के मनुष्य के मुख से उच्चारित मन्त्र तथा उसके घर की गौ एवं तुलसी और चिता की अग्नि—ये सब निर्माल्य अर्थात् अपवित्र [अतएव अग्राह्य] होते हैं ॥ १५ ॥ गोबर से

अतः कुशा वह्निमन्त्रतुलसीविप्रधेनवः । नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः ॥१४॥
दर्भाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने । मन्त्रा गौस्तुलसी नीचे चितायां च हुताशनः ॥१५॥ गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भास्तरणसंस्कृते । भूतले ह्यातुरं कुर्यादन्तरिक्षं विवर्जयेत् ॥१६॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे देवा हुताशनः । मण्डलोपरि तिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् ॥१७॥
सर्वत्र वसुधा पूता लेपो यत्र न विद्यते । यत्र लेपः कृतस्तत्र पुनर्लेपेन शुद्ध्यति ॥१८॥

लीपे हुए तथा कुशों को बिछा कर पवित्र किये गये भूतल पर आतुर को लिटावे । उसे अन्तरिक्ष (अर्थात् चौकी, पलंग या खटिया आदि) में न रहने दे ॥ १६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य सभी देवता और अग्नि—ये सब मण्डल के ऊपर अधिष्ठित होते हैं, अतः [इनके आवाहन और पूजन के लिए] मण्डल बनावे ॥ १७ ॥ जो भूमि लेपरहित (अर्थात् मल-मूत्र या जूठन के दाग से रहित) हो वह सर्वत्र पवित्र होती है, किन्तु जो भूमि लेपयुक्त हो (अर्थात् जो पहले कभी लीपी जा चुकी हो या मल-मूत्र या जूठन आदि के लेप से दूषित हो) वह पुनः लीपने

ग० पु०

से शुद्ध हो जाती है ॥ १८ ॥ राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत और यमदूत आदि बिना लीपी हुई अशुद्ध भूमि में, खाट में तथा अन्तरिक्ष में (अर्थात् भूतल से ऊपर आकाश से अन्तरित स्थान में) प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥ अतः [गोबर से लीपी हुई] भूमि में मण्डल की रचना किये बिना आतुर मनुष्य से अग्निहोत्र, श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन और देवों का पूजन न करावे ॥ २० ॥ तदनन्तर आतुर मनुष्य को लीपी हुई भूमि में लिटा कर उसके

राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताः प्रेताः यमानुगाः । अलिप्तदेशे खट्वायामन्तरिक्षे विशन्ति च ॥१९॥
अतोऽग्निहोत्रं श्राद्धं च ब्रह्मभोज्यं सुरार्चनम् । मण्डलेन विना भूम्यामातुरं नैव कारयेत् ॥२०॥
लिप्तभूम्यामतः कृत्वा स्वर्णं रत्नं मुखे क्षिपेत् । विष्णो पादोदकं दद्याच्छालग्रामस्वरूपिणः ॥२१॥
शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुमात्रकम् । स सर्वपापनिर्मुक्तो वैकुण्ठभुवनं व्रजेत् ॥२२॥
ततो गंगाजलं दद्यान्महापातकनाशनम् । सर्वतीर्थकृतस्नानदानपुण्यफलप्रदम् ॥२३॥

मुख में स्वर्ण और रत्न डाले और उसे शालग्राम शिला के रूप में स्थित भगवान् विष्णु का चरणामृत पिलावे ॥ २१ ॥ शालग्राम शिला के स्पर्श से पवित्र जल की एक बूँद मात्र भी जो मनुष्य पी लेता है वह सभी पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ तब उस आतुर को गङ्गाजल पिलावे जो कि महापातकों का नाश करता है और सभी तीर्थों में किये जाने वाले स्नान और दान के पुण्यफल को प्रदान करता है ॥ २३ ॥ जो

मनुष्य शरीर शुद्धि-कारक सहस्र चान्द्रायण करता है और जो गङ्गाजल का पान करता है वे दोनों समान रूप से पवित्र होते हैं ॥२४॥ हे गरुड ! जैसे अग्नि के सम्पर्क से रुई का ढेर जल कर समाप्त हो जाता है उसी प्रकार गङ्गाजल का पान करने से पातक-राशि भस्मसात् हो जाती है ॥२५॥ जो मनुष्य सूर्य की किरणों से संतप्त गङ्गा-जल का पान करता है वह सभी योनियों में जन्मपाने से मुक्ति पाकर विष्णु के धाम को प्राप्त करता है ॥२६॥

चान्द्रायणं चरेद्यस्तु सहस्रं कायशोधनम् । पिबेद्यश्चैव गङ्गाम्भः समौ स्यातामुभावपि ॥२४॥
अग्निं प्राप्य यथा तार्क्ष्य ! तूलराशिर्विनश्यति । तथा गङ्गाम्बुपानेन पातकं भस्मसाद्भवेत् ॥२५॥
यस्तु सूर्यांशुसन्तप्तं गंगायाः सलिलं पिबेत् । स सर्वयोनिनिर्मुक्तः प्रयाति सदनं हरेः ॥२६॥
नद्यो जलावगाहेन पावयन्तीतराजनान् । दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ॥२७॥
पुनात्यपुण्यान्पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः । गंगा तस्मात्पिबेत्तस्या जलं संसारतारकम् ॥२८॥
गंगा गंगेति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥२९॥

अन्य नदियाँ मनुष्यों को अपने जल में स्नान करने पर ही पवित्र करती हैं, जब कि गङ्गा अपने दर्शन अथवा अपने जल के स्पर्श, पान अथवा 'गङ्गा' नाम के कीर्तन से भी सैकड़ों और हजारों पुण्यहीन या अपवित्र मनुष्यों को भी पवित्र कर देती है । अतः संसार-सागर से पार लगाने वाले उस गङ्गा के जल का पान करे ॥ २७–२८ ॥ जब प्राण निकल कर गले तक आ चुके हों उस समय भी जो मनुष्य 'गङ्गा' 'गङ्गा' ऐसा कहता है वह मृत्यु के

पश्चात् विष्णुपुरी में जाता है और पुनः भूलोक में जन्म नहीं पाता ॥ २९ ॥ जो मनुष्य प्राण निकलते समय भी श्रद्धाभाव से युक्त होकर मन से गङ्गा का चिन्तन करता है वह भी परमगति को प्राप्त करता है ॥ ३० ॥ अतः गङ्गा का ध्यान करते हुए उसे प्रणाम करे तथा उसका स्मरण करे और उसके जल का पान करे। तत्पश्चात् जितना और जो कुछ भी संभव हो सके श्रीमद्भागवत पुराण की मोक्षदायिनी कथा का श्रवण करे ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य

उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः । चिन्तयेन्मनसा गङ्गां सोऽपि याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ अतो ध्यायेन्नमेद्गङ्गां संस्मरेत्तज्जलं पिबेत् । ततो भागवतं किञ्चिच्छृणुयान्मोक्ष-दायकम् ॥ ३१ ॥ श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत् । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्म-लोकात्कदाचन ॥ ३२ ॥ वेदोपनिषदां पाठाच्छिवविष्णुस्तवादपि । ब्राह्मणक्षत्रियविशां मरणं मुक्तिदायकम् ॥ ३३ ॥ प्राणप्रयाणसमये कुर्यादनशनं खग ! । दद्यादातुरसंन्यासं विरक्तस्य

अन्त समय में श्रीमद्भागवत का एक श्लोक या आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक भी पढ़ता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और उसका इस भवसागर में पुनरागमन कदापि नहीं होता ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के मरण काल में वेदों और उपनिषदों का पाठ तथा शिव और विष्णु की स्तुति मुक्तिदायक होती है ॥३३॥ हे गरुड ! प्राण-त्याग का समय आ जाने पर मनुष्य अन्न और जल को ग्रहण न करते हुए अनशन व्रत करे।

प्राणत्याग के पूर्व विरक्त प्रकृति के द्विजन्मा (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को आतुर संन्यास[१] ग्रहण करावे ॥ ३४ ॥ प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी जो मनुष्य अपने मुख से 'मैंने संन्यास ले लिया है'[२] ऐसा कहता है वह मृत्यु के पश्चात् विष्णुलोक में जाता है। उसका भूलोक में पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३५ ॥ हे गरुड ! इस

द्विजन्मनः ॥ ३४ ॥ संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥ ३५ ॥ एवं जातविधानस्य धार्मिकस्य तदा खग ! । ऊर्ध्वच्छिद्रेण गच्छन्ति प्राणास्तस्य सुखेन हि ॥ ३६ ॥ मुखं च चक्षुषी नासे कर्णौ द्वाराणि सप्त च। एभ्यः सुकृतिनो यान्ति योगिनस्तालुरन्ध्रतः ॥३७॥ अपानान् मिलितप्राणौ यदा हि भवतः पृथक्।

प्रकार जिस धार्मिक मनुष्य के आतुर-कालिक कृत्य विधि-विधान-पूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं उसके प्राण ऊपर के छिद्र में से होकर सुखपूर्वक निकलते हैं ॥ ३६ ॥ पुण्यात्माओं के प्राण मुख, आँखों, नासिकारन्ध्रों या कानों—इन सात द्वारों में से किसी से होकर बाहर निकलते हैं और योगियों के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से होकर निकलते हैं ॥३७॥ जब

१. आतुर संन्यास ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्गों के लिए विहित है (विशेष विवरण हेतु द्र० पराशर माधव आचरण काण्ड पृ.५०५)

२. आतुर संन्यास में 'ॐ भुर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' इत्यादि प्रैषमन्त्रों का उच्चारण ही पर्याप्त माना गया है इसके प्रमाण रूप में निर्णयसिन्धु (निर्णयसागर प्रेस संस्करण) पृ० ४४१ में ये उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं—

भारते—आतुराणां तु संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥

जाबालिश्रुतावपि-यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत् । इति । आतुर-संन्यास के लिए आत्मश्राद्धादि दण्डधारणपर्यन्त विविध-कृत्य विहित नहीं हैं, क्यों कि उनको कर लेने पर मनुष्य चतुर्थाश्रमी (संन्यासाश्रम वाला) हो जाता है तब वह दाहकर्म, तिलोदकदान और

अपान से मिले हुए प्राण पृथक् हो जाते हैं तब प्राणवायु अत्यन्त सूक्ष्म होकर शरीर रूपी पुतले से बाहर निकल जाता है ।। ३८ ।। इस प्रकार प्राणवायु स्वरूप ईश्वर के निकल जाने पर काल के द्वारा आहत शरीर कटे हुए निराधार वृक्ष के समान गिर पड़ता है ।। ३९ ।। प्राणों से रहित होते ही शरीर सद्यः निश्चेष्ट, घृणास्पद, अस्पृश्य

सूक्ष्मीभूत्वा तदा वायुर्विनिष्क्रामति पुत्तलात् ।। ३८ ।। शरीरञ्च पतेत्[1] पश्चान्निर्गते मरुतीश्वरे । कालाहतं[2] पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः ।।३९।। निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम् । अस्पृश्यं जायते सद्यो दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् ।। ४० ।। त्रिधावस्था शरीरस्य कृमिविड्भस्म-रूपतः । किं गर्वः क्रियते देहे क्षणविध्वंसिभिर्नरैः[3] ।। ४१ ।। पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव

दुर्गन्धियुक्त और सभी की निन्दा का पात्र या तिरस्कार-भाजन बन जाता है ।। ४० ।। प्राण-रहित शरीर की तीन अवस्थाएँ होती हैं—इसमें कीड़े पड़ते हैं, विष्ठा के समान [दुर्गन्धयुक्त] हो जाता है, अन्ततः चिता में भस्मसात्

पिण्डदान का अधिकारी नहीं रह जाता। आतुर संन्यास की विधि हेतु देखिए अन्त्यकर्मदीपक पृ० १०३–१०४।

१. गरुडमहापुराण धर्मकाण्ड (प्रे. ख.) ३१।२८ से स्वीकृतपाठ। 'पतति' के अर्थ में प्रयुक्त। अनेक प्रतियों में मुद्रित 'शरीरं पतते पश्चात्' को आर्ष पाठ माना जा सकता है। यदि 'श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं' के नियमानुरोधेन उन मुद्रित प्रतियों में 'पतते' पाठ बनाया गया है तो यह उचित नहीं, क्योंकि इस नियम के अपवाद अनेक श्लोकों में प्राप्त होते हैं। यथा (१) न बुद्धिभेदं जनयेद्…। (२) यज्ञशिष्टामृतभुजो…। (३) निर्विण्णानां ज्ञानयोगो । (४) त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः…। (५) अट्टशूला जनपदा । इत्यादि।

२. 'वाताहतः'। गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे. ख.) ३१।२८। ३. अर्थसंगति की दृष्टि से 'क्षणविध्वंसिनि नरैः' पाठ समीचीन है।

हो जाता है। क्षण में नष्ट हो जाने वाले शरीर पर मनुष्यों के द्वारा क्यों गर्व किया जाता है ॥ ४१ ॥ पञ्चतत्त्वों से बने शरीर का पृथिवीतत्त्व पृथिवी में, जलतत्त्व जल में, अग्नितत्त्व अग्नि में, वायुतत्त्व वायु में और आकाशतत्त्व आकाश में लीन होता है। सभी प्राणियों की देह में अवस्थित रहने वाला आत्मा तो सर्वव्यापी, शिवस्वरूप, नित्य-मुक्त, जगत्साक्षी, अजन्मा और अमर है ॥ ४२–४३ ॥ मृतक की देह से निकला हुआ जीव अपनी आँख-कान

तथा जले। तेजस्तेजसि लीयेत समीरस्तु समीरणे ॥ ४२ ॥ आकाशश्च तथाऽऽकाशे सर्वव्यापी च शङ्करः। नित्यमुक्तो जगत्साक्षी आत्मा देहेष्वजोऽमरः ॥ ४३ ॥ सर्वेन्द्रिययुतो जीवः शब्दादिविषयैर्वृतः। कामरागादिभिर्युक्तः कर्मकोशसमन्वितः ॥ ४४ ॥ पुण्यवासनया युक्तो निर्मिते स्वेन कर्मणा। प्रविशेत्स नवे देहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥ ४५ ॥ तदा विमानमादय किङ्किणीजालमालि यत्। आयान्ति देवदूताश्च लसच्चामरशोभिताः ॥ ४६ ॥ धर्म-

आदि समस्त इन्द्रियों एवं उनके शब्द-स्पर्श आदि विषयों, काम-राग आदि की भावनाओं तथा कर्म रूपी कोश और पुण्य की वासना सहित अपने कर्म के प्रभाव से निर्मित नये सूक्ष्म शरीर में उसी प्रकार प्रवेश करता है जैसे अपने पुराने घर के जल जाने पर गृहस्थ नवनिर्मित गृह में प्रवेश करता है ॥४४–४५॥ तब किङ्किणियों (अर्थात् छोटी-छोटी घण्टियों) की मालाओं से सजाये हुए विमान को लेकर सुन्दर चामरों से सुशोभित देवदूत आते हैं

॥ ४६ ॥ वे धर्म के तत्त्व को जानने वाले, बुद्धिमान् और धार्मिक जनों के प्रति सदा स्नेह रखने वाले देवदूत विधि-विधान पूर्वक आतुर कृत्य करके देह त्यागने वाले मनुष्य के सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्मा को उस विमान में बैठा कर स्वर्ग में ले जाते हैं ॥ ४७ ॥ सुन्दर दिव्यदेहधारी वह महानुभाव पुरुष निर्मल वस्त्र और माला को

तत्त्वविदः प्राज्ञाः सदा धार्मिकवल्लभाः । तदैनं कृतकृत्यं स्वर्विमानेन नयन्ति ते ॥ ४७ ॥

सुदिव्यदेहो विरजाम्बरस्रक् सुवर्णरत्नाभरणैरुपेतः ।

दानप्रभावात्स महानुभावः प्राप्नोति नाकं सुरपूज्यमानः ॥ ४८ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे म्रियमाणकृत्यनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

धारण कर तथा सुवर्ण और रत्नों से बने आभूषणों से सुशोभित होकर अपने दान के प्रभाव से देवों के द्वारा भी सम्मानित होता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥ ४८ ॥

—○✱○—

अथ दशमोऽध्यायः

दाहास्थिसञ्चयकर्मनिरूपणम्

गरुड बोले—हे प्रभो ! आप पुण्यात्माओं के शरीर के दाह-संस्कार का विधान बतलाइए यदि कोई स्त्री सती हो तो उसकी महिमा का भी वर्णन कीजिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! सुनो मैं तुम्हें सभी और्ध्व-

गरुड उवाच—

देहदाहविधानं च विभो सुकृतिनां वद । सती यदि भवेत्पत्नी तस्याश्च महिमां वद ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्यामि सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् । यत्कृत्वा पुत्रपौत्राश्च मुच्यन्ते पैतृकादृणात् ॥२॥
किं दत्तैर्बहुभिर्दानैः पित्रोरन्त्येष्टिमाचरेत् । तेनाग्निष्टोमसदृशं पुत्रः फलमवाप्नुयात् ॥३॥

देहिक कृत्यों की विधि बतलाता हूँ, जिन्हें करके पुत्र और पौत्र पैतृक ऋण से मुक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥ बहुत सारे दान देने से क्या लाभ ? माता-पिता की अन्त्येष्टि अच्छी तरह करे । उसी से पुत्र अग्निष्टोम याग के समान फल

प्राप्त कर सकता है ॥ ३ ॥ माता-पिता की मृत्यु होने पर पुत्र अधिक शोक करना छोड़ कर समस्त पापों से मुक्ति हेतु स्वयं अपने तथा समस्त बान्धवों के शिर का मुण्डन करावे ॥ ४ ॥ जिसने माता-पिता की मृत्यु होने पर मुण्डन नहीं कराया उसे संसारसागर से तारने वाला पुत्र कैसे माना जा सकता है ॥ ५ ॥ अतः नखों और कांख के बालों को छोड़ कर दाढ़ी-मूछ सहित शिर का मुण्डन अवश्य कराना चाहिए। तब समस्त बान्धवों सहित स्नान

तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः। समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापविमुक्तये ॥४॥
मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं न हि। आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः ॥५॥
अतो मुण्डनमावश्यं नखकक्षविवर्जितम्। ततः सबान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत् ॥६॥
सद्यो जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम्। मण्डयेच्चन्दनैः स्रग्भिर्गङ्गामृत्तिकयाऽथवा ॥७॥
नवीनवस्त्रैः सञ्छाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम्। नामगोत्रं समुच्चार्य सङ्कल्पेनापसव्यतः ॥८॥
मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत्। तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता ॥९॥

करके धुले हुए वस्त्र धारण करे ॥ ६ ॥ तब तत्काल ताजा जल लाकर उस शव का स्नान करावे तथा उसे चन्दन या गङ्गा की मिट्टी के आलेप तथा मालाओं से विभूषित करे ॥ ७ ॥ तब उसको देने के लिए बनाये गये पिण्ड को दक्षिणा के साथ रख कर नवीन वस्त्र से आच्छादित करके अपसव्य होकर उस मृतक के नाम और गोत्र के उच्चारण पूर्वक संकल्प करके मृत्यु स्थान में शव नाम से पुकारे जाने वाले उस मृतक को पिण्डदान करे। इससे

वहाँ की भूमि और उसकी अधिष्ठातृ देवता सन्तुष्ट होती है ॥ ८-९ ॥ जब शव को मृत्यु-स्थान से उठा कर द्वार पर लाते हैं तब उसको पान्थ कहते हैं। अतः उसे पान्थ नाम से पिण्डदान करे। इसे करने से सद्गति-रहित भूतादि की कोटि के प्रेत उस मृतक की अन्तेष्टि और सद्गति में कोई आघात या विघ्न-बाधा नहीं पहुँचाते ॥१०॥ तब पुत्रवधू आदि स्त्रियों उस मृतक की प्रदक्षिणा करके उसकी पूजा करें अर्थात् हाथ जोड़ कर श्रद्धा-सुमन

द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तस्य नाम्ना प्रदापयेत्। तेन नैवोपघाताय भूतकोटिषु दुर्गताः ॥१०॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजनीयः स्नुषादिभिः। स्कन्धः पुत्रेण दातव्यस्तदाऽन्यैर्बान्धवैः सह ॥ ११ ॥ धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति। सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च पदे पदे ॥१२॥ नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठे वा सदा तातेन लालितः। तदैव तदृणान्मुच्येन्मृतं

अर्पित करें। तब पुत्र अन्य बान्धवों के साथ उसे कन्धे पर उठावे ॥ ११ ॥ जो पुत्र अपने मृत पिता को कन्धे में उठा कर श्मशान तक ले जाता है वह पदे-पदे (पग-पग पर) अश्वमेध का फल प्राप्त करता है ॥ १२ ॥ पिता के द्वारा पुत्र को अपने कन्धे पर या पीठ पर [या गोद में] बैठा कर, उसका लालन-पालन किया जाता है। पुत्र इस ऋण से तभी मुक्त होता है, जब वह पिता की मृत्यु होने पर उसके शव को कन्धे से ढोता है ॥१३॥ तब

१. द्र० (क)—पान्थो द्वारि भवेत् तेन प्रीतः स्याद् वास्तुदेवता। चत्वरे खेचरस्तेन तुष्येद् भूतादिदेवता॥ गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४।५० (वेङ्कटेश्वरप्रेस संस्करण)। (ख) द्वारदेशे भवेत् पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३२॥ तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः। चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदीयते ॥ ३३ ॥ तेन तत्रोपघाताय भूतकोटिः पलायते। गरुड उ० ५।३२-३४ (पण्डितपुस्तकालय सं०)।

शव को लेकर आधे मार्ग में पहुँचने पर भूमि को संमार्जित और जल से प्रोक्षित करके उस पर उस शव को विश्राम देकर स्नान करावे। श्मशान के अर्धमार्ग में पहुँचने पर मृतक की भूत संज्ञा होती है। अतः वहाँ पर उसे भूत नाम से सम्बोधित करते हुए ही पिण्डदान करे ॥ १४ ॥ इस पिण्डदान के प्रभाव से सभी दिशाओं में स्थित पिशाच, राक्षस, यक्ष आदि उस मृतक की हवनीय देह को [अशुचि करके चिताग्नि में हवन के] अयोग्य नहीं

स्वपितरं वहेत् ॥ १३ ॥ ततोऽर्धमार्गे विश्रामं सम्मार्ज्याभ्युक्ष्य कारयेत्। संस्नाप्य भूतसंज्ञाय तस्मै तेन प्रदापयेत् ॥ १४ ॥ पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिक्षु संस्थिताः। तस्य होतव्य-देहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥१५॥ ततो नीत्वा श्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम्। तत्र देहस्य दाहार्थं स्थलं संशोधयेद्यथा ॥ १६ ॥ सम्मार्ज्य भूमिं संलिप्योल्लिख्योद्धृत्य च वेदिकाम्। अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः ॥ १७॥ पुष्पाक्षतैरथाभ्यर्च्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम्। लोमभ्यस्त्वनुवाकेन होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ १८ ॥ त्वं भूतभृज्जगद्योनिस्त्वं भूतपरिपालकः।

बना पाते ॥ १५ ॥ तब उसे श्मशान में ले जाकर उत्तराभिमुख रखे। वहाँ उस शव के दाह-संस्कार हेतु भूमि-शोधन इस प्रकार करे ॥ १६ ॥ भूमि का संमार्जन और लेपन करके उल्लेखन करे (अर्थात् दर्भमूल से तीन रेखाएँ खींचे और उल्लेखन क्रमानुसार ही उन रेखाओं से उभरी हुई मिट्टी को उठा कर ईशान दिशा में फेंक कर उस वेदिका को जल से प्रोक्षित करके उसमें विधि-विधान पूर्वक अग्नि-स्थापन करे ॥ १७ ॥ उस क्रव्याद संज्ञक अग्नि की पुष्पों और अक्षतों आदि से पूजा करके 'लोमभ्यः स्वाहा' इत्यादि (यजुर्वेद ३९।१० के) अनुवाक के

मन्त्रों से यथाविधि [घृत से] होम करे ॥ १८ ॥ तब उस क्रव्याद अग्नि से यह प्रार्थना करे—'हे अग्नि ! तुम सभी प्राणियों का भरण-पोषण करने वाले, जगत् की योनि (उत्पत्ति के हेतु) तथा सभी प्राणियों के परिपालक हो । इस सांसारिक मनुष्य की मृत्यु हो चुकी है, अतः इसे स्वर्ग में ले जाओ' ॥ १९ ॥ इस प्रकार अग्नि की

मृतः सांसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिं नय ॥ १९ ॥ इति सम्प्रार्थयित्वाऽग्निं चितां तत्रैव कारयेत् । श्रीखण्डतुलसीकाष्ठैः पलाशाश्वत्थदारुभिः ॥ २० ॥ चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत् । चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर । चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते ॥ २१ ॥ केऽपि तं साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः । चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे[1] ॥ २२ ॥ इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता । अन्यथा चोप-

प्रार्थना करके वहाँ पर चन्दन तथा तुलसी के काष्ठों और पलाश तथा पीपल की लकड़ियों से चिता बनावे ॥२०॥ तब उस प्रेत को चिता में रख कर वहाँ दो पिण्डदान करे, जिनमें से एक पिण्ड चिता में दे तथा दूसरा उस शव को प्रेत संज्ञा से सम्बोधित करते हुए उसके हाथ में दे । मृतक के शव को चिता में रखने से लेकर [सपिण्डीकरण होने तक उसमें] प्रेतत्व रहता है अर्थात् इस अवधि में मृतक की प्रेत संज्ञा होती है ॥२१॥ किन्तु प्रेतकल्प

---

१. द्र० चितायां साधको नाम वदन्त्येके खगेश्वर । ३६ ॥ केऽपि तं प्रेतमेवाहुर्यथा कल्पविदस्तथा । तदा हि तत्र तत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते ॥३७॥ गरुडपुराण उ० ५।३६-३७ । (पण्डितपुस्तकालय संस्करण) । तु०—चितायां साधक इति सञ्ज्ञितौ प्रेत उच्यते ॥ गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४।५१ (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण) ।

अर्थात् अन्त्येष्टि-विद्या को जानने वाले कुछ विद्वानों के अनुसार मृतक को चिता में रखने पर उसकी साधक संज्ञा होती है। अतः चिता में रखने पर उसे साधक संज्ञा से सम्बोधित करके पिण्डदान करे और तदनन्तर उस मृतक को प्रेत संज्ञा से सम्बोधित करके दूसरा पिण्ड उसके हाथ में प्रदान करे ॥ २२ ॥ इस प्रकार पाँच पिण्ड प्रदान किये जाने पर ही वह शव क्रव्याद अग्नि की आहुति के योग्य हो पाता है। अन्यथा पूर्वोक्त भूत, पिशाच, राक्षस, यक्ष आदि उपघात कारक होते हैं अर्थात् वे उस शव को उच्छिष्ट करके क्रव्याद अग्नि में आहुति के योग्य नहीं

घाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥ २३ ॥ प्रेते दत्त्वा पञ्च पिण्डान् हुतमादाय तं तृणैः । अग्नि पुत्रस्तदा दद्यान्न भवेत्पञ्चकं यदि ॥ २४ ॥ पञ्चकेषु मृतो यस्तु न गतिं लभते नरः । दाह-स्तत्र न कर्तव्यः कृतेऽन्यमरणं भवेत् ॥ २५ ॥ आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं न दाहेऽर्हं दाहे च न शुभं भवेत् ॥ २६ ॥ गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतो हि

रहने देने ॥ २३ ॥ प्रेत को पाँच पिण्ड देने के पश्चात् 'लोमभ्यः स्वाहा०' इत्यादि अनुवाक से जिस क्रव्याद अग्नि में होम किया जा चुका हो उसे सरपत आदि के तिनकों से लेकर चिता में लगावे, किन्तु ऐसा तभी करे जब कि उस दिन पञ्चक न हो ॥ २४ ॥ पञ्चकों में जिस मनुष्य की मृत्यु होती है उसे सद्गति नहीं मिलती। पञ्चकों में मृत मनुष्य का दाह संस्कार नहीं करना चाहिए, यदि उसका दाह संस्कार कर दिया गया तो उसके अन्य चार बान्धवों की भी मृत्यु हो जाती है ॥२५॥ धनिष्ठा के उत्तरार्द्ध से लेकर रेवती पर्यन्त पाँच नक्षत्र पञ्चक

संज्ञक हैं । इनमें मृतक का दाह-संस्कार करने योग्य नहीं होता अर्थात् इन नक्षत्रों में मतक का दाह-संस्कार नहीं करना चाहिए और यदि किया गया तो उसका शुभ परिणाम नहीं होता ॥२६॥ जो इन नक्षत्रों में मरता है उसके घर में कोई न कोई हानि अवश्य होती है । उसके पुत्रों और गोत्र वाले (सुकुल्यों) को भी कोई न कोई विघ्न-बाधा

यः। पुत्राणां गोत्रिणां चापि कश्चिद्विघ्नः प्रजायते ॥२७॥ अथवा ऋक्षमध्ये हि दाहः स्याद्विधिपूर्वकः । तद्विधिं ते प्रवक्ष्यामि सर्वदोषप्रशान्तये ॥ २८ ॥ शवस्य निकटे तार्क्ष्य ! निक्षिपेत् पुत्तलांस्तदा । दर्भमयांश्च चतुर ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रितान् ॥ २९ ॥ तप्तहेमं प्रकर्तव्यं वहन्ति

झेलनी पड़ती है ॥ २७ ॥ अथवा इन पञ्चकों में भी मृतक का दाह-संस्कार एक विशेष विधि से किया जा सकता है । पञ्चकजन्य सभी दोषों की शान्ति हेतु मैं तुम्हें दाह-संस्कार की वह विशेष विधि बतलाता हूँ ॥ २८ ॥ हे गरुड ! दर्भ के चार पुतले बना कर उन्हें नक्षत्र-मन्त्रों[1] से अभिमन्त्रित करके शव के निकट रखे ॥२९॥ तब उन

---

१. पञ्चक-नक्षत्रों के वैदिक मन्त्र तत्तत् नक्षत्रों के स्वामियों के मन्त्र से अभिन्न हैं, (१) धनिष्ठा, (२) शतभिषा, (३) पूर्वाभाद्रपदा, (४) उत्तर ाभाद्रपदा और (५) रेवती इन पाँच नक्षत्रों के स्वामी क्रमशः (१) वसु, (२) वरुण, (३) अजचरण (अजैकपात्) (४) अहिर्बुध्न्य और (५) पूषा है और इनके वैदिक मन्त्र क्रमशः निम्नलिखित हैं—(१) ज्मया अत्र वसवो रन्त देव···· (ऋ० ७।३९।३); (२) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा दवमानस् ···(ऋ० १।२४।११); (३) उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् – (ऋ० ६।५०।१४); (४) कद् रुद्राय प्रचेतसे ······ (ऋ० १।४३।१); (५) पूषा गा अन्वेतु नः (ऋ० ४।८।५) ।

पुतलों में प्रतप्त सुवर्ण रखना चाहिए और सब नक्षत्रों के नाम मन्त्रों से होम करना चाहिए। पुनः 'प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।' (ऋ १०।१०३।१३, यजु० १७।४६) इत्यादि मन्त्र से उन नक्षत्र मन्त्रों को सम्पुटित करके होम करना चाहिए ॥ ३० ॥ तब उन पुतलों के साथ शवदाह करे सपिण्डीकरण-श्राद्ध के दिन पुत्र उस [पञ्चक-मृत्यु] की शान्ति विधिपूर्वक करे ॥ ३१ ॥ पञ्चक दोष की शान्ति हेतु वह तिलपूर्णपात्र, सोना, चाँदी,

ऋक्षनामभिः । "प्रेताजयत" मन्त्रेण पुनर्होमस्तु सम्पुटैः ॥ ३० ॥ ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सपिण्डनदिने कुर्यात्तस्य शान्तिविधिं सुतः ॥३१॥ तिलपात्रं हिरण्यं च रूप्यं रत्नं यथाक्रमम् । घृतपूर्णं कांस्यपात्रं दद्याद्दोषप्रशान्तये ॥३२॥ एवं शान्तिविधानं तु कृत्वा

रत्न और घृत से पूर्ण काँसे के पात्र का दान करे ॥३२॥ जो मनुष्य इस प्रकार पञ्चक शान्ति के विधान का पालन करके शवदाह करता है उसे पञ्चकजन्य कोई विघ्न-बाधा नहीं झेलनी पड़ती और [पञ्चकों में मृत] प्रेत भी

---

१. अर्थसङ्गति की दृष्टि से ३० वें श्लोक का पाठ ठीक नहीं है। कुछ लेखकों के अनुसार 'तप्तहेमप्रकर्तव्यं' का तात्पर्य है कि सोना तपाना चाहिए और उसी सोने में शेष चार नक्षत्रों के नाम अङ्कित करने चाहिए। किन्तु इस सुवर्ण का क्या किया जायेगा—यह स्पष्ट नहीं होता।

शुद्धिमयूख तथा निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों में उद्धृत ब्रह्मपुराण के एक वचन के अनुसार पञ्चकों में मृत मनुष्य के साथ दाह हेतु दर्भ की ही पाँच प्रतिमाएँ (पुतले) बना कर उन्हें ऊन के धागे से लपेट कर और जौ के आटे से उनका लेपन करके उनमें क्रमशः (१) प्रेतवाह, (२) प्रेतसख, (३) प्रेतप, (४) प्रेतभूमिप और (५) प्रेतहर्ता-इन पाँच नाम-मन्त्रों से आवाहन-पूजन करके उनमें से प्रथम को प्रेत के शिर में दूसरे को नेत्रों में, तीसरे को वामकुक्षि में, चौथे को नाभि में और पाँचवें को पैरों में रख कर घृतहोम के पश्चात् शवदाह करना चाहिए। पद्धतियों में भी इस विधि का अनुसरण किया गया है।

सद्गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ पञ्चकों में मृत पुरुष का दाह-संस्कार इसी प्रकार करे। पञ्चकों से भिन्न नक्षत्रों में मृत्यु होने पर केवल मृतक के ही शव का दाह करे। यदि मृतक की पत्नी सती हो और पति की देह के साथ अग्नि-प्रवेश करना चाहे तो मृतक के शव का दाह उसी के साथ करे ॥ ३४ ॥ यदि पति के प्रिय और हितपूर्ण कर्म में संलग्न पतिव्रता नारी उसी के साथ परलोक सिधारना चाहती हो तो वह पति की मृत्यु होने पर तत्काल

दाहं करोति यः। न तस्य विघ्नो जायेत प्रेता यान्ति परां गतिम् ॥ ३३ ॥ एवं पञ्चकदाहः स्यात्तद्विना केवलं दहेत्। सती यदि भवेत्पत्नी तथा सह विनिर्दहेत्[1] ॥ ३४ ॥ पतिव्रता[2] यदा नारी भर्तुः प्रियहिते रता। इच्छेत्सहैव गमनं तदा स्नानं समाचरेत् ॥३५॥ कुङ्कुमाञ्जनसद्वस्त्रभूषणैर्भूषयेत्[3] तनुम्। दानं दद्याद् द्विजातिभ्यो बन्धुवर्गेभ्य एव च ॥३६॥ गुरुं

स्नान करे ॥३५॥ तब वह कुङ्कुम, अञ्जन, सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत करे और ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवों को दान दे ॥ ३६ ॥ तब गुरुजनों को नमस्कार करके घर से बाहर निकले और देवालय में

१. सती यदि भवेत् पत्नी इत्यादि पाठ का अनुमोदन प्राचीन पुराणों के किसी पाठ से नहीं होता। यह पाठ निश्चयमेव अनुमरण करने वाली साध्वी नारी के अर्थ में 'सती' शब्द के रूढ़ हो जाने के पश्चात् कल्पित किया गया है। गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख० ४।८९-९०) में इस प्रसंग में यह पाठ है—'योषित् पतिव्रता या स्याद् भर्तारं यानुगच्छति। प्रयोगपूर्वं भर्तारं नमस्कृत्यारुहेच्चितिम् ॥'

२. अर्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा। मृते म्रियेत या पत्यौ साध्वी ज्ञेया पतिव्रता ॥ गरुड० ध० का० प्रे० ख० ४।९८

३. पाठान्तर—भूषितां।

जाकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को प्रणाम करे ॥ ३७ ॥ वह देवालय में अपने आभूषणों को समर्पित करके और वहाँ से श्रीफल ग्रहण करके लज्जा और मोह का त्याग कर श्मशान भूमि को प्रस्थान करे ॥ ३८ ॥ श्मशान में पहुँच कर सूर्य को नमस्कार करके चिता की परिक्रमा करके उस पर बिछे पुष्पों की शय्या पर आरूढ होकर पति को अपनी गोद में लिटावे ॥ ३९ ॥ तब सखियों को श्रीफल देकर चिता में आग लगाने की आज्ञा दे और

नमस्कृत्य तदा निर्गच्छेन्मन्दिराद्बहिः । ततो देवालयं गत्वा भक्त्या तं प्रणमेद्धरिम् ॥३७॥
समर्प्याभरणं तत्र श्रीफलं परिगृह्य च । लज्जां मोहं परित्यज्य श्मशानभवनं व्रजेत् ॥३८॥
तत्र सूर्यं नमस्कृत्य परिक्रम्य चितां तदा । पुष्पशय्यां तदाऽऽरोहेन्निजाङ्के स्वापयेत्पतिम् ॥३९॥
सखिभ्यः श्रीफलं दद्याद्दाहमाज्ञापयेत्ततः । गङ्गास्नानसमं ज्ञात्वा शरीरं परिदाहयेत् ॥४०॥
न दहेद् गर्भिणी नारी शरीरं पतिना सह । जनयित्वा प्रसूतिं च बालं पोष्य सती भवेत् ॥४१॥

गङ्गाजल में स्नान के समान मान कर अपने शरीर को जलावे ॥ ४० ॥ गर्भिणी नारी अपने शरीर को मृत पति के शरीर के साथ अग्निसात् न करे ।[1] वह सन्तानोत्पादन करके उसका पालन-पोषण करने के पश्चात् सती होवे ॥ ४१ ॥ यदि नारी मृत पति के शरीर के साथ अपना भी शरीर-दाह करती है तो अग्नि केवल उसके शरीर को

---

१. इस विषय में और्व ऋषि का यह वचन उल्लेखनीय है—बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे ॥ नारद पुराण पू० ७।५२ ॥

दग्ध करता है, उसकी आत्मा को कोई पीड़ा नहीं पहुँचाता ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि में धौंके जाने पर धातुओं का मल जल जाता है उसी प्रकार पति के साथ जलने वाली नारी अमृत के समान अग्नि में अपने पापों को दग्ध कर देती है ॥ ४३ ॥ जैसे अग्नि दिव्य करते समय सत्यपरायण, धर्मात्मा और शुद्ध (निष्पाप) अभिशस्त तपे हुए लोहे के टुकड़े या तप्तकाल को हाथ में धारण करने पर भी नहीं जलता उसी प्रकार पति की देह से संयुक्त

नारी भर्तारमासाद्य शरीरं दहते यदि । अग्निर्दहति गात्राणि नैवात्मानं प्रपीडयेत् ॥४२॥
दह्यते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलः । तथा नारी दहेत्पापं हुताशे ह्यमृतोपमे ॥४३॥
दिव्यादौ सत्ययुक्तश्च शुद्धो धर्मयुतो नरः । यथा न दह्यते तप्तलोहपिण्डेन कर्हिचित् ॥४४॥
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन । अन्तरात्मात्मना भर्तुर्मृतस्यैकत्वमाप्नुयात् ॥४५॥
यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्री शरीरात्कथञ्चन ॥४६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा । कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्‌गता ॥४७॥

वह नारी भी नहीं जलती अर्थात् उसको जलने का कष्ट नहीं होता और उसका आत्मा मृत पति के आत्मा के साथ मिल कर एक हो जाता है ॥४४–४५॥ जब तक स्त्री मृत पति के शरीर के साथ अपने शरीर को भी अग्नि में नहीं जला डालती तब तक वह स्त्री-शरीर से कथञ्चिदपि मुक्त नहीं होती ॥ ४६ ॥ अतः वह पूरे यत्न से मनसा, वाचा और कर्मणा अपने पति की सेवा करे और पति की जीवितावस्था में ही नहीं उसके निधनोपरान्त भी

उसका अनुगमन करे ॥४७॥ पति की मृत्यु हो जाने पर जो नारी अग्निप्रवेश करती है वह स्वर्गलोक में अरुन्धती के समान सम्मानित होकर विराजमान होती है ॥ ४८ ॥ वहाँ पर वह पतिपरायण नारी अप्सराओं की स्तुतिगान का भाजन होकर चौदह इन्द्रों के काल (१४ मन्वन्तरों) तक पति के साथ रमण करती है ॥ ४९ ॥ मृत पति का अनुगमन करने वाली नारी अपने माता-पिता तथा पति तीनों के कुलों को पवित्र कर देती है ॥ ५० ॥ मनुष्य

मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम्। साऽरुन्धतीसमा भूत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥४८॥
तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः। रमते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४९॥
मातृकं पैतृकं चैव यत्र सा च प्रदीयते। कुलत्रयं पुनात्यत्र भर्तारं याऽनुगच्छति ॥५०॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे। तावत्कालं वसेत्स्वर्गे पतिना सह मोदते ॥५१॥
विमाने सूर्यसंकाशे क्रीडते रमणेन सा। यावदादित्यचन्द्रौ च भर्तृलोके चिरं वसेत् ॥५२॥
पुनश्चिरायुः सा भूत्वा जायते विमले कुले। पतिव्रता तु या नारी तमेव लभते पतिम् ॥५३॥

के शरीर में प्रायः साढ़े तीन करोड़ या जितनी संख्या में भी रोम होते हैं उतनी ही संख्या के वर्षों तक वह स्वर्ग में पति के साथ आनन्द से रमण करती है ॥५१॥ वह सूर्य के समान देदीप्यमान विमान में पति के साथ क्रीडा करती है और जब तक सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं तब तक पति के सालोक्य में निवास करती है ॥ ५२ ॥ वह पतिव्रता नारी पुनः मनुष्य लोक में लम्बी आयु लेकर शुद्ध कुल में उत्पन्न होती है और उसी पूर्वजन्म के पति को

ही इस जन्म में भी पतिरूप में प्राप्त करती है ।। ५३ ।। ऐसे दिव्य सुख के अवसर को जो मूढ स्त्री अग्नि-दाह के क्षणिक दुःख के भय से त्याग देती है वह आजन्म विरहाग्नि में जलती रहती है ।।५४।। अतः वह पति को शिव स्वरूप समझकर उसी के साथ अपना शरीर भी अग्निसात् कर डाले । हे गरुड ! यदि पत्नी सती नहीं होती तो केवल पति के ही शव का दाह करे ।। ५५ ।। शव के आधा जलने पर या पूरा जल जाने पर उसके मस्तक को

या क्षणं दाहदुःखेन सुखमेतादृशं त्यजेत् । सा मूढा जन्मपर्यन्तं दह्यते विरहाग्निना ।। ५४।।
तस्मात्पतिं शिवं ज्ञात्वा सह तेन दहेत्तनुम् । यदि न स्यात्सती तार्क्ष्य ! तमेव प्रदहेत्तदा ।। ५५।।
अर्धे दग्धेऽथवा पूर्णे स्फोटयेत्तस्य मस्तकम् । गृहस्थानां तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च ।।५६।।
प्राप्तये पितृलोकानां भित्त्वा तद्ब्रह्मरन्ध्रकम् । आज्याहुतिं ततो दद्यान्मन्त्रेणानेन तत्सुतः ।।५७।।
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु

फोड़े । गृहस्थों के मस्तक को काठ से और संन्यासियों के मस्तक को श्रीफल से फोड़ना चाहिए ।। ५६ ।। इस प्रकार उसका पुत्र उसकी पितृलोक की प्राप्ति हेतु उसके ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके इस [निम्नलिखित आशय वाले] मन्त्र से आज्य की आहुति दे ।। ५७ ।। हे अग्नि ! तुम [अक्षर पुरुष वासुदेव-विष्णु से उत्पन्न हो और] इस पुरुष के द्वारा अग्न्याधान काल में उत्पन्न किये गये हो और अब पुनः यह जीव तुम्हारे तेजोंऽश से दिव्य शरीर धारण करे । यह जीव सूक्ष्म शरीर से स्वर्ग में जावे और इसका प्राणहीन स्थूल शरीर जल कर स्वाहा हो

जाय ।। ५८ ।। इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्र से अग्नि में तिलमिश्रित आज्य की आहुति देकर जोर से रोना चाहिए। इससे उस मृतक को सुख मिलता है ।। ५९ ।। शवदाह के पश्चात् पहले स्त्रियों को और तत्पश्चात् पुत्रों आदि को स्नान करना चाहिए। तब उस प्रेत के नाम और गोत्र के उच्चारण पूर्वक उसे तिलाञ्जलि देनी चाहिए ।।६०।। तब

पावक[1]।।५८।। एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्। रोदितव्यं ततो गाढं येन तस्य सुखं भवेत्।।५९।। दाहादनन्तरं कार्यं स्त्रीभिः स्नानं ततः सुतैः। तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रोपकल्पितम्।।६०।। प्राशयेन्निम्बपत्राणि मृतकस्य गुणान् वदेत्। स्त्रीजनोऽग्रे गृहं गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः।। ६१ ।। गृहे स्नानं पुनः कृत्वा गोग्रासं च प्रदापयेत्। पत्रावल्यां च भुञ्जीया-

घर लौटते समय नीम की पत्तियों को चबाना चाहिए और मृतक के गुणों का वर्णन करना चाहिए। घर के लिए आगे स्त्रियाँ चलें और उनके पीछे पुरुष वर्ग जावे ।। ६१ ।। घर में जाकर पुनः स्नान करके गोग्रास प्रदान करे।

---

१. पाठान्तर—पावकः। सारोद्धार कर्ता आचार्य ने गरुडपुराण उत्तरार्द्ध (प्रेतकल्प) ४।४८ (पण्डितपुस्तकालय संस्करण) में प्राप्त पाठ 'अस्मात् ···स्वाहा ज्वलति पावकः' के स्थान पर 'ज्वलतु पावकः' छोड़ कर यह श्लोक संग्रहीत किया है। शुक्लयजुर्वेद (३५।२२) में अस्मात् त्वमधिजातोऽसि असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ।।' यह मन्त्र अग्नि को सम्बोधित करके कहा गया है (द्र० शुक्लयजुर्वेद ३५।२२ वर उवट और महीधर का भाष्य)। अतः भावार्थ की दृष्टि से उक्त श्लोक में 'पावक' शब्द के प्रथमान्त रूप की अपेक्षा सम्बुद्ध्यन्त रूप ही समुचित लगता है। कात्यायन स्मृति २१।१३ (स्मृतिसन्दर्भ ३, पृ० १३७५) में यह श्लोक इस रूप में दिया गया है— अस्मात् त्वमधिजातोऽसि···असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ।।' जब कि गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४।६६–६७ (वेङ्कटेश्वरप्रेस संस्करण) में 'अस्मात् ··· स्वाहेत्युक्त्वा तु नामतः' पाठ है। अतः प्रस्तुत प्रसंग में 'ज्वलतु पावक !' पाठ ही स्वीकार्य है ।।

पत्तल में भोजन करे किन्तु घर में पकाया हुआ अन्न न खावे ॥ ६२ ॥ तब मृतक के स्थान को लीप कर वहाँ पर दक्षिणाभिमुख दीपक जलावे। यह दीपक द्वादशाह पर्यन्त रात-दिन जलते रहना चाहिए ॥ ६३ ॥ हे गरुड ! शवदाह के दिन से लेकर तीन दिनों तक सूर्यास्त के पश्चात् मिट्टी से बने हुए पात्र में दूध और जल भर कर श्मशान में या चौराहे पर रखे ॥ ६४ ॥ दूध और जल से भरे हुए कच्ची मिट्टी के पात्र को रस्सियों से परस्पर

दुगृहान्नं नैव भक्षयेत् ॥ ६२ ॥ मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः। द्वादशाहकपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम् ॥ ६३ ॥ सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य ! श्मशाने वा चतुष्पथे। दुग्धं च मृण्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम् ॥ ६४ ॥ अपक्वमृण्मयं पात्रं क्षीरनीरप्रपूरितम्। काष्ठत्रयं गुणैर्बद्धं धृत्वा मन्त्रं पठेदिमम् ॥ ६५ ॥ श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः। इदं नीरमिदं क्षीरमत्र स्नाहि, इदं[1] पिब ॥६६॥ चतुर्थे सञ्चयः कार्यः साग्निकैश्च निरग्निकैः।

बँधी हुई तीन लकड़ियों के ऊपर रख कर इस आशय के मन्त्र को पढ़े ॥ ६५ ॥ तुम श्मशान की अग्नि से दग्ध हुए हो और बान्धवों द्वारा परित्यक्त हो चुके हो। तुम्हारे लिए यह जल और यह दूध रख दिया गया है। तुम इसमें स्नान करो और इसका पान करो ॥६६॥ जिन्होंने अग्न्याधान किया हो और जिन्होंने अग्न्याधान न किया

१—पाठान्तर —'मितं पिव'। निर्णयसागरसंस्करण में स्वीकृत 'मितं पिव' पाठ अर्थ की दृष्टि से सुसंगत नहीं है। द्र०—जलं त्रिदिवमाकाशे स्थाप्यं क्षीरञ्च मृन्मये। अत्र स्नाहि पिबात्रेति मन्त्रेणानेन काश्यप ॥— गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रे० ख० ५।१५। याज्ञवल्क्य स्मृ० ३।१७ की

हो वे आहिताग्नि के तथा अनाहिताग्नि के भी शवदाह के चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करें।[1] यदि निषिद्ध वार या तिथि[2] न पड़े तो तीसरे या दूसरे दिन भी अस्थिसञ्चयन किया जा सकता है[3] ॥ ६७ ॥ अस्थिचयन हेतु पुत्र

तृतीयेऽह्नि द्वितीये वा कर्तव्यश्चाविरोधतः ॥ ६७ ॥ गत्वा श्मशानभूमिं च स्नानं कृत्वा शुचिर्भवेत्। ऊर्णासूत्रं वेष्टयित्वा पवित्रीं परिधाय च ६८ ॥ दद्यात् श्मशानवासिभ्यस्ततो

श्मशान में जाकर स्नान करके शुद्ध होकर हाथ में ऊन का सूत्र (ऊनी धागे का डोरा) लपेट कर (बाँधकर) और कुशा की पवित्री धारण करके श्मशान में रहने वाले भूतादि को माष (उड़द) की बलि दे और 'यमाय त्वा०'

मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा है कि प्रेत के लिए जल और दूध पृथक्-पृथक् पात्रों में रखना चाहिए और 'प्रेत अत्र स्नाहि' कह कर जल तथा 'पिब चेदम्' कह कर दूध रखना चाहिए।

१. आहिताग्नेरनाहिताग्नेर्वा दाहात् चतुर्थेऽहनि अस्थिसञ्चयनं कुर्युः। विष्णुस्मृति १९।१० पर नन्दपण्डितकृत वैजयन्ती।

२. अस्थि-सञ्चयन के लिए निषिद्ध तिथि, वार और नक्षत्र के विवरण हेतु द्रष्टव्य—'भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मेषु वर्जयेत्। वर्जयेदेकपादृक्षे द्विपादृक्षेऽस्थिसञ्चयम् ॥ प्रदातृजन्मननक्षत्रे त्रिपादृक्षे विशेषतः ॥ इति ॥ पराशर माधव, आचारकाण्ड पृ० ६४६ में उद्धृत यम के वचन। अस्थिचयन के लिए वर्जित नक्षत्रों, तिथियों और वारों का विस्तृत विवरण (पराशरमाधव, आचारकाण्ड पृ० ६४६ में उद्धृत) वृद्धमनु के वचनों में प्राप्त होता है।

३. विष्णुपुराण ३।१३।१४ तथा विष्णुस्मृति १९।१० में चतुर्थ दिवस में अस्थिसञ्चयन विहित है। गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रे० ख० ५।१५ तथा संवर्त (पराशर माधव, आचारकाण्ड, पृ० ६४५ में उद्धृत) के अनुसार प्रथम, तृतीय, सप्तम या नवें दिन अस्थि-सञ्चयन करना चाहिए—प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद् गोत्रजैः नरैः ॥ अन्त्येष्टिपद्धतियों में 'अपरे द्युस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा' के वचन-प्रामाण्य से एवं लोकाचार में भी शवदाह के तत्काल पश्चात् अस्थि-सञ्चयन किया जाता है।

इत्यादि मन्त्र[1] को पढ़ते हुए तीन बार चिता के स्थान की [वामावर्त] परिक्रमा करे ॥ ६८–६९ ॥ हे गरुड ! तब चिता के स्थान पर दूध छिड़कने के बाद जल छिड़के और तत्पश्चात् अस्थियों को उठावे ॥७०॥ उन अस्थियों को लपाश के पत्तों में रख कर पहले दूध से और तब जल से धोवे और तब एक मिट्टी के पात्र में रख कर यथा-

माष[2]बलिं सुतः । यमाय त्वेति मन्त्रेण तिस्रः कुर्यात्परिक्रमाः ॥६९॥ ततो दुग्धेन चाभ्युक्ष्य चितास्थानं खगेश्वर । जलेन सेचयेत्पश्चादुद्धरेदस्थिवृन्दकम् ॥ ७० ॥ कृत्वा पलाशपत्रेषु क्षालयेद्दुग्धवारिभिः । संस्थाप्य मृण्मये पात्रे श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥७१॥ त्रिकोणं स्थण्डिलं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम् । दक्षिणाभिमुखो दिक्षु दद्यात्पिण्डत्रयं त्रिषु ॥ ७२ ॥ पुञ्जीकृत्य चिताभस्म तत्र धृत्वा त्रिपादुकाम् । स्थापयेत्तत्र सजलमनाच्छाद्य मुखं घटम् ॥७३॥ तत-

विधि श्राद्ध अर्थात् पिण्डदान करे ॥ ७१ ॥ इसके लिए तिकोना स्थण्डिल बना कर उसे गोबर से लीपे और तब दक्षिण को मुख करके [उस त्रिकोण स्थण्डिल की] तीन दिशाओं में तीन पिण्ड[3] प्रदान करे ॥ ७२ ॥ तब चिता की भस्म को एकत्रित करके उसके ऊपर तिपाई को रख कर उसके ऊपर जल से भरा हुआ और अनाच्छा-

---

१. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे । शुक्ल यजु० ३८।९ । २. पाठान्तर—'मांस' ।

३. ब्रह्मपुराण के एक वचन में श्मशानस्थ क्रव्याद देवताओं को बलि-प्रदान करने के पश्चात् तीन पिण्ड प्रदान करने का विधान है— एवं दत्वा बलिं चैव दद्यात् पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम् । तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ निर्णयसिन्धु पृ० ४१२ में उद्धृत ।

दित (बिना ढके हुए) मुख वाला घट रखे ॥७३॥ तब चावल पका कर उसमें दही, घृत और गुड़ आदि मीठा मिला कर उसकी बलि को जल-सहित यथाविधि प्रेत को प्रदान करे ॥ ७४ ॥ हे गरुड ! तब उत्तर की ओर पन्द्रह पग चल कर एक गढ्ढा खोद कर उसमें अस्थिपात्र रखे ॥ ७५ ॥ तब उसके ऊपर अग्निदाह की पीडा को दूर करने वाला पिण्ड दे और तदनन्तर उस अस्थिपात्र को गढ्ढे में से निकाल कर उसे लेकर जलाशय में

स्तण्डुलपाकेन दधिघृतसमन्वितम् । बलिं प्रेताय सजलं दद्यान्मिष्टं यथाविधि ॥७४॥ पदानि
दश पञ्चैव चोत्तरस्यां दिशि व्रजेत् । गर्तं विधाय तत्रास्थिपात्रं संस्थापयेत्खग ॥ ७५ ॥
तस्योपरि ततो दद्यात्पिण्डं दाहार्तिनाशकम् । गर्तादुद्धृत्य तत्पात्रं नीत्वागच्छेज्जलाशयम् ॥७६
तत्र प्रक्षालयेद्दुग्धजलादस्थि पुनः पुनः । चर्चयेच्चन्दनेनाथ कुङ्कुमेन विशेषतः ॥७७॥
धृत्वा सम्पुटके तानि कृत्वा च हृदि मस्तके । परिक्रम्य नमस्कृत्य गङ्गामध्ये विनिक्षिपेत् ॥७८॥
अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥७९॥

जावे ॥ ७६ ॥ वहाँ पर दूध और जल से उन अस्थियों को अनेक बार प्रक्षालित करे और तब उनको चन्दन और विशेषतः कुङ्कुम से चर्चित करे ॥ ७७ ॥ तब उन्हें एक दोने में रख कर हृदय और मस्तक से लगा कर उनकी परिक्रमा करके उन्हें ले जाकर नमस्कार करके गङ्गा के मध्य में विसर्जित करे ॥ ७८ ॥ जिसकी अस्थियाँ दश दिन के अन्दर गङ्गाजल में विसर्जित हो जाती हैं, उसका ब्रह्मलोक से भूलोक पुनरागमन कदापि नहीं होता

।। ७९ ।। जितने दिनों तक मनुष्य की अस्थि गङ्गाजल में रहती है उतने सहस्र वर्षों तक वह स्वर्गलोक में सम्मान पूर्वक विराजमान रहता है ।। ८० ।। गङ्गाजल की तरङ्गों का स्पर्श करके आया हुआ पवन जब मृतक का स्पर्श कर देता है तो उसका समस्त पातक सद्यः नष्ट हो जाता है ।। ८१ ।। महाराज भगीरथ अति कठोर तपश्चर्या से गङ्गादेवी की आराधना करके उन्हें अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु ब्रह्मलोक से भूलोक में लाये थे ।। ८२ ।। राजा

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।। ८० ।।
गङ्गाजलोर्मि संस्पृश्य मृतकं पवनो यदा । स्पृशते पातकं तस्य सद्य एव विनश्यति ।।८१।।
आराध्य तपसोग्रेण गङ्गादेवीं भगीरथः । उद्धारार्थं पूर्वजानां आनयद् ब्रह्मलोकतः ।।८२।।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं गङ्गायाः पावनं यशः । या पुत्रान्सगरस्यैतान्भस्माख्याननयद्दिवम् ।।८३।।
पूर्वे वयसि पापानि ये कृत्वा मानवाः मृताः । गङ्गायामस्थिपतनात्स्वर्गलोकं प्रयान्ति ते ।।८४।।
कश्चिद्व्याधो महारण्ये सर्वप्राणिविहिंसकः । सिंहेन निहतो यावत्प्रयाति नरकालयम् ।।८५।।

सगर के भस्मीभूत पुत्रों को स्वर्ग में पहुँचाने वाली गङ्गा का पवित्र यश तीनों लोकों में विश्रुत है ।। ८३ ।। जो मनुष्य अपनी आरम्भिक अवस्था में पाप करते हैं उनके मरने पर यदि उनकी अस्थियाँ गङ्गा में पड़ जाती हैं तो वे भी स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं ।। ८४ ।। नाना प्राणियों (पशु-पक्षियों) की हिंसा करने वाले किसी व्याध को घनघोर वन में सिंह ने मार दिया था । अपने पापकर्म के फलस्वरूप जब वह नरक में गिरने लगा था तो तभी

उसके शव की अस्थि (गीध के मुख से) गङ्गा में गिर पड़ी थी और इसके फलस्वरूप वह दिव्य विमान में आरूढ होकर देवलोक को गया था[१] ॥ ८५–८६ ॥ अतः अच्छा पुत्र स्वयं ही पिता की अस्थियों को गङ्गा में विसर्जित करे। अस्थिसञ्चयन के पश्चात् वह दशगात्र करे ॥८७॥ यदि किसी की मृत्यु विदेश में, वन में या चोरों के आतङ्क से हुई हो और उसका शव नहीं प्राप्त हो सका हो तो उसके निधन का समाचार जिस दिन सुने उसी दिन दर्भ का

तावत्कालेन तस्यास्थि गङ्गायां पतितं तदा। दिव्यं विमानमारुह्य स गतो देवमन्दिरम् ॥८६॥
अतः स्वयं हि सत्पुत्रो गङ्गायामस्थि पातयेत्। अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दशगात्रं समाचरेत् ॥८७॥
अथ कश्चिद्विदेशे वा वने चौरभये मृतः। न लब्धस्तस्य देहश्चेच्छृणुयाद्यद्दिने तदा ॥८८॥
दर्भपुत्तलकं कृत्वा पूर्ववत्केवलं दहेत्। तस्य भस्म समादाय गङ्गातोये विनिक्षिपेत् ॥८९॥
दशगात्रादिकं कर्म तद्दिनादेव कारयेत्। स एव दिवसो ग्राह्यः श्राद्धे सांवत्सरादिके ॥९०॥
पूर्णे गर्भे मृता नारी विदार्य जठरं तदा। बालं निष्कास्य निक्षिप्य भूमौ तामेव दाहयेत् ॥९१॥

पुतला बना कर पूर्वोक्त विधानानुसार केवल उसी का दाह करे और उसकी भस्म को ले जाकर गङ्गाजल में डाले ॥ ८८–८९ ॥ और उसी दिन से उसका दशगात्रादि कर्म करे और उसके वार्षिक श्राद्ध आदि के लिए भी उसी दिन पड़ने वाली तिथि को अपनावे ॥ ९० ॥ यदि गर्भिणी नारी गर्भ के पूर्णतः विकसित हो जाने पर मर जाय

१. इस तरह की कथाएँ पुराणों में अन्यत्र भी प्राप्त होती हैं। द्र० स्कन्द ४।२७।३६-८३।

तो उसके पेट को चीर कर गर्भस्थ शिशु को बाहर निकाल ले। वह शिशु यदि मर गया हो तो उसे भूमि में गाड़ दे और केवल उस मृत स्त्री का दाह-संस्कार करे ॥ ९१ ॥ गङ्गा तट या उसके समीपवर्ती स्थान में मृत शिशु को गङ्गा में ही डाल दे किन्तु अन्य स्थानों में मृत सत्ताईस महीने तक के बालक को भूमि में गाड़ दे ॥ ९२ ॥ किन्तु उससे अधिक वय के बालक का दाह-संस्कार करे और उसकी अस्थियाँ गङ्गा में विसर्जित करे तथा जल से

गङ्गातीरे मृतं बालं गङ्गायामेव पातयेत्। अन्यदेशे क्षिपेद्भूमौ सप्तविंशतिमासजम् ॥९२॥
अतः परं दहेत्तस्य गङ्गायामस्थि निक्षिपेत्। जलकुम्भश्च दातव्यो बालानामेव भोजनम् ॥९३॥
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ। घटं च पायसं भोज्यं दद्याद्बालविपत्तिषु ॥९४॥
कुमारे च मृते बालान् कुमारानेव भोजयेत्। सबालान्भोजयेद्विप्रान्पौगण्डे सव्रते मृते ॥९५॥

भरा हुआ घट (घड़ा) प्रदान करे और केवल बालकों को ही भोजन करावे ॥ ९३ ॥ गर्भ के नष्ट हो जाने पर अर्थात् गर्भ में ही भ्रूण के नष्ट हो जाने पर उसकी कोई क्रिया नहीं की जाती। शिशु[१] (दाँत निकलने के पूर्व की अवस्था के बच्चे) की मृत्यु होने पर उसे गङ्गा में छोड़ने या भूमि में गाड़ने के पश्चात् उसके निमित्त दूध प्रदान करे। बाल-अवथा (अर्थात् चूडाकरण के पूर्व या तीन वर्ष तक) के बच्चे के मरने पर [उसके दाह संस्कार के पश्चात्] जलपूर्ण घट और खीर का भोजन भी प्रदान करे ॥ ९४ ॥ कुमारावस्था [अर्थात् तीन वर्ष से लेकर

१. शिशुरादन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखम्। कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥ गरुडपुराण, ध, का, प्रे० ख०२५।८

पाँच वर्ष तक] के वच्चे के निधन पर कुमारावस्था के बालकों को ही भोजन करावे । पौगण्ड[1] अवस्था [अर्थात् पाँच वर्ष से लेकर दश वर्ष तक] के बच्चे की मृत्यु होने पर उसी की अवस्था के बालकों को भोजन करावे और व्रतबन्ध (उपनयन) हो जाने के पश्चात् यदि किसी पौगण्ड अवस्था के बालक की मृत्यु होती है तो उसकी अवस्था के बालकों के साथ ही विप्रों को भी भोजन करावे ॥ ९५ ॥ पाँच वर्ष से ऊपर की अवस्था के बालक

मृतश्च पञ्चमादूर्ध्वमव्रतः सव्रतोऽपि वा । पायसेन गुडेनापि पिण्डान्दद्याद्दश क्रमात् ॥९६॥
एकादशं द्वादशं च वृषोत्सर्गविधिं विना । महादानविहीनं च पौगण्डे कृत्यमाचरेत् ॥९७॥
जीवमाने च पितरि न पौगण्डे सपिण्डनम् । अतस्तस्य द्वादशाहन्येकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥९८॥

का चाहे व्रतबन्ध (उपनयन) हो चुका हो अथवा नहीं, उसकी मृत्यु होने पर उसे पायस (खीर) और गुड़ से बने दश पिण्ड प्रदान करे ॥९६॥ पौगण्ड अवस्था के बालक की मृत्यु होने पर वृषोत्सर्ग तथा महादानों के अतिरिक्त एकादशाह और द्वादशाह के सभी कृत्य करे ॥९७॥ पौगण्ड अवस्था के जिस बालक का पिता जीवित हो उसकी मृत्यु होने पर उसका सपिण्डीकरण नहीं होता । अतः बारहवें दिन उसका केवल एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करे ॥९८॥

---

१. आपञ्चवर्षात् कौमारः पौगण्डो दशहायनः । गरुडपुराण सारोद्धार के निर्णयसागर संस्करण की टीका में उद्धृत ।
तु०–आपञ्चवर्षात् कौमारः पोगण्डो नवहायनः ॥ किशोरः षोडशाब्दः स्यात् ततो यौवनमादिशेत् ॥ गरुडपुराण, ध० का०, प्रे० ख० २५।१०।११ ॥ द्र०—वाल आषोडशाद् वर्षात् पौगण्डश्चेति शब्द्यते । नारदस्मृति (ऋणादानसंज्ञक विवादपद श्लोक ३१)

स्त्रियों और शूद्रों के लिए केवल विवाह ही व्रतबन्ध (उपनयन) स्थानीय संस्कार है । व्रतबन्ध (उपनयन) के पूर्व मरने वाले सभी वर्णों के लिए समान रूप से उनकी आयु-विशेष के अनुसार विहित क्रिया की जाती है ।।९९।। जिसकी भले-बुरे कर्मों में संलग्नता स्वल्प (कम) रही हो और इन्द्रिय-विषयों में आसक्ति भी कम रही हो और जो स्वल्प अवस्था तथा स्वल्प (छोटी) देह वाला हो उसकी मृत्यु होने पर उसकी क्रिया भी स्वल्प ही अभीष्ट

स्त्रीशूद्राणां विवाहस्तु व्रतस्थाने प्रकीर्तितः । व्रतात्प्राक्सर्ववर्णानां वयस्तुल्या क्रिया भवेत् ।।९९।। स्वल्पात्कर्मप्रसंगाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात् । स्वल्पे वयसि देहे च क्रियां स्वल्पामपीच्छति ।।१००।। किशोरे तरुणे कुर्याच्छय्यावृषमखादिकम् । पददानं महादानं गोदानमपि दापयेत् ।।१०१।। यतीनां चैव सर्वेषां न दाहो नोदकक्रिया । दशगात्रादिकं तेषां न कर्त्तव्यं सुतादिभिः ।।१०२।। दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । त्रिदण्डग्रहणात्तेषां प्रेतत्वं नैव

होती है ।। १०० ।। किशोर अवस्था अर्थात् पौगण्ड अवस्था के ऊपर सोलह वर्ष तक की अवस्था और तरुण अवस्था के मनुष्य की मृत्यु होने पर शय्यादान तथा वृषोत्सर्ग आदि सभी कृत्य करे और पददान, महादान एवं गोदान भी करे ।। १०१ ।। सभी प्रकार के संन्यासियों के निधन पर उनके पुत्रों आदि को न तो उनका दाह-संस्कार करना चाहिए, न उन्हें जलाञ्जलि देनी चाहिए और न उनकी दशगात्रादि क्रियाएँ ही करनी चाहिए ।। १०२ ।। दण्डग्रहण (अर्थात् संन्यास ग्रहण) कर लेने मात्र से नर ही नारायण स्वरूप हो जाता

है। त्रिदण्ड ग्रहण करने पर संन्यासी मृत्यु के पश्चात् प्रेत नहीं होते ॥ १०३ ॥ ज्ञानी-संन्यासी अपने आत्म-स्वरूप का अनुभव (अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि प्रकारक ज्ञान से ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव) कर लेने पर सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। अतः वे मृत्यु के पश्चात् अपने को पिण्ड दिये जाने की आकांक्षा नहीं रखते ॥१०४॥

जायते ॥१०३॥ ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ताः स्वरूपानुभवेन हि । अंतस्ते तु प्रदत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः ॥१०४॥ तस्मात्पिण्डादिकं तेषां न तु नोदकमाचरेत् । तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं पितृभक्त्या समाचरेत् ॥१०५॥ हंसं परमहंसं च कुटीचकबहूदकौ । एतान् संन्यासिनस्तार्क्ष्य पृथिव्यां स्थापयेन्मृतान् ॥१०६॥ गङ्गादीनामभावे हि पृथिव्यां स्थापनं स्मृतम् । यत्र सन्ति

अतः उनके लिए पिण्डदान और उदकक्रिया आदि न करे। किन्तु पितृभक्ति से उनके लिए तीर्थ में श्राद्ध और गयाश्राद्ध कर सकता है ॥ १०५ ॥ हे गरुड ! हंस, परमहंस, कुटीचक और बहूदक इन चारों प्रकार के संन्यासियों[1] की मृत्यु होने पर उन्हें भूमि में गाड़ देना चाहिए ॥ १०६ ॥ किन्तु उन्हें भूमि में गाड़ने का

१—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस संन्यासियों के लक्षण आश्रमोपनिषत्, संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् (७।२-१०) बृहत्पाराशरस्मृति (१२।१६४-१७३), पराशरमाधव भाग १ पृ० ५६८ आदि में देख सकते हैं। निर्णयसिन्धु पृ० ४४१ में (हारीत और स्कन्द-पुराण से) उद्धृत लक्षण भी द्रष्टव्य हैं।

विधान उन्हीं स्थानों पर लागू होगा जहाँ गङ्गा आदि महानदियाँ नहीं हैं। जहाँ ऐसी महानदियाँ हों वहाँ उन्हीं नदियों

महानद्यस्तदा तास्वेव निक्षिपेत् ॥१०७॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपणो दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

में मृत संन्यासियों की देह को जल-समाधि देनी चाहिए ॥ १०७ ॥

—○*○—

अथ एकादशोऽध्यायः

दशगात्रविधिनिरूपणम्

गरुड़ बोले—हे केशव ! आप दशगात्र की विधि बतलाइए और यह भी बतलाइए कि इसे करने से क्या सुकृत (पुण्य) होता है और पुत्र के अभाव में इसे कौन कर सकता है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—

श्री गरुड उवाच—

दशगात्रविधिं ब्रूहि कृते किं सुकृतं भवेत्। पुत्राभावे तु कः कुर्यादिति मे वद केशव ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्यामि दशगात्रविधिं तव। यद्विधाय च सत्पुत्रः मुच्यते पैतृकादृणात् ॥२॥

हे गरुड ! सुनो, मैं तुम्हें दशगात्र की विधि बतलाता हूँ, जिसे करने से सुपुत्र पैतृक ऋण से मुक्त हो जाता है

॥ २ ॥ पुत्र शोक करना छोड़कर सात्त्विक भाव से युक्त धृति (धैर्य) को धारण करके पिता को पिण्डदान आदि करे और ऐसा करते समय आँसू न बहावे ॥ ३ ॥ क्योंकि उस समय प्रेत विवश होकर बान्धवों के मुख से निकले कफ और उनके आँसुओं को खाता-पीता है। अतः उस समय निरर्थक शोक करके रोना नहीं चाहिए ॥ ४ ॥ यदि मनुष्य सहस्र वर्षों तक भी दिन-रात शोक करता रहे, तब भी मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति पुनः (उसी

पुत्रः शोकं परित्यज्य धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् । पितुः पिण्डादिकं कुर्यादश्रुपातं न कारयेत् ॥ ३ ॥ श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः । अतो न रोदितव्यं हि तदा शोकान्निरर्थकात् ॥ ४ ॥ यदि वर्षसहस्राणि शोचतेऽहर्निशं नरः । तथापि नैव निधनं गतो दृश्येत् कर्हिचित् ॥ ५ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोकं कारयेद् बुधः ॥ ६ ॥ न हि कश्चिदुपायोऽस्ति दैवो वा मानुषोऽपि वा । यो हि मृत्युवशं प्राप्तो जन्तुः पुनरिहाव्रजेत् ॥७॥ अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि । तदा

रूप में जीवित) नहीं दिखलाई पड़ सकता ॥ ५ ॥ जो जीव जन्म ले चुका है उसकी मृत्यु भी निश्चयमेव होगी और जो मर चुका है उसका पुनर्जन्म होना भी सुनिश्चित है। अतः इस अवश्यम्भावी [जन्म-मरण] के विषय में बुद्धिमान् मनुष्य को शोक नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥ ऐसा कोई भी दिव्य या मनुष्यकृत उपाय नहीं है जिससे कि मृत्यु को प्राप्त जीव पुनः उसी रूप में जीवित होकर लौट सके ॥ ७ ॥ अवश्यम्भावी घटनाओं का

यदि पूर्वतः प्रतीकार संभव होता तो राजा नल, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और महाराज युधिष्ठिर जैसे लोगों को दुःख ही नहीं भोगने पड़े होते ।. ८ ।। किसी का भी किसी के साथ आत्यन्तिक (सदा के लिए) सहवास संभव नहीं है । जीवात्मा अपने शरीर के साथ भी सदा नहीं रह पाता तव अन्य किसी के साथ आत्यन्तिक सहवास की क्या आशा की जासकती है ? ।।९।। जैसे कोई पथिक छाया में [विश्राम कर रहे अन्य पथिकों के साथ] विश्राम

दुःखैर्न युज्येरन् नल-राम-युधिष्ठिराः ।।८।। नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित् सह । अपि स्वस्य शरीरेण किमुतान्यैः पृथग्जनैः ।।९।। यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य विश्रमेत्। विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः ।।१०।। प्रातः संस्कृतं भोज्यं सायं तच्च विनश्यति । तदन्नरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ।।११।। भैषज्यमेतद् दुःखस्य विचारं परिचिन्त्य च । अज्ञानप्रभवं शोकं त्यक्त्वा कुर्यात्क्रियां सुतः ।। १२ ।। पुत्राभावे वधूः कुर्याद्भार्याभावे च

करता है और विश्राम कर चुकने पर [उन्हें छोड़ कर] पुनः चल देता है, उसी तरह [इस संसार में आवागमन करने वाले] प्राणियों का भी सहवास होता है अर्थात् वे कुछ समय ही साथ रहते हैं, सदा नहीं ।। १० ।। प्रातः काल जो भोजन सुन्दर विधि से बनाया जाता है वह सायंकाल तक विनष्ट हो जाता है । तव उस अन्न के रस से पोषित शरीर कैसे नित्य स्थायी हो सकता है ? ।।११।। पिता आदि की मृत्यु से जनित दुःख की औषध इसी तरह के विचार हैं । अतः ऐसी वातों का चिन्तन करके पुत्र शोक को त्याग कर अपने पिता की क्रिया करे ।। १२ ।।

मृतक के पुत्र के अभाव में पत्नी, पत्नी के अभाव में सोदर भ्राता और उसके भी अभाव में ब्राह्मण मृतक का [ब्राह्मण] शिष्य और उसके भी अभाव में सपिण्ड सम्बन्ध का कोई पुरुष उसकी क्रिया करे ॥ १३ ॥ हे गरुड ! मृतक के पुत्र के अभाव में उसके ज्येष्ठ या कनिष्ठ भ्राता के पुत्र या पौत्र उसकी दशगात्रादि क्रिया करें ॥ १४ ॥ एक पिता से उत्पन्न अनेक भाइयों में से यदि एक भी पुत्रवान् हो तो उसी पुत्र से वे सभी भाई भी पुत्रवाले होते

सोदरः । शिष्यो वा ब्राह्मणस्यैव सपिण्डो वा समाचरेत् ॥१३॥ ज्येष्ठस्य वा कनिष्ठस्य भ्रातुः पुत्रैश्च पौत्रकैः । दशगात्रादिकं कार्यं पुत्रहीने नरे खग ! ॥ १४ ॥ भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥१५॥ पत्न्यश्च बह्वयश्चैव चैका[1] पुत्रवती भवेत् । सर्वास्ताः पुत्रवत्यः स्युस्तेनैकेन सुतेन हि ॥१६॥ सर्वेषां पुत्रहीनानां मित्रः पिण्डं प्रदापयेत् । क्रियालोपो न कर्तव्यः सर्वाभावे पुरोहितः ॥ १७ ॥ स्त्री वाथ पुरुषः

हैं, ऐसा मनु ने कहा है ॥ १५ ॥ यदि एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ हों और उनमें से एक ही पुत्रवती हो तो वे सब भी उसी एक पुत्र से पुत्रवती होती हैं ॥ १६ ॥ यदि सभी भाई पुत्रहीन रहे हों [तो उनमें से मृतक भाई की क्रिया जीवित भाई करे और जब कोई भाई जीवित न रहे] तो उनका कोई मित्र पिण्डदान करे । पिण्डदान क्रिया का लोप नहीं करना चाहिए । यदि क्रिया करने के लिए कोई भी न हो तो पुरोहित क्रिया करे ॥ १७ ॥

---

१. पाठान्तर—पत्न्यश्च बह्वय एकस्य ।

जो कोई स्त्री या पुरुष अपने इष्ट-मित्र की क्रिया करता है वह अनाथ प्रेत के अन्त्येष्टि-संस्कार करने के कारण करोड़ यज्ञों के फल को प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ हे गरुड ! पुत्र को पिता का दशगात्रादि करना चाहिए। किन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र भी मर जाय तो पिता उसके प्रति अत्यन्त स्नेह रखने पर भी उसकी दशगात्रादि क्रिया न करे ॥१९॥ जब पुत्र अनेक हों तो भी दशागात्रादि विधि एक ही पुत्र करे। दशगात्र, सपिण्डीकरण और अन्य

कश्चिदिष्टस्य कुरुते क्रियाम्। अनाथप्रेतसंस्कारात्कोटियज्ञफलं लभेत् ॥१८॥ पितुः पुत्रेण कर्तव्यं दशगात्रादिकं खग !। मृते ज्येष्ठेऽप्यतिस्नेहान्न कुर्वीत पिता सुते ॥१९॥ बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समाचरेत। दशगात्रं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश ॥२०॥ एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि। विभक्तैस्तु पृथक् कार्यं श्राद्धं सांवत्सरादिकम् ॥२१॥ तस्माज्ज्येष्ठः सुतो भक्त्या दशगात्रं समाचरेत्। एकभोजी भूमिशायी भूत्वा ब्रह्मपरः शुचिः ॥२२॥ सप्तवारं परिक्रम्य धरणीं यत्फलं लभेत्। क्रियां कृत्वा पितुर्मातुस्तत्फलं लभते सुतः ॥२३॥

सोलह [एकोद्दिष्ट] श्राद्धों को पैतृक-सम्पत्ति का भाइयों में विभाजन हो जाने पर भी एक ही भाई करे। किन्तु पैतृकसम्पत्ति का विभाजन हो जाने पर सभी भाई पिता का वार्षिक श्राद्ध आदि पृथक्-पृथक् कर सकते हैं ॥२०-२१॥ अतः ज्येष्ठ पुत्र श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पिता का दशगात्रादि करे। वह एक समय भोजन करे, भूमि में शयन करे तथा ब्रह्मचर्य-परायण और शुचि रहे ॥ २२ ॥ पृथिवी की सात बार परिक्रमा करने से जो फल प्राप्त हो सकता है वह

फल पुत्र को माता-पिता की क्रिया करने से मिलता है ॥ २३ ॥ दशगात्र से लेकर जब तक वार्षिक (सपिण्डी-करण) श्राद्ध नहीं हो जाता तब तक नियम-पालन पूर्वक विहित क्रिया को करने में संलग्न पुत्र गया-श्राद्ध का फल प्राप्त करता है ॥ २४ ॥ वह दिन के मध्यम याम (दूसरे पहर) में कुएँ, तालाब, बगीचे, तीर्थस्थल या देवालय में जाकर (बिना सङ्कल्प और) मन्त्र पढ़े बिना स्नान करे ॥ २५ ॥ तब शुचि होकर किसी वृक्ष के मूल

आरभ्य दशगात्रं च यावद्वै वार्षिकं भवेत् । तावत्पुत्रः क्रियां कुर्वन् गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥२४॥
कूपे तडागे वाऽऽरामे तीर्थे देवालयेऽपि वा । गत्वा मध्यमयामे तु स्नानं कुर्यादमन्त्रकम् ॥२५॥
शुचिर्भूत्वा वृक्षमूले दक्षिणाभिमुखः स्थितः । कुर्याच्च वेदिकां तत्र गोमयेनोपलिप्य ताम् ॥२६॥
तस्यां पर्णे दर्भमयं स्थापयेत्कौशिकं द्विजम् । तं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेदतसीति च ॥२७॥
तदग्रे च ततो दत्त्वा पिण्डार्थं कौशमासनम् । तस्योपरि ततः पिण्डं नामगोत्रोपकल्पितम् ॥२८॥
दद्यात् तण्डुलपाकेन यवपिष्टेन वा सुतः । उशीरं चन्दनं भृङ्गराजपुष्पं निवेदयेत् । धूपं दीपं च

में दक्षिणाभिमुख होकर वेदी बना कर उसे गोबर से लीपे ॥ २६ ॥ उस वेदी पर पत्ते के ऊपर कुश के बने ब्राह्मण को स्थापित कर पाद्यादि से उसकी पूजा करके 'अतसीपुष्पसङ्काशं०' इत्यादि मन्त्र से उसको प्रणाम करे ॥२७॥ तब उसके आगे पिण्ड रखने के लिए कुश का आसन रख कर उसके ऊपर प्रेत के नाम और गोत्र के उच्चारण पूर्वक चावल के भात से अथवा जौ के आटे से बने हुए पिण्ड, खस, चन्दन, भृङ्गराज के पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य,

मुखवासाथ ताम्बूल और दक्षिणा समर्पित करे ॥ २८-२९ ॥ तब काकान्न, दूध और जल से भरे हुए दो पात्र, और वर्धमान (वृद्धिक्रम से) जलाञ्जलि प्रदान करते हुए यह कहे कि 'अमुक नाम वाले प्रेत को मेरे द्वारा प्रदत्त ये श्राद्ध वस्तुएँ प्राप्त हों' ॥ ३० ॥ अन्न, वस्त्र, जल या अन्य जो भी वस्तु मृतक के नाम के साथ प्रेत शब्द जोड़ कर दी जाती है वह उसे अनन्तता अर्थात् (असीमित तृप्ति) प्रदान करती है ॥ ३१ ॥ अतः अन्त्येष्टि के प्रथम

नैवेद्यं मुखवासं च दक्षिणाम् ॥२९॥ काकान्नं पयसोः[1] पात्रे वर्धमानजलाञ्जलीन्[2] । प्रेताया-मुकनाम्ने च मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥३०॥ अन्नं वस्त्रं जलं द्रव्यमन्यद्वा दीयते च यत् । प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्त्यदायकम् ॥ ३१ ॥ तस्मादादिदिनादूर्ध्वं प्राक्सपिण्डीविधानतः । योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत् ॥ ३२ ॥ प्रथमेऽहनि यत्पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम् । तेनैव विधिनान्नेन नव पिण्डान् प्रदापयेत् ॥३३॥ नवमे दिवसे चैव सपिण्डैः सकलैर्जनैः । तैलाभ्यङ्गः

दिन से लेकर सपिण्डीकरण तक का विधान पूर्ण होने तक मृतक स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही उनके नाम के साथ विशेषण रूप में 'प्रेत' शब्द का उच्चारण करे ॥ ३२ ॥ प्रथम दिन विधिपूर्वक जिस अन्न का पिण्ड दिया

---

१. पाठान्तर—पयसः पात्रे । किन्तु 'पयसोः पात्रे' ही शुद्ध पाठ है--पयश्च पयश्च पयसी, तयोः पयसो. नीरक्षीरयोः इत्यर्थः ।

२. 'वर्धमानजलाञ्जलि' का तात्पर्य पहले किसी ने स्पष्ट नहीं किया है । इसका तात्पर्य है प्रतिदिन वृद्धिक्रम से दी जाने वाली जलाञ्जलि । अधिक स्पष्टीकरण हेतु द्रष्टव्य—गरुड उ० ५।६०-६१ (पण्डित पुस्तकालय संस्करण) तथा गरुडपुराण (धर्मकाण्ड प्रे० ख०) ५।२१-२६ (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण) । जलाञ्जल्यः प्रदातव्या; प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम् ॥ तावद् वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डं दशाह्निकम् ॥ गरुड उ. ५।६०।६१ ।

जाता है उसी अन्न से विधिपूर्वक नौ दिन तक पिण्ड प्रदान करे ॥ ३३ ॥ नवें दिन सपिण्ड सम्बन्ध के सभी लोग मृतक की स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से तेल मालिश करें और घर के बाहर नदी, तालाब आदि में स्नान करके अपने साथ दूर्वा और लाजा ले जाकर महिलाओं को अपने आगे करके मृतक के घर जावें और उनसे यह कहें कि 'तुम्हारे कुल की वृद्धि दूर्वा की तरह और तुम्हारे कुल का विकास लाजा (लावा) की तरह हो' ऐसा कह

प्रकर्तव्यो मृतकस्वर्गकाम्यया ॥ ३४ ॥ बहिः स्नात्वा गृहीत्वा च दूर्वा लाजासमन्विताः । अग्रतः प्रमदां कृत्वा समागच्छेन्मृतालयम् ॥३५॥ दूर्वावत्कुलवृद्धिस्ते लाजा इव विकासिता । एवमुक्त्वा त्यजेद् गेहे लाजान्दूर्वासमन्वितान् ॥३६॥ दशमेऽहनि मांसेन पिण्डं दद्यात्खगेश्वर ! । माषेण तन्निषेधाद्वा कलौ न पलपैतृकम् ॥३७॥ दशमे दिवसे क्षौरं बान्धवानां च मुण्डनम् । क्रियाकर्तुः सुतस्यापि पुनर्मुण्डनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ मिष्टान्नैर्भोजयेदेकं दिनेषु

कर वे दूर्वा सहित लाजाओं को उसके घर में बिखेर दें ॥ ३४–३६ ॥ हे गरुड ! दशवें दिन मांस का पिण्ड दे अथवा उसके निषिद्ध होने के कारण माष (उड़द) के पिण्ड दे, [क्योंकि धर्मशास्त्रानुसार] कलियुग में मांस से पितृकृत्य (श्राद्ध) नहीं किया जा सकता[1] ॥३७॥ दशवें दिन क्षौर कर्म किया जाता है । इस दिन सभी बान्धव मुण्डन करावें और क्रिया करने वाला पुत्र भी पुनः मुण्डन करावे[2] ॥३८॥ दश दिनों तक एक ब्राह्मण को मिष्टान्न

---

१. अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ॥ ११२ ॥ देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ ब्रह्मवै० ४।११५।११२-३

२. यह वचन–प्रदेश, क्षेत्र-विशेष या जातिविशेष के लोकाचार के अनुसार ही पालनीय है।

भोजन करावे और हाथ जोड़ कर भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्रेत की मुक्ति हेतु प्रार्थना करे ॥ ३९ ॥ अतसी (तीसी) के पुष्प के समान कान्ति वाले, पीत वस्त्र धारी अच्युत भगवान् विष्णु को जो मनुष्य नमस्कार करते हैं उन्हें किसी से कोई भय नहीं होता ॥ ४० ॥ हे आदि-अन्तरहित, शङ्खचक्रगदाधारी, अविनाशी और

दशसु द्विजम् । प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च हरिं ध्यात्वा कृताञ्जलिः ॥ ३९ ॥ अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोन्विदं न तेषां विद्यते भयम् ॥४०॥ अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत् ॥ ४१ ॥ इति सम्प्रार्थनामन्त्रं श्राद्धान्ते प्रत्यहं पठेत्। स्नात्वा गत्वा गृहे दत्त्वा गोग्रासं भोजनं चरेत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे दशगात्रविधिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

कमल के समान नेत्रों वाले देव विष्णु ! आप प्रेत को मोक्ष-प्रदान करने वाले होवें ॥४१॥ इस आशय के प्रार्थना-मन्त्र को श्राद्ध के अन्त में प्रतिदिन पढ़े । इस तरह श्राद्ध करके स्नान करके घर जाकर गोग्रास देकर भोजन करे ॥ ४२ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

एकादशाहविधिनिरूपणम्

गरुड बोले—हे सुरेश्वर ! आप एकादशाह के कृत्यों की विधि बतलाइए और हे जगदीश्वर ! वृषोत्सर्ग का विधान भी बतलाइए ॥ १ ॥ श्री भगवान् बोले—ग्यारहवें दिन प्रभात काल में ही जलाशय (नदी, तालाब या

गरुड उवाच—

एकादशदिनस्यापि विधिं ब्रूहि सुरेश्वर । वृषोत्सर्गविधानं च वद मे जगदीश्वर ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

एकादशेऽह्नि गन्तव्यं प्रातरेव जलाशये । और्ध्वदेहिक्रिया सर्वा करणीया प्रयत्नतः ॥२॥
निमन्त्रयेद्ब्राह्मणांश्च वेदशास्त्रपरायणान् । प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥३॥
स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा ह्याचार्योऽपि शुचिर्भवेत् । विधानं विधिवत्कुर्यादेकादशदिनोचितम् ॥४॥

कुएँ आदि) पर जाकर प्रयत्नपूर्वक सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक क्रिया करनी चाहिए ॥२॥ इसके लिए वेद और शास्त्रों के अध्ययन-मनन में तत्पर ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे और हाथ जोड़ कर नमस्कार करके उनसे प्रेत की मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना करे ॥ ३ ॥ आचार्य भी स्नान और सन्ध्यावन्दन आदि करके शुचि होकर ग्यारहवें दिन के

लिए विहित कृत्यों के विधान को विधिवत् सम्पादित करे ॥ ४ ॥ दश दिन तक मृतक का श्राद्ध मन्त्रोच्चारण के बिना केवल उसके नाम तथा गोत्र और उसके साथ प्रेत शब्द का उच्चारण करके करे किन्तु ग्यारहवें दिन प्रेत को मन्त्र पढ़ते हुए पिण्डदान करे ॥ ५ ॥ हे गरुड ! [एकादशाह के दिन तर्पण आदि के लिए] सोने की विष्णु-प्रतिमा, चाँदी की ब्रह्मा की प्रतिमा, ताँबे की रुद्र की प्रतिमा और लोहे की यम की प्रतिमा बनवावे ॥ ६ ॥

अमन्त्रं कारयेच्छ्राद्धं दशाहं नामगोत्रतः । एकादशेऽह्नि प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् ॥५॥
सौवर्णं कारयेद्विष्णुं ब्रह्माणं रौप्यकं तथा । रुद्रस्ताम्रमयः कार्यो यमो लोहमयः खग! ॥६॥
पश्चिमे विष्णुकलशं गङ्गोदकसमन्वितम् । तस्योपरि न्यसेद्विष्णुं पीतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥७॥
पूर्वे तु ब्रह्मकलशं क्षीरोदकसमन्वितम् । ब्रह्माणं स्थापयेत्तत्र श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥८॥
उत्तरस्यां रुद्रकुम्भं पूरितं मधुसर्पिषा । श्रीरुद्रं स्थापयेत्तत्र रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ९ ॥
दक्षिणस्यां यमघटमिन्द्रोदकसमन्वितम् । कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि यमं न्यसेत् ॥१०॥

श्राद्ध-स्थल के पश्चिम में गङ्गाजल से पूर्ण विष्णु-कलश स्थापित करके उसके ऊपर पीतवस्त्र से वेष्टित (लपेटी हुई) विष्णु की प्रतिमा को स्थापित करे ॥ ७ ॥ उसकी पूर्व दिशा में दूध और जल से भरा हुआ ब्रह्मा का कलश स्थापित करके उसके ऊपर श्वेतवस्त्र से वेष्टित ब्रह्मा की प्रतिमा को स्थापित करे ॥ ८ ॥ तब उत्तर दिशा में मधु और घृत से पूरित रुद्र-कलश स्थापित करके उसके ऊपर रक्तवस्त्र से वेष्टित रुद्र की प्रतिमा को स्थापित करे ॥९॥ दक्षिण दिशा में इन्द्र [कृत वर्षा] के जल से पूरित यम का घट स्थापित करके उसके ऊपर कृष्ण वर्ण के वस्त्र से

वेष्टित यम की प्रतिमा को स्थापित करे ॥ १० ॥ इनके बीच में एक मण्डल बना कर उस पर कुशों से निर्मित प्रेत [के पुतले] को स्थापित करके पुत्र दक्षिणाभिमुख और अपसव्य होकर उसका तर्पण करे ॥ ११ ॥ और तब विष्णु, ब्रह्मा, शिव और धर्मराज (यम) का वेदमन्त्रों से तर्पण करे । तब होम करने के पश्चात् दशघटादिक श्राद्ध करे ॥ १२ ॥ तदनन्तर पितरों को तारने के लिए गोदान दे और गोदान के समय यह कहे कि हे माधव । मेरे

मध्ये तु मण्डलं कृत्वा स्थापयेत्कौशिकं सुतः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वाऽपसव्येन च तर्पयेत् ॥११॥
विष्णुं विधिं शिवं धर्मं वेदमन्त्रैश्च तर्पयेत् । होमं कृत्वा चरेत्पश्चाच्छ्राद्धं दशघटादिकम् ॥१२॥
गोदानं च ततो दद्यात्पितॄणां तारणाय वै । गौरेषा हि मया दत्ता प्रीतये तेऽस्तु माधव ॥१३॥
उपभुक्तं तु तस्यासीद्वस्त्रभूषणवाहनम् । घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सप्तधान्यं तदीप्सितम् ॥१४॥
तिलाद्यष्टमहादानमन्तकाले न चेत्कृतम्[1] । शय्यासमीपे धृत्वैतद्दानं तस्याः प्रदापयेत् ॥१५॥
प्रक्षाल्य विप्रचरणौ पूजयेदम्बरादिभिः । सिद्धान्नं तस्य दातव्यं मोदकाऽपूपकाः पयः ॥१६॥

द्वारा प्रदत्त इस गौ के दान से आप प्रसन्न होवें ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस प्रेत के द्वारा अपने जीवन काल में प्रयुक्त वस्त्र, आभूषण और वाहन, घृतपूर्ण कांस्य-पात्र, सप्तधान्य, उस [प्रेत] की अभीष्ट वस्तुएँ तथा तिलदान आदि आठ महादानों में से जो भी दान अन्तकाल (मृत्युकाल) में न दिये गये हों उनको शय्या के समीप रखकर इन सब के साथ उस शय्या का दान करे ॥ १४–१५ ॥ शय्यादान के पूर्व ब्राह्मण के चरण धोकर वस्त्रादि से उसकी

१. न चेत्कृतम् । निर्णयसागरसंस्करण--समर्थित पाठ । पाठान्तर-कालेन चेत्कृतम, काले न यत्कृतम्, काले च यत्कृतम् ।

पूजा करे और तब लडडू, पूड़ी आदि पकवान और दूध देकर भोजन करावे ।।१६।। तब पुत्र उस शय्या पर सोने की पुरुष-प्रतिमा को रख कर उसकी पूजा करके यथाविधि उस मृतक की शय्या का दान [निम्नलिखित आशय वाले मन्त्र को पढ़ते हुए] करे ।। १७ ।। हे विप्र ! मैंने प्रेत की प्रतिमा और समस्त दान-सामग्री सहित यह प्रेत-शय्या आपको समर्पित की है ।। १८ ।। ऐसा कह कर कुटुम्ब-परिवार वाले ब्राह्मण को शय्यादान करे और तब

स्थापयेत्पुरुषं हेमं शय्योपरि तदा सुतः । पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ।।१७।।
प्रेतस्य प्रतिमायुक्ता सर्वोपकरणैर्वृता । प्रेतशय्या मया ह्येषा तुभ्यं विप्र निवेदिता ।।१८।।
इत्या वार्थाय दातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।१९।।
एवं शय्याप्रदानेन श्राद्धेन नवकादिना । वृषोत्सर्गविधानेन प्रेतो याति परां गतिम् ।।२०।।
एकादशेऽह्नि विधिना वृषोत्सर्गं समाचरेत् । हीनाङ्गं रोगिणं बालं त्यक्त्वा कुर्यात्सलक्षणम् ।।२१।।

उसकी प्रदक्षिणा करके और प्रणाम करके उसे विदा करे ।। १९ ।। इस प्रकार शय्यादान करने से, नवश्राद्ध[1] आदि करने से और विधानपूर्वक वृषोत्सर्ग करने से प्रेत परमगति को प्राप्त करता है ।। २० ।। तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन ही विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करे । हीनाङ्ग, रोगी तथा छोटे बछड़े को छोड़, सभी [शुभ] लक्षणों से युक्त

---

१. नवश्राद्ध के विषय में प्राचीन आचार्यों के अनेक मत प्राप्त होते हैं जिनमें अङ्गिरा का वचन उद्धरणीय है —

प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ।। इस विषय में अधिक विवरण और सूक्ष्म-विवेचन के लिए द्र० पराशरमाधव, आचारकाण्ड, पृ० ७६८-६९ तथा निर्णयसिन्धु, पृ० ४१५ ।

तथा चक्र और त्रिशूल से चिह्नित वृष का उत्सर्ग करे ॥ २१ ॥ ब्राह्मण के लिए रक्त वर्ण की आँखों वाले, पिङ्गल-वर्ण के रक्तिम (ललिमायुक्त) सींग, रक्तिम गला तथा रक्तिम सींगों वाले, सफेद पेट और काली पीठ वाले वृषभ का उत्सर्ग विहित है ॥ २२ ॥ क्षत्रिय के लिए सुन्दर चिकने और रक्त वर्ण के वृषभ का उत्सर्ग विहित है, वैश्य के लिए पीले वर्ण के वृष का उत्सर्ग और शुद्र के लिए कृष्ण वर्ण के वृषभ का उत्सर्ग विहित किया गया

रक्ताक्षः पिङ्गलो यस्तु रक्तः शृङ्गे गले खुरे। श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥२२॥
सुस्निग्धवर्णो यो रक्तः क्षत्रियस्य विधीयते । पीतवर्णश्च वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते ॥२३॥
यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गः स्याच्छ्वेतः पुच्छे पदेषु च । सपिङ्गो वृष इत्याहुः पितृणां प्रीतिवर्धनः ॥२४॥
चरणास्तु मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः । लाक्षारससवर्णो यः स नील इति कीर्तितः ॥२५॥
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । पिङ्गः खुरविषाणाभ्यां रक्तनीलो निगद्यते ॥२६॥

है ॥ २३ ॥ जिसके सभी अङ्ग पिङ्गल वर्ण के हों और पूँछ तथा पैर सफेद हों उसे पिङ्गल वर्ण का वृषभ कहते हैं। वह पितरों की प्रसन्नता को बढ़ाता है ॥ २४ ॥ जिस साँड के पैर, मुख और पूँछ सफेद हों और शेष पूरा शरीर लाख के समान (रक्त) वर्ण का हो उसे नील वृष कहा जाता ॥ २५ ॥ जो साँड़ रक्त वर्ण का हो और जिसका मुख एवं पूँछ पाण्डु (पीले) वर्ण की हो तथा खुर और सींग पिङ्गल वर्ण के हों उसको रक्तनील वृषभ

कहा जाता है ॥ २६ ॥ जिस साँड़ के समस्त अङ्ग एक समान वर्ण के हों और जिसकी पूँछ और खुर पिङ्ग वर्ण के हों उसे नील-पिङ्ग वृषभ कहते हैं और वह पितरों का उद्धार करने वाला होता है ॥२७॥ जो साँड़ कबूतर के समान वर्ण का हो और जिसके ललाट में तिलक की-सी आकृति बनी हो उस सर्वाङ्गसुन्दर साँड़ को बभ्रु-नील वृषभ कहते हैं ॥ २८ ॥ जिस साँड़ का समस्त शरीर नील वर्ण का हो और दो आखें रक्त वर्ण की हों उसको

सर्वाङ्गेष्वेकवर्णो यः पिङ्गः पुच्छे खुरेषु यः । तं नीलपिङ्गमित्याहुः पूर्वजोद्धारकारकम् ॥२७॥
पारावतसवर्णस्तु ललाटे तिलकान्वितः । तं बभ्रुनीलमित्याहुः पूर्णं सर्वाङ्गशोभनम् ॥२८॥
नीलः सर्वशरीरेषु रक्तश्च नयनद्वये । तमप्याहुर्महानीलं नीलः पञ्चविधः स्मृतः ॥२९॥
अवश्यमेव मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत् । तदर्थमेषां चरितं लोके गाथा पुरातनी ॥३०॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । गौरीं विवाहयेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१॥
स एव पुत्रो मन्तव्यो वृषोत्सर्गं तु यश्चरेत् । गयायां श्राद्धदाता च योऽन्यो विष्ठासमः किल ॥३२॥

महानील वृषभ कहते हैं। इस तरह नील वृषभ पाँच प्रकार का होता है ॥ २९ ॥ नील वृषभ को अवश्य मुक्त कर देना (छोड़ देना) चाहिए। वह घर में रखने योग्य नहीं होता। उसी के विषय में लोक में पुरातन काल से ही यह (निम्नलिखित) गाथा प्रचलित रही है ॥ ३० ॥ मनुष्य को बहुत-से पुत्रों के जन्म की कामना करनी चाहिए ताकि उनमें से कोई तो गया जा सके या गौरी कन्या (आठ वर्ष की कन्या) का विवाह (कन्यादान) करे या नील वृष का उत्सर्ग कर सके ॥ ३१ ॥ उसी को पुत्र मानना चाहिए जो वृषोत्सर्ग करे

और जो गया में जाकर श्राद्ध करे । इससे भिन्न अर्थात् ऐसा न करने वाला पुत्र तो विष्ठा के समान है ।। ३२ ।। जिस किसी के जो कोई भी पूर्वज रौरव आदि नरकों में यातना पा रहे हों वह इक्कीस पीढ़ी तक के उन पूर्वजों को वृषोत्सर्ग करके तार देता है ।। ३३ ।। स्वर्ग में गये हुए पितर भी वृषोत्सर्ग की कामना करते हैं वे आशा लगाये रहते हैं कि हमारे वंश में कोई पुत्र वृषोत्सर्ग करेगा और उसके द्वारा किये गये वृषोत्सर्ग से हम सब परम गति

रौरवादिषु ये केचित्पच्यन्ते यस्य पूर्वजाः । वृषोत्सर्गेण तान् सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम् ।।३३।।
वृषोत्सर्गं किलेच्छन्ति पितरः स्वर्गता अपि । अस्मद्वंशे सुतः कोऽपि वृषोत्सर्गं करिष्यति ।।३४।।
तदुत्सर्गाद्वयं सर्वे यास्यामः परमां गतिम् । सर्वयज्ञेषु चाऽस्माकं वृषयज्ञो हि मुक्तिदः ।।३५।।
तस्मात्पितृविमुक्त्यर्थं वृषयज्ञं समाचरेत् । यथोक्तेन विधानेन कुर्यात्सर्वं प्रयत्नतः ।।३६।।
ग्रहाणां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैश्च पूजनम् । होमं कुर्याद्यथाशास्त्रं पूजयेद्वृषमातुरः ।।३७।।
वत्स वत्सीं समानाय्य बध्नीयात्कंकणं तयोः । वैवाह्येन विधानेन स्तम्भमारोपयेत्तदा ।।३८।।

को प्राप्त करेंगे । सभी प्रकार के यज्ञों में वृषोत्सर्ग रूपी यज्ञ ही हमको मुक्ति-प्रदान करता है ।। ३४-३५ ।। अतः पितरों की मुक्ति हेतु वृषोत्सर्ग रूपी यज्ञ करे । इसके समस्त कृत्य शास्त्रोक्त विधान के अनुसार करे ।। ३६ ।। वृषोत्सर्ग करने वाला आतुर पुरुष शास्त्रीय विधान के अनुसार ग्रहों का स्थापन और तत्तत् ग्रह के मन्त्र से प्रत्येक ग्रह का पूजन और होम करके वृष का पूजन करे ।। ३७ ।। बछड़ा और बछड़ी को मँगा कर उनको कंकण बाँधे

और विवाह संस्कार के विधि-विधान से स्तम्भारोपण करे ॥ ३८ ॥ वृष (बछड़ा) और बछड़ी को रुद्र-कलश के जल से स्नान करावे और चन्दन-रोरी तथा पुष्प-माला आदि से उनका पूजन करके उनकी प्रदक्षिणा करे ॥३९॥ वृष की पीठ पर दाँयी ओर त्रिशूल और बाँयीं ओर चक्र का चिह्न अङ्कित करावे और तब उसे छोड़ते हुए पुत्र हाथ जोड़कर इस मन्त्र को पढ़े ॥ ४० ॥ तुम ब्रह्मा के द्वारा वृष रूप में निर्मित धर्म हो। तुम्हें मैंने उत्सर्ग

स्नापयेच्च वृषं वत्सीं रुद्रकुम्भोदकेन च । गन्धमाल्यैश्च सम्पूज्य कारयेच्च प्रदक्षिणाम् ॥३९॥
त्रिशूलं दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रं प्रदापयेत् । तं विमुच्याञ्जलिं बद्ध्वा पठेन्मन्त्रमिमं सुतः ॥४०॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । तवोत्सर्गप्रदानेन तारयस्व भवार्णवात् ॥४१॥
इति मन्त्रान्नमस्कृत्य वत्सं वत्सीं समुत्सृजेत् । वरदोऽहं सदा तस्य प्रेतमोक्षं ददामि च ॥४२॥
तस्मादेष प्रकर्त्तव्यस्तत्फलं जीवतो भवेत् । अपुत्रस्तु स्वयं कृत्वा सुखं याति परां गतिम् ॥४३॥

(अर्थात् उन्मुक्त विचरण की छूट) रूपी जो दान दिया है उससे प्रसन्न होकर तुम मुझे भवसागर से पार लगाओ ॥ ४१ ॥ इस मन्त्र को पढ़ते हुए नमस्कार करके बछड़ा (वृष) और बछड़ी दोनों को छोड़ दे। ऐसा करने वाले उस पुत्र पर मेरा वरद हस्त रहता है और जिस प्रेत के निमित्त यह वृषोत्सर्ग किया जाता है उसको भी मैं मोक्ष प्रदान करता हूँ ॥ ४२ ॥ अतः वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिए। अपने जीवन-काल में इसे करने पर भी वही फल प्राप्त होता है [जो कि मृतक को पुत्र के द्वारा करने पर प्राप्त होता है] पुत्रहीन मनुष्य [अपने जीवन

काल में] स्वयं अपने हाथ से वृषोत्सर्ग कर देने पर मृत्यु के बाद सुखपूर्वक परम गति प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥ कार्तिक आदि शुभ मासों में सूर्य के उत्तरायण होने पर, शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष में भी द्वादशी आदि तिथियों में, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण काल में, पवित्रतीर्थ में, उत्तरायण (सूर्य के मकर राशि में प्रवेश) के दिन तथा दक्षिणायन (सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश) के दिन तथा तथा दोनों विषुवों अर्थात् मेष-संक्रान्ति और तुलासंक्रान्ति

कार्तिकादौ शुभे मासे चोत्तरायणगे[1] रवौ । शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे द्वादश्यादितिथौ तथा ॥४४॥
ग्रहणद्वितीये चैव पुण्यतीर्थेऽयनद्वये । विषुवद्द्वितीये चापि वृषोत्सर्गं समाचरेत् ॥४५॥
शुभे लग्ने मुहूर्ते च शुचौ देशे समाहितः । ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ॥४६॥
जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्याद्देहशोधनम् । पूर्ववत्सकलं कृत्यं कुर्याद्धोमादिलक्षणम् ॥४७॥
शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत् । आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्दद्याद्दानं द्विजन्मने ॥४८॥

के दिन वृषोत्सर्ग किया जा सकता है ॥ ४४-४५ ॥ शुभलग्न और शुभ मुहूर्त में, शुचि स्थान में, समाहित (सावधान) चित्त होकर विधि-विधान के वेत्ता और शुभ लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को बुला कर जप, होम तथा दान से अपनी देह को पवित्र करके पहले कही गयी विधि के अनुसार ही ग्रह-स्थापन पूजन और ग्रह-होम आदि सकल कर्म करे ॥ ४६-४७ ॥ तब शालग्राम को स्थापित करके वैष्णव श्राद्ध करे । तदनन्तर अपना श्राद्ध करे और

१. पाठान्तर—चोत्तरायणे ।

तब ब्राह्मण को दान दे ॥ ४८ ॥ हे गरुड ! पुत्रवाला अथवा पुत्रहीन जो भी व्यक्ति इस प्रकार [वृषोत्सर्ग विषयक समस्त कृत्य] करता है उसको वृषोत्सर्ग करने से सभी काम्य फल प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ अग्निहोत्रादि विविध यज्ञों से और विविध दानों से भी मनुष्य वैसी सद्गति नहीं प्राप्त कर सकता जैसी कि वृषोत्सर्ग से प्राप्त कर सकता है ॥५०॥ बाल्यावस्था (तीन वर्ष तक), कुमारावस्था (तीन से पाँच वर्ष तक) पौगण्डावस्था[१]

एवं यः कुरुते पक्षिन्नपुत्रश्चापि पुत्रवान् । सर्वकामफलं तस्य वृषोत्सर्गात् प्रजायते ॥४९॥
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि । न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण यां लभेत् ॥५०॥
बाल्ये कौमारे पौगण्डे यौवने वार्धके कृतम् । यत्पापं तद्विनश्येत वृषोत्सर्गान्न संशयः ॥५१॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च सुरापी गुरुतल्पगः । ब्रह्महा हेमहारी च वृषोत्सर्गात् प्रमुच्यते ॥५२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् । वृषोत्सर्गसमं पुण्यं नास्ति तार्क्ष्य ! जगत्त्रये ॥५३॥

(पाँच से दश वर्ष तक), [किशोरावस्था], युवावस्था और वृद्धावस्था में जो पाप किया गया हो वह सब वृषोत्सर्ग करने से नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥ मित्रद्रोही, कृतघ्न, सुरापान करने वाला, गुरुपत्नीगामी, ब्रह्महत्या करने वाला और सोना चुराने वाला भी वृषोत्सर्ग करने से पापमुक्त हो जाता है ॥ ५२ ॥ अतः समग्र प्रयत्न से वृषोत्सर्ग रूप यज्ञ करना चाहिए । हे गरुड ! वृषोत्सर्ग के समान पुण्यकार्य तीनों लोकों में अन्य कुछ भी नहीं

१. बाल, कुमार, पौगण्ड आदि की परिभाषा पीछे अध्याय १० के श्लोक ६४-६५ की पादटिप्पणी देखिए ।

है। ५३ ॥ पति और पुत्र वाली नारी यदि उन दोनों से पहले मर जाय तो उसके लिए वृषोत्सर्ग न करे, किन्तु उसके निमित्त दूध देने वाली गौ का दान करे ॥ ५४ ॥ हे गरुड ! जो कोई भी वृषोत्सर्ग के वृष (साँड़) को उसके कन्धे में [जुआ रख कर] या उसकी पीठ पर सवारी या भार ढोने के काम में लाता है वह प्रलय पर्यन्त घोर नरक में पड़ा रहता है ॥ ५५ ॥ जो निर्दयी मनुष्य उस वृषभ (साँड़) को मुट्ठी (घूँसे) से या लाठी से मारता

पतिपुत्रवती नारी द्वयोरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं नैव कुर्याद्द्याद् गां च पयस्विनीम् ॥५४॥
वृषभं वाहयेद्यस्तु स्कन्धे पृष्ठे च खेचर !। स पतेन्नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥५५॥
वृषभं ताडयेद्यस्तु निर्दयो मुष्टियष्टिभिः। स नरः कल्पपर्यन्तं भुनक्ति यमयातनाम् ॥५६॥
एवं कृत्वा वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश। सपिण्डीकरणादर्वाक् तदहं कथयामि ते ॥५७॥
स्थाने द्वारेऽर्धमार्गे च चितायां शवहस्तके। अस्थिसञ्चयने षष्ठो दश पिण्डा दशाह्निकाः ॥५८॥

है वह एक कल्प पर्यन्त यमयातना भोगता है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार वृषोत्सर्ग करके मृतक के लिए सपिण्डीकरण के पूर्व षोडश-त्रय (मलिन षोडशी, मध्य षोडशी तथा उत्तम षोडशी) श्राद्धों को सम्पन्न करे। अब मैं तुम्हें उन श्राद्धों के विषय में बतलाता हूँ ॥ ५७ ॥ मृतक का प्रथत पिण्डदान मृत्यु के स्थान में, दूसरा उसे द्वार पर रखे जाने पर, तीसरा श्मशान के अर्द्धमार्ग में पहुँचने पर, चौथा चिता में और पाँचवाँ शव के हाथ में, छठाँ अस्थिसञ्चय करने पर और मृत्यु के प्रथम दिन से लेकर दशवें दिन तक प्रतिदिन एक-एक के क्रम से दश पिण्ड

दिये जाते हैं ॥ ५८ ॥ इन सोलह श्राद्धों को प्रथम षोडश या मलिन षोडशी कहा जाता है। अब तुम्हें दूसरे षोडश श्राद्धों के विषय में बतलाता हूँ जिन्हें मध्य षोडशी कहा जाता है ॥ ५९ ॥ मध्य षोडशी के सोलह श्राद्धों में प्रथम पिण्ड भगवान् विष्णु को दूसर शिव को और तीसरा पिण्ड सपरिवार यम (अर्थात् यम और उनके दूतों) को प्रदान करे ॥ ६० ॥ चौथा पिण्ड सोम को पाँचवाँ हव्यवाट् (हव्यवहन करने वाले) अग्नि को, छठाँ पिण्ड

मलिनं षोडशं चैतत्प्रथमं परिकीर्तितम् । अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं कथयामि ते ॥५९॥
प्रथमं विष्णवे दद्याद् द्वितीयं श्रीशिवाय च। याम्याय परिवाराय तृतीयं पिण्डमुत्सृजेत् ॥६०॥
चतुर्थं सोमराजाय हव्यवाहाय पञ्चमम् । कव्यवाहाय षष्ठं च दद्यात्कालाय सप्तमम् ॥६१॥
रुद्राय चाष्टमं दद्यान्नवमं पुरुषाय च। प्रेताय दशमं चैवैकादशं विष्णवे नमः ॥६२॥
द्वादशं ब्रह्मणे दद्याद्विष्णवे च त्रयोदशम्। चतुर्दशं शिवायैव यमाय दशपञ्चकम् ॥६३॥
दद्यात्तत्पुरुषायैव पिण्डं षोडशकं खग !। मध्यषोडशकं प्राहुरेतत्तत्त्वविदो जनाः ॥६४॥

कव्यवाट् (कव्य को वहन करने वाले अर्थात् कव्य को पितरों तक पहुँचाने वाले) अग्नि को तथा सातवाँ पिण्ड काल को प्रदान करे ॥ ६१ ॥ आठवाँ पिण्ड रुद्र को नवाँ पुरुष (तत्पुरुष) को, दशवाँ प्रेत को और ग्यारहवाँ पिण्ड विष्णु को प्रदान करे ॥ ६२ ॥ बारहवाँ पिण्ड ब्रह्मा को, तेरहवाँ विष्णु को, चौदहवाँ शिव को और पन्द्रहवाँ पिण्ड यम को प्रदान करे ॥ ६३ ॥ सोलहवाँ पिण्ड तत्पुरुष को ही प्रदान करे। तत्त्वज्ञानी विद्वानों ने इन सोलह

श्राद्धों को मध्य षोडशी कहा है ॥६४॥ तब एक वर्ष तक प्रतिमास मृताह तिथि को किये जाने वाले बारह श्राद्ध, एक पाक्षिक श्राद्ध[1], एक त्रैपाक्षिक श्राद्ध, एक न्यूनषाण्मासिक श्राद्ध[2] तथा एक न्यूनाब्दिक श्राद्ध करे ॥६५॥ यह मैंने तुम्हें उत्तम षोडशी संज्ञक सोलह श्राद्धों के विषय में बतलाया। हे गरुड ! चरु को पका कर उससे इन

द्वादशं प्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम्। न्यूनषाण्मासिकं पिण्डं दद्यान्न्यूनाब्दिकं तथा[3] ॥६५॥
उत्तमं षोडशं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य! कुर्यादेकादशेऽहनि ॥६६॥
चत्वारिंशत्तथैवाऽष्टौ श्राद्धं प्रेतत्वनाशनम्। यस्य जातं विधानेन स भवेत्पितृपंक्तिभाक् ॥६७॥
पितृपंक्तिप्रवेशार्थं कारयेत्षोडशत्रयम्। एतच्छ्राद्धविहीनश्चेत्प्रेतो भवति सुस्थिरम् ॥६८॥

सभी श्राद्धों को ग्यारहवें दिन (एकादशाह के दिन) भी कर सकता है ॥ ६६ ॥ जिस मृतक के लिए प्रेतत्व से मुक्ति दिलानें वाले ये [षोडशत्रयी के] अड़चालीस श्राद्ध विधि-विधान पूर्वक कर दिये जाते हैं वह पितरों की पंक्ति में आने का अधिकारी हो जाता है ॥ ६७ ॥ अतः प्रेत को पितरों की पंक्ति में प्रवेश दिलाने के लिए

---

१. पाक्षिक श्राद्ध को ही कहीं-कहीं 'ऊनषाण्मासिक श्राद्ध' भी कहा गया है।

२. छठे महीने किये जाने वाले ऊनषाण्मासिक या न्यूनषाण्मासिक श्राद्ध तथा बारहवें महीने किये जाने वाले ऊनाब्दिक या न्यूनाब्दिक श्राद्ध को क्षयाह की तिथि से एक, दो या तीन दिन पूर्व किया जा सकता है। इस विषय में विशेष विचार हेतु द्र०—पराशर माधव, आ० का० पृ० ७७० —७७१ तथा निर्णयसिन्धु पृ० ४२२-४२३।

३. तुलनीय—द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा। त्रिपक्षसंभवञ्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश ॥ गरुडपुराण उ०२५।३७

षोडशत्रयी (अर्थात् मलिन षोडशी, मध्य षोडशी और उत्तम षोडशी संज्ञक श्राद्धों) को अवश्य करे। जिसके ये श्राद्ध नहीं हो पाते हैं वह सदा के लिए प्रेत ही रह जाता है ॥६८॥ जब तक षोडशत्रयी में गिनाये गये श्राद्ध नहीं कर दिये जाते तब तक प्रेत को अपने या पराये किसी के द्वारा प्रदत्त कोई भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो पाता ॥ ६९ ॥ अतः पुत्र विधि-पूर्वक षोडशत्रय संज्ञक श्राद्धों को अवश्य करे। पत्नी भी यदि अपने मृत पति के उक्त षोडशत्रय

यावन्न दीयते श्राद्धं षोडशत्रयसंज्ञकम्। स्वदत्तं परदत्तं च तावन्नैवोपतिष्ठते ॥६९॥ तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं विधिना षोडशत्रयम्। भर्तुर्वा कुरुते पत्नी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम् ॥७०॥ संपरेतस्य या पत्युः कुरुते चौर्ध्वदेहिकम्। क्षयाहं पाक्षिकश्राद्धं सा सतीत्युच्यते मया ॥७१॥ उपकाराय सा भर्तुर्जीवत्येषा पतिव्रता। जीवितं सफलं तस्या या मृतं स्वामिनं भजेत् ॥७२॥

श्राद्धों को करती है तो वह अनन्त श्रेय को प्राप्त करती है ॥ ७० ॥ जो नारी अपने मृत पति की और्ध्वदेहिक क्रिया, क्षयाह[1] श्राद्ध (वार्षिक श्राद्ध) तथा पाक्षिक श्राद्ध[2] (महालय श्राद्ध) करती है उसी को मैं सती (पतिव्रता-साध्वी नारी) कहता हूँ ॥ ७१ ॥ वही नारी पतिव्रता है जो पति की और्ध्वदेहिक क्रिया और अन्य श्राद्ध रूपी उपकार के लिए जीवित रहती है। उसी का जीवन सफल है जो अपने मृत पति की भी श्राद्ध-दान करके सेवा

---

१. मास-पक्ष-तिथिस्पष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि। प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥ व्यास (हेमाद्रि., श्राद्धकल्प, पृ० २८२ में उद्धृत)

२. आश्विने मासि कन्यायां गते वा न गते रवौ। कृष्णपक्षे कृतं श्राद्धं पाक्षिकं तद्विधीयते ॥

करती है ॥७२॥ यदि कोई मनुष्य प्रमादवश अग्नि से जल करके या जल में डूब करके मर जाय तो उसके दाहादि सभी संस्कारों और सभी श्राद्धों को यथाविधि करे ॥ ७३ ॥ यदि कोई मनुष्य प्रमादवश या इच्छापूर्वक सर्प के काटने से मर जाय तो [उसकी अन्त्येष्टि के पश्चात् सभी श्राद्धों को करने के साथ ही] एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास की दोनों पक्षों की नाग-पञ्चमियों को नाग की पूजा करे ॥ ७४ ॥ भूमिपर चावल के या गेहूँ के आटे से

अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियते वह्निवारिभिः। संस्कारप्रमुखं कर्म सर्वं कुर्याद्यथाविधि ॥७३॥ प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वा म्रियते यदि। पक्षयोरुभयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत् ॥७४॥ कुर्यात्पिष्टमयीं लेख्यां नागभोगाकृतिं भुवि। अर्चयेत्तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन च ॥७५॥ प्रदद्याद्धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिलान् क्षिपेत्। आमपिष्टं च नैवेद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत् ॥७६॥ सौवर्णं शक्तितो नागं गां च दद्याद्द्विजन्मने। कृताञ्जलिस्ततो ब्रूया-त्प्रीयतां नागराडिति ॥७७॥ पुनस्तेषां प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम्। तथा लभन्ते स्ववासं

फणयुक्त सर्प की आकृति बनावे और उसे श्वेत पुष्पों, सुगन्धित द्रव्यों और चन्दन से उसकी पूजा करे ॥ ७५ ॥ उसे धूप और दीप दिखा कर उसके ऊपर चावल और तिलों को चढ़ावे तथा [धान या गेहूँ के] कच्चे आटे का नैवेद्य एवं दूध अर्पित करे ॥ ७६ ॥ अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार सोने के नाग तथा गौ का दान ब्राह्मण को दे और तब हाथ जोड़ कर 'नागराज प्रसन्न हों' ऐसा कहे ॥७७॥ तदनन्तर ऐसे मृतकों के लिए नारायणबलि

की क्रिया करे। ऐसा करने से वे सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सारी क्रिया करके एक वर्ष तक अन्न और जल से युक्त घट प्रदान करे अथवा पूरे वर्ष पर्यन्त क्रमशः जलयुक्त पिण्ड

मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥७८॥ एवं सर्वक्रियां कृत्वा घटं सान्नं जलान्वितम्। दद्यादाब्दं यथा-संख्यान् पिण्डान् वा सजलान् क्रमात् ॥ ७९ ॥ एवमेकादशे कृत्वा कुर्यात्सपिण्डनं ततः। शय्यापदानां दानं च कारयेत्सूतके गते ॥ ८० ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे एकादशाहविधिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

प्रदान करे[1] ॥ ७९ ॥ इस प्रकार एकादशाह के कृत्यों को करके [बारहवें दिन या एक वर्ष पश्चात्] सपिण्डीकरण करे। सूतक-निवृत्त हो जाने पर [द्वादशाह के दिन] शय्यादान और पददान करे ॥ ८० ॥

◯•◯

---

१. इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य और लौंगाक्षि आदि के विचार इस प्रकार हैं - अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्। अस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥ याज्ञवल्क्यस्मृ०१।२२५ तु०—लौंगाक्षिस्मृति, पृ०३६६ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ६); द्र०—गरुडपुराण उ० २७।१२-१५ और निर्णयसिन्धु पृ० ४२१। प्रेतत्व एक वर्ष तक बना रहता है—अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य वर्षाच्च वा कृतम्। प्रेतत्वमपि तस्यापि प्रोक्तं संवत्सरं ध्रुवम् ॥ स्कन्द १।२।५०।६४। उसके निमित्त प्रदत्त अन्न और जलयुक्त घट प्रदान से एक वर्ष तक उसका शरीर बनता है। द्र०—स्कन्द १।२।५०।८१-८२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सपिण्डनादिसर्वकर्मनिरूपणम्

गरुड बोले—हे प्रभो ! सपिण्डीकरण की विधि, सूतकनिर्णय तथा शय्यादान और पददान की सामग्री एवं इनके महत्त्व का वर्णन कीजिए ॥१॥ श्रीभगवान् बोले–हे गरुड ! सुनो सपिण्डन आदि की सम्पूर्ण क्रिया के

श्रीगरुडउवाच—

सपिण्डनविधिं ब्रूहि सूतकस्य च निर्णयम् । शय्यापदानां सामग्रीं तेषां च महिमां प्रभो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्यामि सापिण्ड्याद्यखिलां क्रियाम् । प्रेतनाम परित्यज्य यया पितृगणे विशेत् ॥२॥
न पिण्डो मिलितो येषां पितामहशिवादिषु । नोपतिष्ठन्ति दानानि पुत्रैर्दत्तान्यनेकधा ॥३॥

विषय में बतलाता हूँ जिसे करने से मृतक प्रेत संज्ञा से मुक्त होकर पितरों की श्रेणी में प्रवेश पा जाता है ॥२॥ जिनका पिण्ड पितामह और शिव आदि देवों के [पिण्ड के] साथ नहीं मिला दिया जाता अर्थात् जिनका सपिण्डीकरण नहीं किया जाता उनको पुत्रों के द्वारा प्रदत्त अनेकविध दान नहीं प्राप्त हो पाते ॥३॥ और उनका पुत्र भी

सदा अशुद्ध बना रहता है, वह कभी शुद्ध नहीं हो पाता, क्यों कि सपिण्डीकरण किये बिना सूतक समाप्त नहीं होता ॥४॥ अतः पुत्र को सूतक के अन्त में सपिण्डन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिए। अब मैं सभी वर्णों के लिए सूतक-समाप्ति का यथोचित काल बतलाता हूँ ॥ ५ ॥ ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय बारहवें दिन, वैश्य पन्द्रहवें दिन और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥६॥ प्रेत सम्बन्धी सूतक में सपिण्डसम्बन्ध[1] के ज्ञातिजन दश दिन में

अशुद्धः स्यात्सदा पुत्रो न शुद्ध्यति कदाचन। सूतकं न निवर्तेत सपिण्डीकरणं विना ॥४॥
तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं सूतकान्ते सपिण्डनम्। सूतकान्तं प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च यथोचितम् ॥५॥
ब्राह्मणस्तु दशाहेन क्षत्रियो द्वादशेऽहनि। वैश्यः पञ्चादशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति[2] ॥६॥
दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके। त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥७॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे। षष्ठे चतुरहः प्रोक्तं सप्तमे च दिनत्रयम्[3] ॥८॥

शुद्ध होते हैं और कुल के जो लोग सपिण्डसम्बन्ध में नहीं आते वे तीन रातों के पश्चात् शुद्ध होते हैं तथा अन्य सगोत्रा अन्त्येष्टि के पश्चात् स्नान कर लेने पर शुद्ध हो जाते हैं ॥ ७ ॥ समान-पूर्वज की चौथी पीढ़ी तक के कुलबान्धव दश रात्रियों तक सूतक में रहते हैं. पाँचवीं पीढ़ी तक के लोग छः रात्रियों तक, छठीं पीढ़ी में चार दिन,

१.—पितादयस्त्रयश्चैव तथा तत्पूर्वजास्त्रयः। सप्तमः स्यात् स्वयं चैव तत्सापिण्ड्यं बुधैः स्मृतम् ॥ २. तु० — पराशरस्मृति ३।३,४
३. तु०—परा० स्मृ० (परा० मा०) ३।६

सातवीं पीढ़ी में तीन दिन, आठवीं पीढ़ी में एक दिन, नवीं पीढ़ी में दो पहर पर्यन्त और दशवीं पीढ़ी में स्नान करने मात्र तक जन्म और मृत्यु का सूतक रहता है ।।८-९।। परदेश में गये हुए किसी व्यक्ति को अपने कुल में किसी के जन्म या मरण का समाचार दश रात्रि के अन्तर्गत सुनाई पड़ने पर [अथवा परदेश में किसी के जन्म या मरण का समाचार उसके ज्ञाति-बान्धवों को दश रात्रि के भीतर सुनाई पड़ने पर] उतने ही समय तक अशौच

अष्टमे दिनमेकं तु नवमे प्रहरद्वयम् । दशमे स्नानमात्रं हि मृतकं जन्मसूतकम् ।।९।।
देशान्तरगतः कश्चिच्छृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्[1] । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।।१०।।
अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्राद्विशुद्धयति ।।११।।
आद्यभागद्वयं यावन्मृतकस्य च सूतके । द्वितीये पतिते चाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते । १२।।

(सूतक) रहता है, जितना समय दश रात्रियों के बीतने में शेष रहा हो ।।१०।। दश दिन बीतने के पश्चात् [और एक वर्ष के पहले तक] ऐसा समाचार मिलने पर तीन रात तक अशौच रहता है और एक वर्ष व्यतीत होने पर ऐसा समाचार मिलने पर स्नान कर लेने मात्र से शुद्धि हो जाती है ।। १।। मृतक सम्बन्धी सूतक के आरम्भिक दो भागों के बीतने के पहले (अर्थात् छः दिन तक) यदि दूसरा सूतक लग जाय तो प्रथम सूतक के साथ ही दूसरे की भी

---

१. पाठान्तर— ह्यहर्निशम् ।

शुद्धि हो जाती है ॥१२॥ किसी बालक की मृत्यु दाँत निकलने के पूर्व ही जाय तो सद्यः (अर्थात् उसके दफनाने के पश्चात् स्नान कर लेने पर) शुद्धि हो जाती है, इसके अनन्तर चूडाकरण (मुण्डन) होने तक किसी बालक की मृत्यु होने पर एक रात्रि पर्यन्त अशौच रहता है। इस उम्र से लेकर व्रतबन्ध (उपनयन) होने तक किसी बालक की मृत्यु होने पर तीन रातों तक अशौच रहता है और व्रतबन्ध के पश्चात् जिसकी मृत्यु हो उसका अशौच दश रात्रि तक

आदन्तजननात्सद्य आचौलान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्[1] ॥१३॥
आजन्मतस्तु[2] चौलान्तं यत्र कन्या विपद्यते। सद्यः शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥१४॥
ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि। अतः परं प्रवृद्धानां[3] त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥१५॥
वाक्प्रदाने कृते त्वत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम्। पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि[4] ॥१६॥

रहता है ॥१३॥ जब किसी भी वर्ण की कन्या की मृत्यु जन्म से लेकर मुण्डन पर्यन्त कभी भी होती है तो सभी वर्णों में समान रूप से सद्यः (अर्थात् उसको दफनाने के बाद स्नान कर लेने मात्र से) शुद्धि हो जाती है ॥१४॥ यदि कन्या की मृत्यु मुण्डन के पश्चात् वाग्दान (सगाई) पर्यन्त कभी भी होती है तो एक दिन का सूतक लगता है वाग्दान के पश्चात् अथवा बिना वाग्दान के भी बड़ी (सयानी) कन्या की मृत्यु होने पर निश्चयमेव तीन रात्रियों तक सूतक लगता है ॥ १५ ॥ वाग्दान के पश्चात् कन्या की मृत्यु होने पर पिता और वर दोनों के ही कुल में

१. द्र०—आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ याज्ञ० स्मृ० ३।२३, पराशरस्मृति (परा० मा०) ३।१७-८। २. पाठान्तर आजन्मनस्तु। ३ पाठान्तर—प्रवृद्धायां। ४. श्लोक १४ से १६ तक के ये तीन श्लोक स्मृतिचन्द्रिका के आशौचकाण्ड पृ० ३१-३२ में, पद्मपुराण के तथा पराशरमाधव आचारकाण्ड पृ० ६०८ में ब्रह्मपुराण के बतलाये गये हैं।

तीन दिन का सूतक लगता है, किन्तु कन्यादान अर्थात् कन्या का विवाह हो जाने के पश्चात् उसकी मृत्यु होने पर केवल पति के ही कुल में सूतक लगता है ।।१६।। यदि गर्भिणी स्त्रियों का गर्भस्राव छः मास के अन्दर होता है तो जितने मास का गर्भ रहता है उतने ही दिन में वे शुद्ध होती हैं ।।१७।। छः मास के पश्चात् जिनका गर्भस्राव होता है उन स्त्रियों को अपनी जाति के लिए विहित अशौच लगता है । गर्भपात होने पर सपिण्ड सम्बन्ध के लोगोंकी

षण्मासाभ्यन्तरं[1] यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि । तदामाससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ।।१७।।
अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते । सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ।।१८।।
सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा । दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौ शास्त्रस्य निश्चयः ।।१९।।
आशीर्वादं देवपूजां प्रत्युत्थानाभिवन्दनम् । पर्यङ्के शयनं स्पर्शं न कुर्यान्मृतसूतके ।।२०।।
सन्ध्यां दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् । ब्रह्मभोज्यं व्रतं नैव कर्तव्यं मृतसूतके ।।२१।।

सद्यः (स्नान मात्र से) शुद्धि हो जाती है । १८ ।। कलियुग में सभी वर्णों की जन्म और मृत्यु के सूतक की शुद्धि दशवें दिन हो जाती है, ऐसा भी शास्त्र का निर्णय है ।। १९ ।। मृत्यु के सूतक में (मृतकाशौच में) आशीर्वाद-प्रदान, देवपूजा, प्रत्युत्थान (आगन्तुक के स्वागतार्थ उठना), अभिवादन, पलंग या खाट पर शयन तथा किसी अन्य (सूतक-रहित) व्यक्ति का स्पर्श न करे ।।२०।। मृत-सूतक में सन्ध्या, दान, जप, होम, स्वाध्याय,

१,—पाठान्तर—षण्मासाभ्यन्तरे ।

पितृतर्पण, ब्राह्मण-भोजन और व्रत आदि कभी नहीं करना चाहिए ॥ २१ ॥ जो मनुष्य सूतक में नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्म करता है उसके पहले किये हुए नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मचर्य या कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत (या तप) करने वाले, निरन्तर मन्त्र जप से पवित्र रहने वाले, अग्निहोत्री ब्राह्मण, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और योगी तथा राजा को सूतक नहीं लगता ॥ २३ ॥ विवाह, उत्सव और यज्ञों में मृत-सूतक

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सूतके यः समाचरेत् । तस्य पूर्वकृतं नित्यादिकं कर्म विनश्यति ॥२२॥
व्रतिनो मन्त्रपूतस्य साग्निकस्य द्विजस्य च । ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञां च सूतकम् ॥२३॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु जाते च मृतसूतके । तस्य पूर्वकृतं चान्नं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥२४॥
सूतके यस्तु गृह्णाति तदज्ञानान्न दोषभाक् । दाता दोषमवाप्नोति याचकाय ददन्नपि ॥२५॥
प्रच्छाद्य सूतकं यस्तु ददात्यन्नं द्विजाय च । ज्ञात्वा गृह्णन्ति ये विप्रा दोषभाजस्त एव हि ॥ २६ ॥ तस्मात्सूतकशुद्ध्यर्थं पितुः कुर्यात्सपिण्डनम् । ततः पितृगणैः सार्धं पितृलोकं

हो जाने पर उसके पहले से पकाये हुए अन्न को खाया जा सकता है, ऐसा मनु ने कहा है ॥२४॥ सूतक का ज्ञान न होने पर यदि कोई सूतक वाले घर का अन्न खाता है तो वह दोषी नहीं होता, किन्तु याचक को सूतक का अन्न देने वाले दाता को दोष लगता है ॥२५॥ जो सूतक को छिपा कर ब्राह्मण को अन्न देता है अर्थात् भोजन कराता है वह दाता तथा जो ब्राह्मण जानते हुए भी सूतक में भोजन करते हैं वे सब भी दोषी होते हैं ॥ २६ ॥ अतः

सूतक से शुद्धि के लिए पिता का सपिण्डीकरण करे, तभी वह प्रेतत्व से मुक्त होकर पितृगणों के साथ मिल कर पितृलोक को जाता है ॥ २७ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने बारहवें दिन, तीन पक्ष बीतने पर, छः महीने में अथवा एक वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण करने को कहा है ॥ २८ ॥ हे गरुड ! मैंने तो धर्मशास्त्रानुसार चारों वर्णों के लिए बारहवें दिन सपिण्डीकरण विहित किया है ॥ २९ ॥ कलियुग में धर्मभावना की अनित्यता, पुरुषों की आयु

स गच्छति ॥ २७ ॥ द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा । सपिण्डीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२८॥ मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य ! शास्त्रधर्मानुसारतः । चतुर्णामेव वर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥ २९ ॥ अनित्यात्कलिधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते ॥३०॥ व्रतबन्धोत्सवादीनि व्रतस्योद्यापनानि च । विवाहादि भवेन्नैव मृते च गृहमेधिनि ॥ ३१ ॥ भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति हन्तकारो न गृह्यते । नित्यं

के क्षीण होने और शरीर के अस्थिर होने के कारण बारहवें दिन ही सपिण्डीकरण करना उचित है ॥ ३० ॥ गृहस्थ की मृत्यु हो जाने पर व्रतबन्ध (उपनयन), यज्ञ-याग और होली, दीपावली आदि उत्सव, व्रतों के उद्यापन और विवाह आदि नहीं हो सकते ॥३१॥ जब तक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तब तक भिक्षु उस घर से भिक्षा नहीं ले पाता और अतिथि हन्तकार [गृहस्थ के द्वारा अतिथिसत्कार रूप में दिया जाने वाला अन्न आदि का

उपहार) नहीं ग्रहण कर पाता और नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म भी नहीं हो पाते हैं ॥ ३२ ॥ नित्य-नैमित्तिकादि कर्मों का लोप होने से दोष लगता है, अतः चाहे कोई अग्निहोत्री हो या अग्निहोत्रग्रहणरहित उसे बारहवें दिन सपिण्डीकरण कर देना चाहिए ॥ ३३ ॥ सभी तीर्थों में स्नान तथा सभी यज्ञों को करने से जो फल प्राप्त होता है वही फल बारहवें दिन सपिण्डीकरण करने से प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ अतः पुत्र स्नान करके मृतक के स्थान

नैमित्तिकं लुप्येद्यावत्पिण्डो न मेलितः ॥३२॥ कर्मलोपात्प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिण्डनम्। निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत् ॥३३॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति द्वादशाहे सपिण्डनात् ॥ ३४ ॥ अतः स्नात्वा मृतस्थाने गोमयेनोपलेपिते। शास्त्रोक्तेन विधानेन सपिण्डीं कारयेत्सुतः ॥ ३५ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेदेवांश्च पूजयेत्। कुपित्रे विकिरं दत्त्वा पुनश्चाप उपस्पृशेत् ॥ ३६ ॥ दद्यात्पितामहादीनां

को गोबर से लीप कर शास्त्र द्वारा कथित विधान के अनुसार सपिण्डीकरण करे ॥ ३५ ॥ इसमें पहले विश्वेदेवों की पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि से पूजा करे, तब जिन पितरों की सद्गति नहीं हुई हो उनके लिए भूमि में विकिर देकर (अन्न-कणों को बिखेर कर)[२] पुनः आचमन करे ॥ ३६ ॥ तब वसु, रुद्र और आदित्य स्वरूप पितामह

१. पाठातर—कौ पित्रे।   २.—जिन पितरों की सद्गति न हुई हो उन्हें विकिरान्न-भागी बतलाया गया है। द्र०—अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि। तेन तृप्तिमुपायन्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ मार्क० २८।८, स्कन्द ७।१।२०५।२३। तथा—ये चादग्धाः कुले बालाः स्त्रियो याश्चाप्यसंस्कृताः। विपिन्नास्ते तु विकिरसंमार्जन सुलालसाः ॥ स्कन्द ७।१।२०५।२७, तु मार्क० २८।१२। विशेष विवरण हेतु द्र०—हेमाद्रिः श्राद्धकल्प पृ० १३९९–१४००, श्राद्धमयूख पृ० ९२ निर्णयसिन्धु पृ० ३२०

आदि पितरों को क्रमशः तीन पिण्ड देकर चौथा पिण्ड मृतक को प्रदान करे ॥ ३७ ॥ तब चन्दन, तुलसीदल, धूप, दीप, सुस्वादु भोजन, मुखवास (ताम्बूल, लवंग, इलायची आदि) वस्त्र और दक्षिणा से पूजन करे ॥३८॥ तब सोने की शलाका से प्रेत के पिण्ड के तीन भाग करके एक-एक भाग को पितामह आदि के पिण्ड से मिलावे अर्थात् एक भाग पितामह के पिण्ड में, दूसरा प्रपितामह के पिण्ड में और तीसरा वृद्धप्रपितामह के पिण्ड में

त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् । वसुरुद्रार्करूपाणां चतुर्थं मृतकस्य च ॥ ३७ ॥ चन्दनैस्तुलसीपत्रैर्धूपैर्दीपैः सुभोजनैः । मुखवासैः सुवस्त्रैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥ ३८ ॥ प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा सुवर्णस्य शलाकया । पितामहादिपिण्डेषु मेलयेत्तं पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥ पितामह्या समं मातुः पितामहसमं पितुः । सपिण्डीकरणं कुर्यादिति तार्क्ष्य ! मतं मम ॥ ४० ॥ मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः । तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ ४१ ॥ तेभ्यश्च पैतृकं पिण्डं मेलयेत्तं त्रिधा कृतम् । मातर्यग्रे प्रशान्तायां विद्यते च पितामही ॥४२॥

मिलावे ॥ ३९ ॥ हे गरुड ! मेरा यह मत है कि माता के पिण्ड को पितामही के पिण्ड के साथ और पिता के पिण्ड को पितामह के पिण्ड के साथ मिला कर सपिण्डीकरण करना चाहिए ॥ ४० ॥ जिसके पिता की मृत्यु हो गयी हो किन्तु पितामह जीवित हो वह प्रपितामह आदि को तीन पिण्ड प्रदान करे [और चौथा पिण्ड पिता को दे] ॥४१॥ और पिता के तीन भाग करके उसका एक-एक भाग क्रमशः प्रपितामह आदि के पिण्ड के साथ मिलावे । यदि माता की मृत्यु हो जाय और पितामही जीवित हो तो माता के सपिण्डीकरण श्राद्ध में भी उपर्युक्त

पितृश्राद्ध के समान विधि अपनावे अर्थात् माता के पिण्ड के तीन भाग करके उसके एक-एक भाग को प्रपितामही आदि के पिण्ड के साथ मिलावे। अथवा पितामह के जीवित रहते पिता की मृत्यु होने पर पिता के पिण्ड को मेरे अर्थात् विष्णु के साथ मिलावे और पितामही के जीवित रहते हुए माता की मृत्यु होने पर माता के पिण्ड को महालक्ष्मी के साथ मिलावे। [अथवा इसका यह तात्पर्य भी हो सकता है कि पिता के पिण्ड के तीन भाग

तदा मातृकश्राद्धेऽपि कुर्यात्पैतृकवद्विधिम्। यद्वा मयि महालक्ष्म्या तयोः पिण्डं च मेलयेत् ।।४३।। अपुत्रायाः स्त्रियाः कुर्यात्पतिः सापिण्डनादिकम्। श्वश्र्वादिभिः सहैवाऽस्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ।।४४।। भर्त्रादिभिस्त्रिभिः कार्यः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। नैतन्मम मतं तार्क्ष्य! पत्या सापिण्ड्यमर्हति ।। ४५ ।। एकां चितां समारूढौ दम्पती यदि काश्यप। तृणमन्तरतः कृत्वा

में से एक भाग पितामह के स्थान पर विष्णु में तथा शेष दो भाग क्रमशः प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह के पिण्ड में मिलावे तथा माता के पिण्ड के तीन भागों में से एक भाग पितामही के स्थान पर महालक्ष्मी में तथा दूसरे और तीसरे भाग को क्रमशः प्रपितामही और वृद्धप्रपितामही के पिण्ड में मिलावे] ।। ४२–४३ ।। पुत्रहीन स्त्री की मृत्यु होने पर पति उसका सपिण्डीकरण आदि कर्म करे। उसका सपिण्डीकरण उसकी सास आदि के साथ ही होता है ।। ४४ ।। [एक मतानुसार] स्त्री का सपिण्डीकरण पति, श्वशुर और वृद्धश्वशुर तीनों के साथ करना चाहिए। हे गरुड! यह मत मुझे अभीष्ट नहीं है, किन्तु स्त्री का सपिण्डीकरण पति के साथ हो सकता है ।।४५।। हे गरुड! यदि पति-पत्नी एक ही चिता पर आरूढ हुए हों अर्थात् यदि उन दोनों का दाह-संस्कार एक ही

चिता में हुआ हो तो उनके पिण्ड या पिण्डों के तीन भाग करके प्रत्येक भाग को श्वशुर आदि के पिण्ड के साथ बीच में तृण रख कर मिलावे ॥ ४६ ॥ [जब पति-पत्नी का दाह-संस्कार एक साथ किया गया हो तो] एक ही पुत्र पहले पिता का पिण्डदान आदि करे तत्पश्चात् [स्नान करके ?] अपनी सती जननी का पिण्डदान आदि करे और तब पुनः स्नान करे ॥ ४७ ॥ जिस सती ने पति के निधन के दश दिन के अन्दर अग्निप्रवेश किया

श्वशुरादेस्तदाचरेत् ॥ ४६ ॥ एक एव सुतः कुर्यादादौ पिण्डादिकं पितुः । तदूर्ध्वं च प्रकुर्वीत सत्याः स्नानं पुनश्चरेत् ॥ ४७ ॥ हुताशं या समारूढा दशाहाभ्यन्तरे सती । तस्या भर्तुर्दिने कार्यं शय्यादानं सपिण्डनम् ॥ ४८ ॥ कृत्वा सपिण्डनं तार्क्ष्य ! प्रकुर्यात्पितृतर्पणम् । उदाहरेत्स्वधाकारं वेदमन्त्रैः समन्वितम् ॥४९॥ अतिथिं भोजयेत्पश्चाद्धन्तकारं च सर्वदा । तेन तृप्यन्ति पितरो मुनयो देवदानवाः ॥५०॥ ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुर्ग्रासं तु पुष्कलम् ।

हो उसका शय्यादान और सपिण्डन आदि उसी दिन करे जिस दिन पति का किया जाता है ॥ ४८ ॥ हे गरुड ! सपिण्डीकरण करके पितृतर्पण करे और इसमें वेदमन्त्रों के साथ स्वधाकार का उच्चारण करे ॥४९॥ तत्पश्चात् सर्वदा अतिथि को भोजन करावे तथा हन्तकार [रूप में अन्न प्रदान] करे। ऐसा कनने से पितर, मुनिगण, देवगण और दानव भी तृप्त होते हैं ॥ ५० ॥ भिक्षा एक ग्रास के बराबर होती है और चार ग्रास का पुष्कल होता है और चार

पुष्कल का एक हन्तकार होता है ॥ ५१ ॥ सपिण्डीकरण में विप्र के चरणों की चन्दन और अक्षतों से पूजा करे तथा पितरों की अक्षय-तृप्ति के निमित्त उसको दान देना चाहिए ॥५२॥ तब आचार्य को वर्ष-भर की जीविका के लिए पर्याप्त घृत, अन्न, सोना, चाँदी, अच्छी गौ, अश्व, हाथी, रथ और भूमि का दान करे ॥५३॥ तब स्वस्ति-वाचनपूर्वक नवग्रहों, देवी तथा विनायक का कुङ्कुम, अक्षत और नैवेद्य से समन्त्रक पूजन करे ॥ ५४ ॥ तब

पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ॥ ५१ ॥ सपिण्ड्यां विप्रचरणौ पूजयेच्चन्दनाक्षतैः । दानं तस्मै प्रदातव्यमक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥ ५२ ॥ वर्षवृत्तिं घृतं चान्नं सुवर्णं रजतं सुगाम् । अश्वं गजं रथं भूमिमाचार्याय प्रदापयेत् ॥५३॥ ततश्च पूजयेन्मन्त्रैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कुङ्कुमाक्षतनैवेद्यैर्ग्रहान्देवीं विनायकम् ॥ ५४ ॥ आचार्यस्तु ततः कुर्यादभिषेकंसमन्त्रकम् । बद्ध्वा सूत्रं करे दद्यान्मन्त्रपूतांस्तथाक्षतान् ॥ ५५ ॥ ततश्च भोजयेद्विप्रान्मिष्टान्नैर्विविधैः शुभैः । दद्यात्सदक्षिणां तेभ्यः सजलान्नान् द्विषड्घटान् ॥ ५६ ॥ वार्यायुधप्रतोदस्तु दण्डस्तु

आचार्य उस क्रियाकर्ता का समन्त्रक अभिषेक करे और उसके हाथ में रक्षासूत्र बाँध कर उसे आशीर्वादात्मक मन्त्र-पाठ से पवित्र अक्षत प्रदान करे ॥५५॥ तब बारह ब्राह्मणों को विविध मिष्टान्न युक्त सुस्वादु भोजन कराके दक्षिणा सहित जल और अन्न से युक्त बारह घट प्रदान करे ॥ ५६ ॥ तदनन्तर चारों वर्णों में से अपनी शुद्धि हेतु ब्राह्मण

को जल का, क्षत्रिय को शस्त्र का, वैश्य को प्रतोद (कोड़े) का तथा शूद्र को दण्ड (डण्डे) का स्पर्श करना चाहिए । तब वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार सपिण्डन करने के पश्चात् क्रिया करने के लिए पहने हुए वस्त्रों को उतार कर उन्हें त्याग दे और तब शुक्ल (सफेद) वस्त्र धारण करके शय्यादान करे ॥ ५८ ॥ इन्द्र आदि सभी देवता शय्यादान की प्रशंसा करते हैं अतः किसी पारिवारिक जन के मरने पर अथवा जीवन काल में

द्विजभोजनात् । स्पृष्टव्याश्च ततो वर्णैः शुध्येरन् ते ततः क्रमात् ॥ ५७ ॥ एवं सपिण्डनं कृत्वा क्रियावस्त्राणि सन्त्यजेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा शय्यादानं प्रदापयेत् ॥५८॥ शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवाः सवासवाः । तस्माच्छय्या प्रदातव्या मरणे जीवितेऽपि वा ॥ ९॥ सारदारुमयीं रम्यां सुचित्रैश्चित्रितां दृढाम् । पट्टसूत्रैर्विततनितां हेमपत्रैरलंकृताम् ॥६०॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानिकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां पुष्पगन्धैः सुवासिताम् ॥६१॥

ही शय्यादान करना चाहिए ॥ ५९ ॥ वह शय्या पुष्ट (मजबूत) काठ की बनी हुई, रमणीय, सुन्दर (सुशोभन) चित्रों से अङ्कित, दृढ़, रेशमी सूत से बुनी हुई और सुवर्ण-पत्रों (सोने की या सुनहली धातु की परतों) से अलङ्कृत हो ॥ ६० ॥ उसमें हंस के समान धवल रुई का गद्दा (तूली) बिछा हो, सुन्दर शीर्षोपधान (तकिया) लगा हो तथा उसके ऊपर प्रच्छादन पटी (आवरण रूप में बिछायी जाने वाली चादर) बिछी हुई हो और वह

ग० पु०

सुगन्धित पुष्पों से सुवासित हो ॥ ६१ ॥ वह शय्या दिव्य (सुन्दर) बन्धों (खाट को खींचने के लिए कसी हुई रस्सियों के बन्धनों से युक्त, विशाल और सुखप्रद होनी चाहिए। इस प्रकार अलंकृत शय्या को सुसज्जित करके [कुशा या दरी-चादर आदि से] बिछायी हुई भूमि में रखे ॥ ६२ ॥ उसमें छत्र (छाता), चाँदी[1] का दीपालय (दीवट या दिया), चामर, आसन, पात्र, भृङ्गारक (झारी या कलश), करक (गडुवा), दर्पण, पाँच रंगों से

दिव्यबन्धैः सुबद्धां च सुविशालां सुखप्रदाम्। शय्यामेवं विधां कृत्वा ह्यास्तृतायां[2] न्यसेद्भुवि ॥ ६२ ॥ छत्रं दीपालयं रौप्यं चामरासनभाजनम्। भृङ्गारं करकादर्शं पञ्चवर्णवितानकम् ॥ ६३ ॥ शयनस्य भवेत्किञ्चिद्यच्चान्यदुपकारकम्। तत्सर्वं परितस्तस्याः स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् ॥ ६४ ॥ तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम्। सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम् ॥ ६५ ॥ स्त्रीणां च शयने धृत्वा कज्जलालक्तकुङ्कुमम्। वस्त्रं भूषादिकं यच्च सर्वमेव प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥

भा.टी.

चित्रित चँदोवा और अन्य जो कोई भी वस्तु शयनोपयोगी (या शय्या में विश्राम दिलाने में सहायक हों) उन सब को शय्या के चारों ओर यथास्थान सज्जित करके रखे ॥ ६३–६४ ॥ तब शय्या के ऊपर सुवर्ण से निर्मित लक्ष्मी सहित नारायण (विष्णु) की प्रतिमा को समस्त आभूषणों, आयुधों तथा वस्त्रों से सुसज्जित करके रखे ॥ ६५ ॥ सौभाग्यवती स्त्रियों के निमित्त किये जाने वाले शय्यादान में उपर्युक्त वस्तुओं के साथ ही काजल, आलता (महावर)

१.—पितरों को रजत (चाँदी) का दान और इसके पात्रों का प्रयोग विशेष प्रिय है। द्र० हेमादि, श्राद्धकल्प, पृ०—६५७—६३० तथा ६७०—६७२, निर्णयसिन्धु पृ० ३०४ २.—पाठान्तर—विस्तृतायां।

कुङ्कुम, वस्त्र, आभूषण आदि जो कुछ भी सुहाग की वस्तुएँ हैं उन सबको रखावे ॥ ६६ ॥ तब सपत्नीक ब्राह्मण को गन्ध-पुष्प आदि से अलंकृत करके तथा सोने के कान के आभूषण, सोने की अँगूठी और सोने के कण्ठसूत्र से विभूषित करके, उष्णीष (पगड़ी), उत्तरीय (दुपटा) तथा चोला (अंगरखा) पहना करके सुख-शय्या में लक्ष्मी-नारायण के आगे बैठावे ॥ ६७–६८ ॥ तब कुङ्कुम (रोली) और पुष्पों की माला से लक्ष्मी-नारायण की

ततो विप्रं सपत्नीकं गन्धपुष्पैरलङ्कृतम् । कर्णाङ्गुलीयाभरणैः कण्ठसूत्रैश्च काञ्चनैः ॥६७॥
उष्णीषमुत्तरीयं च चोलकं परिधाय च । स्थापयेत्सुखशय्यायां लक्ष्मीनारायणाग्रतः ॥६८॥
कुङ्कुमैः पुष्पमालाभिर्हरिं लक्ष्मीं समर्चयेत् । पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान् देवीं विनायकम् ॥६९॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम् । उच्चारयेदिमं मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः ॥७०॥
यथा कृष्ण त्वदीयास्ति शय्या क्षीरोदसागरे । तथा भूयादशून्येयं मम जन्मनि जन्मनि ॥७१॥
एवं पुष्पाञ्जलिं विप्रे प्रतिमायां हरेः क्षिपेत् । ततः सोपस्करं शय्यादानं संकल्पपूर्वकम् ॥७२॥

पूजा करे तथा लोकपालों, ग्रहों, देवी और विनायक की पूजा करे ॥ ६९ ॥ तब उत्तराभिमुख होकर पुष्पाञ्जलि लेकर ब्राह्मण के आगे खड़ा होकर यह मन्त्र पढ़े ॥ ७० ॥ हे विष्णो ! जैसी क्षीरसागर में तुम्हारी शय्या है उसी प्रकार मेरी [तथा जिसके निमित्त यह शय्या दी जा रही है उसकी] शय्या अगले जन्म-जन्मान्तर तक कभी शून्य (सूनी) न होवे ॥ ७१ ॥ ऐसा कहकर विष्णु की प्रतिमा तथा उस ब्राह्मण के ऊपर पुष्पाञ्जलि चढ़ा कर सङ्कल्प

करके समस्त सामग्री सहित शय्या का दान व्रतोपदेशक ब्रह्मवादी गुरु को देते हुए कहे कि हे ब्राह्मण ! आप "कोऽदात् कस्मा अदात्-" इत्यादि (यजुर्वेद ७।४८ के) मन्त्र को पढ़ते हुए इस शय्या को ग्रहण करें ॥७२–७३॥ तब शय्या पर स्थित द्विज एवं लक्ष्मी सहित विष्णु को आन्दोलित करे (हिलावे) और तदनन्तर उनकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विसर्जित (विदा) करे ॥ ७४ ॥ यदि धन-वैभव पर्याप्त हो तो सभी उपकरणों (गृहस्थी के साधनों)

दद्याद्व्रतोपदेष्ट्रे च गुरवे ब्रह्मवादिने । गृहाण ब्राह्मणेनां त्वं 'कोऽदात्' इति च' कीर्तयन् ॥७३॥
आन्दोलयेद्द्विजं लक्ष्मीं हरिं च शयने स्थितम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥७४॥
सर्वोपस्करणैर्युक्तं प्रदद्यादतिसुन्दरम् । शय्यायां सुख-सुप्त्यर्थं गृहं च विभवे सति ॥७५॥
जीवमानः स्वहस्तेन यदि शय्यां ददाति यः । स जीवंश्च[2] वृषोत्सर्गं पर्वणीषु समाचरेत् ॥७६॥
इयमेकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन । सा विभक्ता च विक्रीता दातारं पातयत्यधः ॥७७॥

सहित अति सुन्दर घर भी ब्राह्मण को दान करे ताकि उसमें रह कर वह उस शय्या में सुख पूर्वक सो सके ॥७५॥ जो मनुष्य अपनी जीवितावस्था में शय्यादान करता है वह अपने जीवन-काल में ही पर्वणी (पर्व+ल्युट्+ङीप्) अर्थात् पूर्णिमा के दिन वृषोत्सर्ग भी करे ॥ ७६ ॥ यह शय्या एक ही ब्राह्मण को दी जानी चाहिए इस (एक

१. पाठान्तर—को ददातीति । संभवत: 'कोऽदात्' पाठ रखने पर छन्द पूरा न हो पाने के कारण ही मुद्रित प्रतियों में 'को ददतीति' पाठ बनाया गया है । किन्तु 'कोऽदादिति च कीर्तयन्' पाठ बना देने पर मन्त्र, छन्द और अर्थ तीनों की संगति बैठ जाती है । यजु० ७।४८ का पाठ इस प्रकार है—कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ २. पाठान्तर—सजीवता ।

शय्या) का दान बहुत-से ब्राह्मणों को कभी नहीं देना चाहिए। इसका अनेक ब्राह्मणों में यदि विभाजन किया गया या प्रतिग्रहीता के द्वारा इसका विक्रय किया गया तो यह दाता का अधःपतन करा देती है ॥ ७७ ॥ सत्पात्र को शय्यादान करके दाता मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। इसके दान से पिता और इसका दाता पुत्र दोनों ही इहलोक में तथा परलोक में भी प्रसन्न (सुखी) होते हैं ॥ ७८ ॥ शय्यादान के प्रभाव से इसका दाता दिव्य

पात्रे प्रदाय शयनं वाञ्छितं फलमाप्नुयात्। पिता च दाता तनयः परत्रेह च मोदते ॥७८॥
पुरन्दरगृहे दिव्ये सूर्यपुत्रालयेऽपि च। उपतिष्ठेन्न सन्देहः शय्यादानप्रभावतः ॥७९॥
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। आभूतसम्प्लवं यावत् तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥८०॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वपर्वदिनेषु च। तेभ्यश्चाप्यधिकं पुण्यं शय्यादानोद्भवं भवेत् ॥८१॥
एवं दत्त्वा सुतः शय्यां पददानं प्रदापयेत्। तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥८२॥

इन्द्र-लोक तथा यमलोक में भी सुख से पहुँचता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ सुन्दर विमान में स्थित और अप्सराओं के द्वारा सेवित होता हुआ वह मनुष्य महाप्रलयपर्यन्त स्वर्ग में निरातङ्क होकर रहता है ॥८०॥ सभी तीर्थों में और सभी पर्वों के दिनों में स्नान-दान कर जो पुण्य होता है उससे अधिक पुण्य शय्यादान से होता है ॥ ८१ ॥ पुत्र इस प्रकार शय्यादान करके पददान करे। उसकी मेरे द्वारा कथित विधि सुनो, मैं तुम्हें यथावत्

बतलाता हूँ ॥८२॥ छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका (अँगूठी) कमण्डलु, आसन और पञ्चपात्र को सप्तविध पदों में गिना गया है ॥ ८३ ॥ दण्ड, ताम्रपात्र, कच्चा अन्न, पक्वान्न-भोजन, आज्य और यज्ञोपवीत को मिला कर पदों की संख्या पूर्ण होती है ॥ ८४ ॥ यथाशक्ति (अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार) इन तेरह पदों को प्रस्तुत करके बारहवें दिन तेरह ब्राह्मणों को प्रदान करे ॥ ८५ ॥ इस पद-दान को करने से धार्मिक जन

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः । आसनं पञ्चपात्राणि पदं सप्तविधं[1] स्मृतम् ॥८३॥
दण्डेन ताम्रपात्रेण ह्यामान्नैर्भोजनैरपि । आज्य[2]-यज्ञोपवीतैश्च पदं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥८४॥
त्रयोदशपदानीत्थं यथाशक्त्या विधाय च । त्रयोदशेभ्यो विप्रेभ्यः प्रदद्याद् द्वादशेऽहनि ॥८५॥
अनेन पददानेन धार्मिका यान्ति सद्गतिम् । यममार्गगतानां च पददानं सुखप्रदम् ॥८६॥
आतपस्तत्र वै रौद्रो दह्यते येन मानवः । छत्रदानेन सुच्छाया जायते तस्य मूर्द्धनि ॥८७॥

सद्गति को प्राप्त करते हैं और यममार्ग को प्राप्त मनुष्यों को भी पद-दान से सुख प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ उस यममार्ग में अति प्रचण्ड घाम रहता है, जिससे मनुष्य जलने लगता है। पद-दान में छाते का दान दिये जाने के फलस्वरूप उस यममार्ग में उसके शिर पर सुखद छाया हो जाती है ॥ ८७ ॥ जो मनुष्य उपानद् (जूते)

---

१. पाठान्तर—पञ्चविधं । स्वीकृत पाठ के समर्थन के लिए द्र० गरुडपुराण उ० ८।१६ ।

२. पाठान्तर—अर्घ्यं । स्वीकृतपाठ का समर्थन गरुडपुराण ३०८।२४ से होता है ।

का दान करते हैं वे यमलोक के अत्यन्त कण्टकाकीर्ण (काँटों से भरे हुए) मार्ग में अश्व में आरूढ होकर जाते हैं ॥ ८८ ॥ हे गरुड ! उस यमलोक के मार्ग में तीव्र शीत, गरमी और तेज हवा मे घोर दुःख मिलता है। वस्त्रदान के प्रभाव से मनुष्य उस मार्ग को सुख-पूर्वक पार कर लेता है ॥ ८९ ॥ मुद्रिका (अँगूठी) के दान के प्रभाव से उस जीव को यमलोक के मार्ग में अत्यन्त रौद्र (भयङ्कर) विकराल और कृष्ण-पिङ्गल (काले और

अतिकण्टकसङ्कीर्णे[1] यमलोकस्य वर्त्मनि। अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ[2] ॥८८॥

शीतोष्णवातदुःखानि तत्र घोराणि खेचर। वस्त्रदानप्रभावेण सुखं निस्तरते[3] पथि ॥८९॥

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति तं मार्गे मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥९०॥

बहुघर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ॥९१॥

मृतोद्देशेन यः दद्याद्जलपात्रं च ताम्रजम्। प्रपादानसहस्रस्य यत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम् ॥९२॥

पीले वर्ण के) यमदूत नहीं पीडित करते हैं ॥९०॥ अत्यन्त घाम (धूप) से पूर्ण, हवा से रहित और जल-विहीन यममार्ग में जाने वाला तृषित (प्यासा) जीव कमण्डलु के दान के प्रभाव से जल पी पाता है ॥९१॥ जो मनुष्य मृतक के निमित्त ताँबे के जल-पात्र का दान करता है वह निश्चय ही एक सहस्र प्रपा (प्याऊ) के दान का फल

---

१. पाठान्तर–अतिसङ्कटसंकीर्णे। २. पाठान्तर–ददन्ते यद्यु पानहौ। ३. आर्ष प्रयोग।

प्राप्त करता है ॥९२॥ ब्राह्मण को सम्यक् रूप से आसन और भोजन दिये जाने पर मृतक यममार्ग में शनैः-शनैः चलता हुआ सुखपूर्वक पाथेय (भोज्य पदार्थ) को खाता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार सपिण्डीकरण के दिन विधि-विधान-पूर्वक दान देकर बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा चण्डाल आदि को भी भोजन दे ॥ ९४ ॥ तब सपिण्डीकरण के दिन से लेकर एक वर्ष पूर्ण होने तक [प्रेत के निमित्त] प्रतिमास पिण्डदान और [अन्नसहित

आसनं भोजनं[1] चैव दत्ते सम्यग्द्विजातये। सुखेन भुङ्क्ते पाथेयं पथि गच्छञ्छनैः शनैः ॥९३॥
एवं सपिण्डनदिने दत्त्वा दानं विधानतः। बहून् सम्भोजयेद्विप्रान् यः श्वपाकादिकानपि ॥९४॥
ततः सपिण्डनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि। प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुम्भः सपिण्डकः ॥९५॥
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग!। प्रेतार्थं तु पुनः कुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥९६॥
अतः विशेषं वक्ष्यामि मासिकस्याब्दिकस्य च। पाक्षिकस्य विशेषं च विशेषतिथिसंस्थिते[2] ॥९७॥

जलपूर्ण घट का भी दान करना चाहिए ॥९५॥ हे गरुड ! [यज्ञ, देवपूजा, व्रतोद्यापन आदि धार्मिक अनुष्ठानों के विषय में यह एक सामान्य नियम है कि यदि किसी अनुष्ठान को कोई] कृत्य सम्पन्न हो चुका है तो उसे पुनः नहीं किया जाता, किन्तु प्रेत-कार्य के विषय में यह नियम नहीं लागू होता। प्रेत की अक्षय-तृप्ति के उद्देश्य से उसके निमित्त पिण्डदान आदि को पुनः कर सकता है ॥ ९६ ॥ अतः तिथि-विशेष में मरने वाले के वार्षिक,

१. पाठान्तर—आसने भोजने। निर्णयसागर एवं वेङ्कटेश्वर संस्करण आदि संस्करणों में स्वीकृत पाठ।

मासिक तथा पाक्षिक श्राद्ध के विषय में कुछ विशेष नियम बतलाता हूँ ॥ ९७ ॥ जिसकी मृत्यु पूर्णिमा को हुई हो उसकी ऊनिका तिथि (अर्थात् न्यूनमासिक या पाक्षिक श्राद्ध के लिए विहित रिक्ता तिथि) चतुर्थी होती है और जिसकी मृत्यु चतुर्थी तिथि को हुई हो उसकी ऊनिका (रिक्ता) तिथि नवमी होती है ॥ ९८ ॥ जिसकी मृत्यु नवमी को हुई हो उसकी रिक्ता (न्यूनमासिक या पाक्षिक श्राद्ध की ऊनिका) तिथि चतुर्दशी होती है । इस

पौर्णमास्यां मृतो यस्तु चतुर्थी तस्य ऊनिका । चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य ऊनिका ॥ ९८ ॥ नवम्यां तु मृतो यस्तु रिक्ता तस्य चतुर्दशी । इत्येवं पाक्षिकं श्राद्धं कुर्याद्विंशतिमे दिने ॥ ९९ ॥ एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः । मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासे[1] हि शस्यते[2] ॥ १०० ॥ एकस्मिन्मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः ।

प्रकार उक्त (पूर्णिमा, चतुर्थी और नवमी) तिथियों को मृत मनुष्य का पाक्षिक श्राद्ध बीसवें दिन करे ॥ ९९ ॥ जब एक ही मास में दो संक्रान्तियाँ हों तो दोनों ही मासों के मासिक श्राद्ध को मलमास में ही करना चाहिए

(श्लो. सं. ९७ की टिपणी) (२) पाठान्तर—विशेषतिथिषु मृ तें, विशेषं तिथिषु मृते । १. यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा । मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः ॥ (समयमूख पृं१६५ में उद्धृत) चान्द्रो मासोऽप्यसंक्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः । (हेमाद्रि : कालनिर्णयखण्ड पृ० २६ में उद्धृत) । अमावास्याद्वयं यत्र रविसंक्रान्तिवर्जितम् । मलिम्लुचः स विज्ञेय उत्तरस्तूत्तमाभिधः ॥ (कालनिर्णयखण्ड पृ० २६।२७ में उद्धृत)।असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद् द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचिद्—सिद्धान्तशिरोमणि । २. तु०—एक एव···· मलमासेऽपि शस्यते । (हेमाद्रि द्वारा कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७ में उद्धृत) । मलमास में पड़ने वाले मासिक श्राद्ध, वार्षिक श्राद्ध और सपिण्डीकरणश्राद्ध के विषय में द्रष्टव्य—हेमाद्रि : कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७।५८, श्राद्धकल्प पृ० २२७ तथा समयमयूख पृ० १६५-१७१ आदि ।

॥ १०० ॥ यदि एक ही मास में दो मास हों (अर्थात् जब एक ही मास में दो मासों के मासिक श्राद्ध करने हों) तो उस मास के ही वे दोनों पक्ष और वे ही तीस तिथियाँ उन दोनों मासों की मानी जावेंगी ॥ १०१ ॥ मलमास में पड़ने वाले उन दोनों मासों के [मासिक श्राद्ध के] विषय में विद्वानों ने यह व्यवस्था सोचनी चाहिए कि श्राद्ध-तिथि के दिन के पूर्वार्द्ध में प्रथम मास का श्राद्ध करे और द्वितीयार्द्ध भाग में (दोपहर के बाद)

तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि ॥१०१॥ तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयाऽर्धे तदुत्तरः। मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ मलमासस्य मध्यगौ ॥ १०२ ॥ असंक्रान्ते च कर्तव्यं सपिण्डीकरणं खग!। तथैव मासिकं श्राद्धं वार्षिकं प्रथमं तथा[1] ॥ १०३ ॥ संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः। तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥१०४॥ पिण्डवर्ज्यमसंक्रान्ते

दूसरे मास का श्राद्ध करे ॥ १०२ ॥ हे गरुड! संक्रान्ति-रहित मलमास में भी सपिण्डीकरण तथा मासिक श्राद्ध और प्रथम वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए ॥ १०३ ॥ यदि वर्ष के मध्य में अधिमास पड़े तो प्रेत की वार्षिक क्रिया (प्रथम वार्षिक श्राद्ध) तेरहवें मास में करना चाहिए[2] ॥ १०४ ॥ संक्रान्ति-रहित मास में पिण्ड-रहित श्राद्ध (आम-

१. तु०—हेमाद्रि के द्वारा श्राद्धकल्प पृ० २२७ तथा कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७ में उद्धृत वृद्धवसिष्ठ का वचन।

२ द्र०—आब्दिकं प्रथमं यत् स्यान्न तत्कुर्वीत मलिम्लुचे। त्रयोदशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥ हेमाद्रि : कालनिर्णयखण्ड, पृ० ५८ आदि में उद्धृत। इस विषय में कमलाकर भट्ट के ये विचार भी द्रष्टव्य हैं— "प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः। क्वचित् त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम् ॥ इति लघुहारीतोक्तेः। इदमन्त्याधिमासपरम्, द्वादशे त्रयोदशे वाऽतीत इत्यर्थः। तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे

श्राद्ध) और संक्रान्तियुक्त मास में पिण्डयुक्त श्राद्ध करना चाहिए। इस प्रकार [प्रथम] वार्षिक[1] श्राद्ध को [मल-
मास तथा उसके बाद आने वाले शुद्धमास-तेरहवें मास] दोनों ही मासों में करना चाहिए[2] ।। १०५ ।। इस प्रकार
एक वर्ष पूर्ण होने पर वार्षिक श्राद्ध करे। उसमें भी विशेष रूप से ब्राह्मणों को भोजन करावे ।। १०६ ।। एक वर्ष

संक्रान्ते पिण्डसंयुतम्। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च ।। १०५ ।। एवं संवत्सरे पूर्णे
वार्षिकं श्राद्धमाचरेत्। तस्मिन्नपि विशेषेण भोजनीया द्विजातयः ।।१०६।। कुर्यात्संवत्सरा-
दूर्ध्वं श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा। एकोद्दिष्टं न कर्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः ।।१०७।। तीर्थश्राद्धं

के पश्चात् [प्रेत के प्रेतत्व के निवृत्त हो जाने पर] श्राद्ध में तीन पिण्ड प्रदान करे और तदा-प्रभृति एकोद्दिष्ट न
करे, क्योंकि तदनन्तर इसको (एकोद्दिष्ट को) करने वाला पितृघातक होता है ।। १०७ ।। प्रथम वार्षिक श्राद्ध

एव प्रमाब्दिकमिति भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाद्याब्दिकं कार्यम्। यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रमाब्दिकमिति
भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाद्याब्दिकं कार्यम्। यत्राधिकमध्ये ...

निष्कर्षः। निर्णयसिन्धु पृ० ३।३७।

१. मूलपाठ में 'प्रतिसंवत्सरं' का प्रयोग सुसंगत नहीं है। यहाँ पर प्रकरण प्रथम वार्षिक श्राद्ध का ही है। अगले वार्षिक श्राद्धों के विषय में निबन्ध ग्रन्थों में प्रायः इस आशय के वचन उद्धृत हैं—वर्षे-वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि मलमासे न कर्तव्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ।। हेमादि · कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७, समयमयूख पृ० १७१।

२. कुछ आचार्यों का कथन है कि यदि वार्षिक श्राद्ध अधिमास में पड़े तो दो श्राद्ध [एक अधिमास में और एक तेरहवें मास में करे— आब्दिकेऽहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद् यदि। श्राद्धद्वयं प्रकुर्वीत एवं कुर्वंन्न दुष्यति ।। हेमाद्रि के द्वारा श्राद्धकल्प पृ० २२७ ८ (तु०—काल-निर्णयखण्ड पृ० ५०) में उद्धृत। संभवतः ऐसे ही वचनों की व्यवस्था का स्पष्टीकरण गरुडपुराण सारोद्धार (१३।१०५) के उपर्युक्त श्लोक में किया गया है।

होने तक की एक वर्ष की अवधि के बीच में तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध गजच्छाया योग में किया जाने वाला श्राद्ध,

गयाश्राद्धं गजच्छायां च पैतृकम्[1] । अब्दमध्ये न कुर्वीत ग्रहणे न युगादिषु ॥१०८॥ यदा पुत्रेण वै कार्यं गयाश्राद्धं खगेश्वर ! । तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्तव्यं पितृभक्तितः ॥ १०९ ॥

पार्वण आदि श्राद्ध तथा ग्रहण काल में और युगादि[3] तिथियों में पितृश्राद्ध न करे[4] ॥ १०८ ॥ हे गरुड ! जब पितृ-भक्ति के कारण पुत्र गयाश्राद्ध करना चाहता हो तो उसे एक वर्ष के पश्चात् (अर्थात् वार्षिक श्राद्ध हो जाने

१. यहाँ 'पैतृकम्' का तात्पर्य पार्वणादि पितृश्राद्ध से है। २. जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में हो, सूर्य हस्त नक्षत्र में हो और त्रयोदशी तिथि हो तब गजच्छाया योग बनता है-(द्र० हेमादि के श्राद्धकल्प पृ० २४४ और कालनिर्णयखण्ड पृ० ५०४ में तथा पराशर-माधव के आचार-खण्ड पृ० ६५६ में उद्धृत वचन)—यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः । तिथिर्वैश्रवणी या च गजच्छायेति सा स्मृता ॥

३. वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया कृतयुग के आरम्भ की तिथि है, कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी त्रेतायुग की आदि-तिथि है, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी द्वापर युग की आदि-तिथि है और माघी पौर्णमासी कलियुग की आदि तिथि है। द्र०— विष्णुपुराण ३।१४।१२, वराहपुराण (सर्वभारतीय काशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी) १३।४२--४३, निर्णयसिन्धु पृ० १७१, हेमाद्रिकृत श्राद्धकल्प पृ० २५१ और कालनिर्णय खण्ड पृ० ६४६, स्मृतिचन्द्रिका पृ० २८, पराशर-माधव आचारकाण्ड पृ० ६५७ ।

४. प्रथम वार्षिक श्राद्ध के पूर्व एक वर्ष के अन्दर किसी भी प्रकार का पितृश्राद्ध वर्जित है—मृते पितर्यब्दमध्ये ह्युपरागो यदा भवेत् । पार्वणं न सुतैः कार्यं श्राद्धं नान्दीमुखं न च । तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम् । अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु ॥ यमके [?] च गजच्छायां मन्वादिषु युगादिषु । पितृपिण्डो न दातव्यः सपिण्डीकरणं विना ॥ गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ३४।१३४—१३६ । मृते पितुर्यब्दमध्ये यः श्राद्धं कारयेत् सुत. । सप्तजन्मकृताद् धर्मात् हीयते नात्र संशयः । प्रेतीभूतास्तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः । भ्रमन्ति वायुना सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडिताः । गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ३४।१४१—१४२

के पश्चात्) ही करे ॥१०९॥ गयाश्राद्ध कर देने से पितर भवसागर से मुक्त हो जाते हैं और वे गदाधर (भगवान् विष्णु) के अनुग्रह से परमगति को प्राप्त करते हैं ॥ ११० ॥ [गया में] तुलसी की मञ्जरियों से विष्णुपादुका का पूजन करे और यथानिर्दिष्ट क्रमानुसार फल्गु आदि तीर्थों में पिण्डदान करे ॥ १११ ॥ गयाशिर में शमी के

गयाश्राद्धात् प्रमुच्यन्ते पितरो भवसागरात्। गदाधरानुग्रहेण ते यान्ति परमां गतिम् ॥११०॥

तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजयेद्विष्णुपादुकाम्। तथा फल्ग्वादितीर्थेषु[1] पिण्डान् दद्याद्यथाक्रमम् ॥१११

पत्ते के तुल्य आकार के पिण्ड प्रदान करे। ऐसा करके वह [अपने पिता, माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, बुआ और मौसी के] सात गोत्रों[2] तथा [पिता के कुल की १२ पिछली और १२ भावी पीढ़ियों को मिला कर २४ पीढ़ियों, माता के कुल की १० पिछली और १० भावी को मिला कर २० पीढियों, पत्नी के कुल की ८ पिछली और ८ अगली सहित १६ पीढियों, भगिनी के कुल की छः अगली और छः पिछली सहित १२ पीढियों, पुत्री के कुल

---

१. 'तथा फल्ग्वादितीर्थेषु' गयातीर्थ-विषयक समस्त साहित्यिक विवरणों के अवलोकन और मनन के पश्चात् निर्धारित पाठन्तर — तस्यालवालतीर्थेषु (निर्णयसागर संस्करण), तस्या लवादितीर्थेषु (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण), तरयाऽलवादितीर्थेषु (काशी संस्करण), तस्मै लवादितीर्थेषु (प्रयाग संस्करण) पाठान्तर में निर्दिष्ट इन पाठों की अर्थसंगति कथञ्चिदपि नहीं बैठती। गया में फल्गु आदि तीर्थों में पिण्डदान के उल्लेख प्राप्त होते हैं। २. पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा। पितृमातृष्वसा चैषां सप्तगोत्राणि वै विदुः ॥ नारायण भट्ट के द्वारा त्रिस्थलीसेतु पृ० ३२७ में उद्धृत।

की ५ पिछली, १ वर्तमान और ५ अगली पीढियों सहित ११ पीढियों, बुआ के कुल की ५ पिछली और ५ अगली सहित १० पीढियों और मौसी के कुल की ४ पिछली तथा ४ अगली सहित ८ पीढियों को मिला कर] १०१ पीढियों के कुल-पुरुषों[1] का उद्धार करता है ॥११२॥ अपने कुल को आनन्दित करने वाला जो पुत्र गया में जाकर

उद्धरेत् सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥११२॥
गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति कुलनन्दनः। सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥११३॥
श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा खगेश्वर !। इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने सुरैः ॥११४॥
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः। गयामुपेत्य ये पिण्डान् दास्यन्त्यस्माकमादरात्[2] ॥ ११५ ॥ एवमामुष्मिकीं तार्क्ष्य ! यः करोति क्रियां सुतः। स स्यात्सुखी

श्राद्ध करता है उसका जीवन अपने पितरों को सन्तुष्ट करने से सफल हो जाता है ॥ ११३ ॥ यह सुना जाता है कि [पुरा काल में अग्निष्वात्तादि] दिव्य पितरों ने कलाप नामक उपवन में मनु के पुत्र इक्ष्वाकु को यह गाथा सुनायी थी ॥ ११४ ॥ क्या कभी हमारे कुल में ऐसे सन्मार्गवर्ती पुत्र होवेंगे जो गया में जाकर हमारे लिए आदर पूर्वक पिण्डदान करेंगे ? ॥ ११५ ॥ हे गरुड ! जो पुत्र इस प्रकार पितरों की परलोक सम्बन्धी (और्ध्वदेहिक)

१, तत्त्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशा दश। अष्टाविंति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ त्रिस्थलीसेतु पृ० ३२७ में उद्धृत।

२. यह गाथा पुराणों में अनेकत्र प्राप्त होती है। द्र०—विष्णुपुराण ३।१४।२२

क्रिया करता है वह सुखी होता है और कौशिक[1] द्विज के सात पुत्रों के समान मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ११६॥ हे ! गरुड भरद्वाज[2] (कौशिक) के सात पुत्र [पितृश्राद्ध हेतु] गोवध करके भी अनेक जन्म-परम्पराओं को भोग कर (अर्थात् क्रमशः व्याध, मृग, चक्रवाक, हंस और अन्त में ब्राह्मण वटुकों के रूप में जन्म-ग्रहण करके) पितरों की कृपा से मुक्त हुए थे ॥ ११७ ॥ कौशिक के वे सातों पुत्र [पितृश्राद्ध के नाम से गोवध करने के फलस्वरूप]

भवेन्मुक्तः कौशिकस्यात्मजा यथा ॥११६॥ भरद्वाजात्मजाः सप्त भुक्त्वा जन्मपरम्पराम् । कृत्वापि गोवधं तार्क्ष्य ! मुक्ताः पितृप्रासदतः ॥११७॥ सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालाञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ ११८ ॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। पितृभक्त्या च ते सर्वे गता मुक्तिं द्वजात्मजाः ॥ ११९ ॥ तस्मात्

पुनर्जन्म में दशार्ण[3] देश में सात व्याधों के रूप में उत्पन्न हुए थे। तत्पश्चात् वे अगले-जन्म में कालञ्जरपर्वत में सात मृगों के रूप में उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर वे शरद्वीप में सात चक्रवाकों (चकवों) के रूप में उत्पन्न हुए थे और फिर अगले-जन्म में मानस सर (मानसरोवर) में सात हंसों के रूप में उत्पन्न हुए थे ॥ ११८ ॥ वे ही कुरुक्षेत्र में वेदपारङ्गत ब्राह्मणों के रूप में उत्पन्न हुए और पितरों के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखने से वे सभी ब्राह्मणपुत्र

---

१. कौशिक के सात पुत्रों की कथा मत्स्यपुराण (अध्याय २०) हरिवंशपुराण (हरिवंशपर्वअध्याय २१।२४) तथा पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अध्याय १०) आदि में दी गयी है।

२. कौशिक के पुत्र ही भारद्वाज के पुत्र कहे गये हैं।

३. मालवा का पूर्ववर्ती भाग दशार्ण कहलाता था जिसकी राजधानीं विदिशा (वर्तमान भिलसा) में थी।

मुक्ति को प्राप्त हुए थे ॥ ११९ ॥ अतः मनुष्य को पूरे प्रयत्न से पितृ-भक्त होना चाहिए । पितृभक्ति से मनुष्य इहलोक में तथा परलोक में भी सुखी होता है ॥ १२० ॥ हे गरुड ! यह मैंने तुम्हें समस्त-और्ध्वदेहिक कृत्यों के विषय में बतलाया है, जिनका सम्पादन पुत्रकामना को पूर्ण करने वाला, पुण्यप्रद तथा पिता को मुक्ति-प्रदान कराने वाला है ॥ १२१ ॥ जो कोई निर्धन मनुष्य भी इस कथा को सुनता है वह भी पापों से मुक्त हो जाता है

सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तो भवेन्नरः । इह लोके परे वापि पितृभक्त्या सुखी भवेत् ॥ १२० ॥ एतत् तार्क्ष्य ! मयाऽऽख्यातं सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् । पुत्रवाञ्छाप्रदं पुण्यं पितुर्मुक्तिप्रदायकम् ॥१२१॥ निर्धनोऽपि नरः कश्चिद् यः शृणोति कथामिमाम् । सोऽपि पापविनिर्मुक्तो दानस्य फलमाप्नु-यात् ॥ १२२ ॥ विधिना कुरुते यस्तु श्राद्धं दानं मयोदितम् । शृणुयाद् गारुडं चापि शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ १२३ ॥ पिता ददाति सत्पुत्रान् गोधनानि पितामहः । धनदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः ॥ १२४ ॥ दद्याद्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तु प्रपितामहः तृप्ताः

और पितरों के निमित्त दिये जाने वाले दान के पुण्य-फल को प्राप्त करता है ॥ १२२ ॥ जो मनुष्य मेरे द्वारा कथित श्राद्धों और विविध दानों को विधिपूर्वक करता है और इस गरुडपुराण को सुनता है उसको जो फल मिलता है उसे सुनो ॥१२३॥ पिता उसको सच्चरित्र पुत्र देता है, पितामह गोधन (गाय आदि पशु) प्रदान करता है और प्रपितामह उसको विविध धन-सम्पत्ति प्रदान करता है ॥१२४॥ वृद्ध प्रपितामह उसे प्रचुर अन्न आदि प्रदान करता

है। श्राद्ध से तृप्त होकर वे सभी पितर पुत्र को मनोवाञ्छित फल देकर धर्ममार्ग से धर्मराज के भवन में जाते हैं। वहाँ वे धर्मसभा में परम आदरणीय होकर विराजमान होते हैं ॥ १२५-१२६ ॥ सूत बोले—इस प्रकार विष्णु

श्राद्धेन ते सर्वे दत्त्वा पुत्रस्य वाञ्छितम् ॥१२५॥ गच्छन्ति धर्ममार्गैश्च धर्मराजस्य मन्दिरम्। तत्र धर्मसभायां ते तिष्ठन्ति परमादरात् ॥१२६॥

सूत उवच—

एवं श्रीविष्णुना प्रोक्तमौर्ध्वदानसमुद्भवम्। श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः ॥१२७॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सपिण्डनादि सर्वकर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ॥१३॥

द्वारा कथित और्ध्वदेहिक श्राद्ध-दान-विषयक माहात्म्य सुन कर गरुड को अपरिमित हर्ष हुआ ॥ १२७ ॥

—○✻○—

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

धर्मराजनगरनिरूपणम्

गरुड बोले—यमलोक कितना बड़ा है ! कैसा है ? किसने बनाया है ? यमपुरी की सभा कैसी है ? उस (सभा) में धर्मराज किन के साथ बैठते हैं ? ॥ १ ॥ हे दयानिधे ! जिन धर्मों के आचरण से और जिन मार्गों

गरुड उवाच—

यमलोकः कियन्मात्रः कीदृशः केन निर्मितः । सभा च कीदृशी तस्यां धर्म आस्ते च कैः सह ॥१॥
[1]यैर्धर्ममार्गैर्गच्छन्ति धार्मिका धर्ममंदिरम् । तान् धर्मानपि मार्गांश्च ममाख्याहि दयानिधे ! ॥२॥

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्यामि यदगम्यं[2] नारदादिभिः । तद्धर्मनगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते ॥३॥

से होकर धार्मिक जन धर्मराज के भवन में जाते हैं उन धर्मों और मार्गों को आप मुझे बतलाइए ॥२॥ श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! सुनो, धर्मराज का जो नगर नारद आदि मुनियों के लिए भी दुर्गम है उसमें बड़े पुण्य से ही

१ पाठान्तर—ये । २. पाठन्तर—यद्गम्यं ।

जाया जा सकता है ॥ ३ ॥ दक्षिण और नैर्ऋत दिशा के मध्य में वैवस्वत यम का पुर है जो कि सम्पूर्णतः वज्र का बना हुआ है और देवता तथा असुर कोई भी उसका भेदन नहीं कर सकते ॥ ४ ॥ वह पुर चतुरस्र (चौकोर) है और उसमें चार द्वार हैं और ऊँची चहारदीवारी से घिरा हुआ है और उसका परिमाण एक सहस्र (हजार) योजन है अर्थात् यह एक सहस्र योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा है ॥ ५ ॥ उस पुर में चित्रगुप्त

याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य यत्। सर्वं[1] वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः ॥४॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम्। योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते ॥५॥
अस्मिन् पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम्। पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम् ॥६॥
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम्। प्रतोलीशतसञ्चारं पताका-ध्वज-भूषितम् ॥७॥
विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम्। चित्रितं चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः ॥८॥

का सुन्दर भवन है जो २५ योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा तथा दश योजन ऊँचा है। वह अत्यन्त सुन्दर है और लोहे की चहारदीवारी से घिरा हुआ है। उसमें आवागमन के लिए सैकड़ों गलियाँ हैं और वह पताकाओं तथा ध्वजों से विभूषित है ॥६–७॥ वह विमानों के समूह से भरा हुआ है, गायन-वादन के निनाद से निनादित है, कुशल चित्रकारों के चित्रों से चित्रित है और उस भवन का निर्माण देवताओं के शिल्पकारों के द्वारा किया

१. पाठान्तर—सर्ववज्रमयं।

गया है ॥ ८ ॥ वह उद्यानों और उपवनों से रमणीय है और नाना पक्षियों के कलरव से मुखरित रहता है तथा सभी ओर से गन्धर्वों और अप्सराओं से भरा रहता है ॥ ९ ॥ उस भवन में बनी हुई सभा में अपने परम अद्भुत आसन में बैठे हुए चित्रगुप्त मनुष्यों की आयु की ठीक-ठीक गणना करते हैं ॥ १० ॥ वह मनुष्य के पुण्य अथवा पाप का लेखा-जोखा रखने में कोई त्रुटि नहीं करते। जिसने जो भी शुभ या अशुभ कर्म किया हो वह वहाँ चित्रगुप्त

उद्यानोपवनैः रम्यं नानाविहगकूजितम् । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च समन्तात्परिवारितम् ॥९॥
तत्सभायां चित्रगुप्तः स्वासने परमाद्भुते । संस्थितो गणयेदायुर्मानुषाणां यथातथम् ॥१०॥
न मुह्यति कथञ्चित्स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा । यद्येनोपार्जितं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥११॥
तत्सर्वं भुञ्जते तत्र चित्रगुप्तस्य शासनात् । चित्रगुप्तालयात्प्राच्यां ज्वरस्याति महागृहम् ॥१२॥
दक्षिणस्यां च शूलस्य लूताविस्फोटयोस्तथा । पश्चिमे कालपाशः स्यादजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥१३॥
उदीच्यां राजरोगोऽस्ति पाण्डुरोगस्तथैव च । ऐशान्यां तु शिरोऽर्तिः स्यादाग्नेय्यामस्ति

के आदेश से उन सबका भोग करता है। चित्रगुप्त के भवन से पूर्व की ओर ज्वर का विशाल घर है, दक्षिण की ओर शूल, लूता रोग तथा विस्फोट (अर्थात् फोड़ा-फुन्सी और चेचक) का आवास है तथा पश्चिम की ओर कालपाश, अजीर्ण और अरुचि [रोग] का घर है, उत्तर की ओर राजरोग (क्षयरोग) और पाण्डुरोग (पीलिया) रोग का आवास है, ईशान कोण की ओर शिरोवेदना (शिरदर्द) का, आग्नेय कोण की ओर मूर्छा का, नैऋत

शीत और दाह का स्थान है। इन उपर्युक्त अन्य विविध व्याधियों से चित्रगुप्तका भवन घिरा हुआ है ॥११–१५॥ चित्रगुप्त मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को लिखा करते हैं। चित्रगुप्त के भवन से बीस योजन आगे नगर के मध्य में धर्मराज का अत्यन्त दिव्य भवन है जो कि रत्नों से जटित होने से विद्युत-ज्वालों के समान दीप्तिमान् तथा सूर्य के समान तेजोमय है ॥१६–१७॥ यह दो सौ योजन चौड़ा और उतना ही लम्बा और पचास योजन ऊँचा है

मूर्च्छना ॥ १४ ॥ अतिसारो नैर्ऋते तु वायव्यां शीतदाहकौ। एवमादिभिरन्यैश्च व्याधिभिः परिवारितः ॥ १५ ॥ लिखते चित्रगुप्तस्तु मानुषाणां शुभाशुभम्। चित्रगुप्तालयादग्रे योजनानां च विंशतिः ॥ १६ ॥ पुरमध्ये महादिव्यं धर्मराजस्य मन्दिरम्। अस्ति रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥ १७ ॥ द्विशतं योजनानां च विस्तारायामतः स्फुटम्। पञ्चाशच्च प्रमाणेन योजनानां समुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥ धृतं स्तम्भसहस्रैश्च वैदूर्यमणिमण्डितम्। काञ्चनालङ्कृतं नानाहर्म्यप्रासादसंकुलम् ॥ १९ ॥ शारदाभ्रनिभं रुक्मकलशैः सुमनोहरम्। चित्रस्फटिकसोपानं वज्रकुट्टिमशोभितम् ॥ २० ॥ मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाध्वजभूषितम्।

॥ १८ ॥ यह हजारों स्तम्भों पर आधारित है, वैदूर्यमणि से जटित है, सुवर्ण से अलंकृत है और अनेकों हर्म्यप्रासादों (हवेलियों और महलों) से पूर्ण है ॥१९॥ यह शरद-कालीन मेघ के समान निर्मल है और सुवर्ण-कलशों से अति मनोरम लगता है। इसमें स्फटिक के बने हुए और चित्राङ्कित सोपान (सीढ़ियाँ) हैं तथा वज्र (हीरे) की कुट्टिम (पच्चीकारी से युक्त फर्श) से शोभायमान है ॥२०॥ इसके गवाक्षों (झरोखों या खिड़कियों) में मोतियों

के झालर लगे हैं। यह पताकाओं और ध्वजों से विभूषित है। यह घण्टा और नगाड़ों के नाद से निनादित रहता है और सोने के तोरणों से सुशोभित है ॥ २१ ॥ यह अनेक आश्चर्यों से पूर्ण है और स्वर्ण-निर्मित सैकड़ों कपाटों (द्वार-किवाड़ों) से युक्त है, तथा नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं और काँटे रहित गुल्मों (झाड़ियों) से सुशोभित है ॥ २२ ॥ इसी प्रकार की अन्यान्य शोभावर्द्धक वस्तुओं से सदा आभूषित रहता है और इसे विश्वकर्मा ने

घण्टानकनिनादाढ्यं हेमतोरणमण्डितम् ॥ २१ ॥ नानाश्चर्यमयं स्वर्णकपाटशतसंकुलम् । नानाद्रुमलतागुल्मैर्निष्कण्टैः सुविराजितम् ॥ २२ ॥ एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा । आत्मयोगप्रभावैश्च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२३॥ तस्मिन्नस्ति सभा दिव्या शतयोजनमायता । अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः कामरूपिणी ॥२४॥ नातिशीता न चात्युष्णा मनसोऽत्यन्तहर्षिणी । न शोको न जरा तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम् ॥ २५ ॥ सर्वे कामाः स्थिता यस्यां

अपने योग (कर्मकौशल) के प्रभाव से बनाया है ॥ २३ ॥ धर्मराज के उस भवन में सौ योजन लम्बाई और उतनी ही चौड़ाई वाली, सूर्य के समान प्रकाश वाली, सभी ओर से देदीप्यमान और कामरूपिणी (अर्थात् इच्छानुरूप स्वरूप धारण करने वाली) दिव्य सभा है ॥२४॥ वह न अधिक शीतल है और न अधिक उष्ण (गरम) है। वह मन को अत्यन्त हर्ष प्रदान करने वाली है। उसमें न तो किसी को कोई शोक होता है, न वृद्धावस्था सताती है, न भूख-प्यास लगती है और किसी के साथ कोई अप्रिय-संयोग भी उसमें नहीं घटित होता ॥ २५ ॥ देव-

लोक और मनुष्य-लोक में जो भी काम्य विषय हैं (अर्थात् भोग-विलास के जितने भी विषयों की कामना कीजा सकती है) वे सभी वहाँ उपलब्ध हैं। उसमें सभी तरह के रस-युक्त (अर्थात् छहों रसों से युक्त) भक्ष्य और भोज्य पदार्थ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।। २६ ।। वहाँ सरस और शीतल-जल तथा उष्ण-जल भी उपलब्ध है। उसमें मनोहर शब्दादि विषय हैं और मनोवाञ्छित फल-प्रदान करने वाले कल्पवृक्ष भी वहाँ हैं।। २७ ।। हे गरुड ! वह

ये दिव्या ये च मानुषाः। रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः ।। २६ ।। रसवन्ति च तोयानि शीतान्युष्णानि चैव हि। पुण्याः शब्दादयस्तस्यां नित्यकामफलद्रुमाः ।। २७ ।। असंबाधा च सा तार्क्ष्य ! रम्या कामागमा सभा। दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा ।।२८।। तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः। शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः पूतेन कर्मणा ।। २९ ।। सर्वे भास्वरदेहास्तेऽलङ्कृता विरजाऽम्बराः। स्वकृतैः कर्मभिः पुण्यैस्तत्र

सभा बाधा-रहित (पर्याप्त विस्तीर्ण), रमणीय और मनोकामना को पूर्ण करने वाली है। उसे विश्वकर्मा ने दीर्घ-काल तपश्चर्या करके बनाया है ।। २८ ।। उसमें उग्र (कठोर) तप करने वाले, व्रत-परायण, सत्यवादी, शान्त-स्वभाव वाले, संन्यासी, सिद्ध और पवित्र कर्मों को करने से शुद्ध हो चुके मनुष्य ही जा पाते हैं ।। २९ ।। वे सभी ज्योतिर्मय (तेजोमय) शरीर वाले, आभूषणों से अलङ्कृत, निर्मल वस्त्र धारण किये हुए और [पुष्प-माल्यादि से]

विभूषित पुरुष अपने द्वारा किये हुए पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही वहाँ विराजमान होते हैं ।। ३० ।। उस सभा में दश योजन विस्तीर्ण और सभी रत्नों से मण्डित अनुपम शुभ आसन में धर्मराज बैठते हैं । वे सज्जनों में श्रेष्ठ हैं । उनका मस्तक छत्र से सुशोभित है । वे कुण्डलों से अलङ्कृत हैं । वे महामुकुट से विभूषित और श्रीविभूषित हैं ।। ३१–३२ ।। वे सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं और नीलवर्ण के मेघ के समान आभा वाले हैं । अप्सराएँ

तिष्ठन्ति भूषिताः ।। ३० ।। तस्यां स धर्मो भगवानासनेऽनुपमे शुभे । दशयोजनविस्तीर्णे सर्वरत्नैः सुमण्डिते ।। ३१ ।। उपविष्टः सतां श्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः । कुण्डलालङ्कृतः श्रीमान्महामुकुटमण्डितः ।। ३२ ।। सर्वालङ्कारसंयुक्तो नीलमेघसमप्रभः । बालव्यजन-हस्ताभिरप्सरोभिश्च वीजितः ।। ३३ ।। गन्धर्वाणां समूहाश्च सङ्घशश्चाप्सरोगणाः । गीतवादित्र-नृत्याद्यैः परितः सेवयन्ति तम् ।।३४।। मृत्युना पाशहस्तेन कालेन च बलीयसा । चित्रगुप्तेन चित्रेण कृतान्तेन निषेवितः ।।३५।। पाशदण्डधरैरुग्रैर्निदेशवशवर्तिभिः । आत्मतुल्यबलैर्नाना

अपने हाथ में बाल-व्यजन (अर्थात् चामर) लेकर उन्हें पंखा झलती रहती हैं ।। ३३ ।। गन्धर्वों के समूह और अप्सराओं के गण सङ्गठित होकर सभी ओर से गायन-वादन और नृत्य करते हुए उनकी सेवा करते हैं ।।३४।। हाथ में पाश लिये हुए मृत्यु, बलवान् काल, विचित्र आकृति वाले चित्रगुप्त तथा कृतान्त (यम ?) के द्वारा वे सेवित हैं ।। ३५ ।। हाथों में पाश और दण्ड धारण करने वाले, रौद्र स्वभाव वाले, निदेश (अर्थात् आज्ञा)

गा० पु०

के अधीन रह कर काम करने वाले तथा अपने सदृश बल वाले अनेक पराक्रमी भटों से वे (धर्मराज) घिरे रहते हैं ॥ ३६ ॥ हे गरुड ! जो अग्निष्वात्ता, सोमपा, उष्मपा,[1] स्वधावन्त[2] वर्हिषद, मूर्तिमान् तथा अमूर्तिमान् पितर हैं, अर्यमा आदि जो पितृगण हैं तथा अन्य जो भी मूर्तिमान् पितर हैं वे सब वहाँ मुनियों के साथ धर्मराज की उपासना (सेवा) करते हैं ॥ ३७–३८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अङ्गिरा, जमदग्नि, भृगु, पुलस्त्य,

सुभटैः परिवारितः ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताश्च पितरः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये । स्वधावन्तो बर्हिषदो मूर्तामूर्ताश्च ये खग ! ॥ ३७ ॥ अर्यमाद्याः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तथापरे । सर्वे ते मुनिभिः सार्धं धर्मराजमुपासते ॥३८॥ अत्रिर्वसिष्ठः पुलहो दक्षः क्रतुरथाङ्गिरा । [3]जमदग्नि-र्भृगुश्चैव पुलस्त्यागस्त्यनारदाः ॥३९॥ एते चान्ये च बहवः पितृराजसभासदः । न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभिस्तथा ॥ ४० ॥ व्याख्याभिर्धर्मशास्त्राणां निर्णेतारो यथातथम् ।

अगस्त्य, नारद-ये तथा पितरों के राजा (धर्मराज) के अन्य बहुत-से सभासद, जिनके नामों और कर्मों की गणना ही नहीं की जा सकती और जो अपनी व्याख्याओं के द्वारा धर्मशास्त्रों का यथार्थ निर्णय देते हैं वे परमेष्ठी-ब्रह्मा

---

१. उष्मपा हविष्मन्त पितरों का ही अपर नाम हो सकता है । २. स्वधावन्त पितरों को ही अनेक पुराणों में आज्यप कहा गया है ।

३. पाठान्तर—'जामदग्न्यो' । अद्यावधि सभी स्थानों से मुद्रित संस्करणों में प्राप्त 'जामदग्न्यो' पाठ नितान्त असंगत है । अत्रि, वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों की श्रेणि में जमदग्नि को हो रखा जा सकता है, उनके पुत्र परशुराम (जामदग्न्य) को नहीं । पुनश्च परशुराम को इस भारतभूमि के प्रातःस्मरणीय सात चिरञ्जीवी महापुरुषों में गिना गया है, अतः उन्हें धर्मराज की सभा में दिवङ्गत ऋषि-मुनियों की पंक्ति में बैठाना उचित नहीं है । अतः यहीं पर 'जमदग्नि' पाठ ही समीचीन है ॥

के आदेशानुसार धर्मराज की सेवा करते हैं ॥ ३९–४१ ॥ उस सभा में सूर्यवंश के चन्द्रवंश के तथा अन्य धर्मज्ञ राजा धर्मराज की सेवा करते हैं ॥ ४२ ॥ मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ, अम्बरीष, अनरण्य, मुचुकुन्द, निमि, पृथु, ययाति, नहुष, पुरु, दुष्यन्त, शिवि, नल, भरत, शन्तनु, पाण्डु और सहस्रार्जुन ये–पुण्यात्मा, यशस्वी और बहुश्रुत राजा बहुत-से अश्वमेध यज्ञ करके धर्मराज के सभासद बने हैं ॥ ४३–४५ ॥ धर्मराज की सभा में

सेवन्ते धर्मराजं ते शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ४१ ॥ राजानः सूर्यवंशीयाः सोमवंश्यास्तथापरे । सभायां धर्मराजं ते धर्मज्ञाः पर्युपासते ॥ ४२ ॥ मनुर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः । अम्बरीषोऽनरण्यश्च मुचुकुन्दो निमिः पृथुः ॥४३॥ ययातिर्नहुषः पूरुर्दुष्यन्तश्च शिविर्नलः । भरतः शन्तनुः पाण्डुः सहस्रार्जुन एव च ॥ ४४ ॥ एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिमन्तो बहुश्रुताः । इष्ट्वाऽश्वमेधैर्बहुभिर्जाता धर्मसभासदः ॥४५॥ सभायां धर्मराजस्य धर्म एव प्रवर्तते । न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः ॥४६॥ सभ्याः सर्वे शास्त्रविदः सर्वे धर्मपरायणाः । तस्यां सभायां सततं वैवस्वतमुपासते ॥ ४७ ॥ ईदृशी सा सभा तार्क्ष्य! धर्मराजमहात्मनः ।

केवल धर्म की ही प्रवृत्ति होती है । उसमें न तो पक्षपात होता है, न अनृतवचन बोला जाता है और न कोई किसी से ईर्ष्या करता है ॥ ४६ ॥ उस सभा में सभी सभ्य (अर्थात् सभासद) शास्त्रज्ञ और धर्मपरायण हैं । वे सदा धर्मराज-वैवस्वत यम के निकट रह कर [उन्हें परामर्श देकर] सेवा करते हैं ॥ ४७ ॥ हे गरुड ! महात्मा

धर्मराज की वह सभा इस तरह की है। जो पापी दक्षिण द्वार से यम-पुर में प्रविष्ट होते हैं वे उस सभा को नहीं देख पाते ॥ ४८ ॥ धर्मराज के नगर में जाने के लिए चार मार्ग हैं। पापियों के लिए उस नगर में जाने का जो [दक्षिण का] मार्ग है उसके विषय में मैं तुम्हें पहले ही बतला चुका हूँ ॥ ४९ ॥ पूर्वादि तीन मार्गों से जो जीव धर्मराज के भवन में जाते हैं वे पुण्यकर्मा हैं और अपने पुण्यों से ही वहाँ जाते हैं। अब तुम उनके विषय में

न तां पश्यन्ति ये पापा दक्षिणेन पथा गताः ॥४८॥ धर्मराजपुरे गन्तुं चतुर्मार्गा भवन्ति च। पापिनां गमने पूर्वं स तु ते परिकीर्तितः ॥ ४९ ॥ पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्ये गता धर्ममन्दिरे। ते हि सुकृतिनः पुण्यैस्तस्यां गच्छन्ति तान् शृणु ॥५०॥ पूर्वमार्गस्तु तत्रैकः सर्वभोगसमन्वितः पारिजाततरुच्छायाच्छादितो रत्नमण्डितः ॥ ५१ ॥ विमानगणसङ्कीर्णो हंसावलिविराजितः। विद्रुमारामसंकीर्णः पीयूषद्रवसंयुतः ॥ ५२ ॥ तेन ब्रह्मर्षयो यान्ति पुण्या राजर्षयोऽमलाः। अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ ५३ ॥ देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः। ग्रीष्मे

सुनो ॥ ५० ॥ उन मार्गों में से एक है पूर्वी मार्ग, जो कि सभी प्रकार के भोग-साधनों से पूर्ण है, पारिजात वृक्ष की छाया से आच्छादित है और रत्नों से मण्डित है ॥ ५१ ॥ वह मार्ग विमानों के समूह से भरा रहता है, हंसों की पंक्तियों से सुशोभित है, विद्रुमों (१ मूँगे या विशिष्ट वृक्षों) के उद्यानों से घिरा हुआ है और अमृत-तुल्य जल से युक्त है ॥ ५२ ॥ उस मार्ग से पुण्यात्मा ब्रह्मर्षि, निष्कलंक राजर्षि, अप्सरागण, गन्धर्व, विद्याधर और वासुकि आदि नागराज जाते हैं ॥ ५३ ॥ अन्य बहुत-से मनुष्य जो कि देवताओं की आराधना करते हैं, शिवभक्ति-परायण

हैं, ग्रीष्म ऋतु में प्रपा (प्याऊ या पौशाला) लगाते हैं और माघ मास में आग सेकने के लिए काष्ठ (लकड़ी) प्रदान करते हैं ॥ ५४ ॥ जो वर्षा ऋतु में [चातुर्मास्य व्रत] विरक्त साधु-सन्तों को भोजन आदि का दान और सम्मान देकर विश्राम अर्थात् आश्रय-प्रदान करते हैं, दुःखी मनुष्य को अमृत के समान वचनों से आश्वासन देते

प्रपादानरता माघे काष्ठप्रदायिनः ॥५४॥ विश्रामयन्ति वर्षासु विरक्तान् दानमानतः । दुःखितस्यामृतं ब्रूते ददते ह्याश्रयं तु ये[1] ॥ ५५ ॥ सत्यधर्मरता ये च क्रोधलोभविवर्जिताः । पितृमातृषु ये भक्ता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ ५६ ॥ भूमिदा गृहदा गोदा विद्यादानप्रदायकाः । पुराणवक्तृ-श्रोतारः पारायणपरायणाः ॥ ५७ ॥ एते सुकृतिनश्चान्ये पूर्वद्वारे विशन्ति च । यान्ति धर्मसभायां ते सुशीलाः शुद्धबुद्धयः ॥ ५८ ॥ द्वितीयस्तूत्तरो मार्गोमहारथशतैर्वृतः ।

हैं और आश्रय देते हैं ॥ ५५ ॥ जो सत्यवादी, धर्मपरायण तथा क्रोध और लोभ से रहित हैं, जो माता-पिता के भक्त हैं और जो गुरु की सेवा-शुश्रूषा में संलग्न रहते हैं ॥ ५६ ॥ भूमि का दान देने वाले, गृह का दान देने वाले, गोदान करने वाले, विद्या का दान देने वाले, पुराण के वक्ता, उसके श्रोता तथा उसका पारायण करने वाले, ये सभी तथा पुण्यकर्म करने वाले अन्य मनुष्य भी [धर्मराज के नगर में] पूर्वद्वार से प्रवेश करते हैं। ये सभी सदाचारी और शुद्ध बुद्धि के मनुष्य धर्मराज की सभा में जाते हैं ॥ ५७–५८ ॥ धर्मराज के नगर में जाने

१. पाठान्तर—ह्याश्रमं तु ददन्ति ये।

के लिए दूसरा मार्ग है उत्तर मार्ग, जो कि सैकड़ों बड़े-बड़े रथों से भरा हुआ तथा पालकियों से युक्त है और हरिचन्दन[1] के वृक्षों से सुशोभित है ॥ ५९ ॥ उस मार्ग में हंसों और सारसों से व्याप्त, चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित और अमृत-तुल्य जल से पूर्ण मनोरम सरोवर है ॥ ६० ॥ उस मार्ग से वैदिक-विद्वान्, अतिथि-सत्कार करने वाले, भगवती दुर्गा के भक्त, भगवान् सूर्य के भक्त और पर्वों में तीर्थ-स्नान करने वाले जाते हैं ॥ ६१ ॥ जिन

नरयानसमायुक्तो हरिचन्दनमण्डितः ॥५९॥ हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः । अमृतद्रवसम्पूर्णस्तत्र भाति सरोवरः ॥ ६० ॥ अनेन वैदिका यान्ति तथाऽभ्यागतपूजकाः । दुर्गाभान्वोश्च ये भक्तास्तीर्थस्नाताश्च पर्वसु ॥ ६१ ॥ ये मृता धर्मसंग्रामेऽनशनेन मृताश्च ये । वाराणस्यां गोगृहे च तीर्थतोये मृताः विधेः ॥६२॥ ब्राह्मणार्थे स्वामिकार्ये तीर्थक्षेत्रेषु ये मृताः । ये मृता देवविध्वंसे[2] योगाभ्यासेन ये मृताः ॥६३॥ सत्पात्रपूजका नित्यं महादानरताश्च ये ।

वीरों ने धर्मयुद्ध में प्राण त्यागे हों, जो अनशन करके प्राणत्याग किये हों, जो वाराणसी में, गोशाला में अथवा विधिवत् तीर्थजल में प्राणत्याग किये हों ॥ ६२ ॥ जो ब्राह्मण की रक्षा के लिए या अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने के लिए मर मिटे हों या जो तीर्थ-क्षेत्र में देह-त्याग किये हों, जो देव-प्रतिमा या देवालय को विध्वस्त होने से बचाने के प्रयास में प्राणों से हाथ धो बैठे हों या जो योगाभ्यास से शरीर-त्याग किये हों ॥ ६३ ॥ जो

१. देवलोक का एक वृक्ष जो कि चन्दन की जाति का एक वृक्षः विशेष है । २. पाठान्तर—दैवविध्वंसे ।

सत्पात्र ब्राह्मण की पूजा करते हैं और जो धर्मात्मा तुलापुरुष आदि महादानों को देते हैं वे उत्तर द्वार से [धर्मराज की] धर्म-सभा में प्रवेश करते हैं ॥ ६४ ॥ धर्मराज के नगर में जाने के लिए तीसरा मार्ग है पश्चिमी मार्ग, जो कि रत्न-जटित भवनों से शोभायमान है और अमृत-रस के तुल्य स्वाद वाले जल से सदा भरी रहने वाली दीर्घिकाओं अर्थात् बावड़ियों से सुशोभित है ॥ ६५ ॥ यह मार्ग ऐरावत के कुल में उत्पन्न मदोन्मत्त हाथियों तथा

प्रविशन्त्युत्तरे द्वारे यान्ति धर्मसभां च ते ॥६४॥ तृतीयः पश्चिमो मार्गो रत्नमन्दिरमण्डितः ।
सुधारस-सदापूर्ण-दीर्घिकाभिर्विराजितः ॥ ६५ ॥ ऐरावतकुलोद्भूत-मत्तमातङ्ग-संकुलः ।
उच्चैःश्रवा-समुत्पन्न-हयरत्न-समन्वितः ॥६६॥ एतेनात्मपरा यान्ति सच्छास्त्रपरिचिन्तकाः ।
अनन्यविष्णुभक्ताश्च गायत्रीमंत्रजापकाः ॥ ६७ ॥ परहिंसा-परद्रव्य परवादपराङ्मुखाः ।
स्वदारनिरताः सन्तः साग्निका वेदपाठकाः ॥ ६८ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतधरा वानप्रस्थास्तपस्विनः ।

उच्चैःश्रवा नामक अश्व से उत्पन्न श्रेष्ठ घोड़ों से भरा रहता है ॥६६॥ इस मार्ग से आत्म-निष्ठ योगी, सत्-शास्त्रों का चिन्तन करने वाले, भगवान् विष्णु के अनन्य भक्त और गायत्री मन्त्र का जप करने वाले व्यक्ति जाते हैं ॥६७॥ परहिंसा, पराये धन और परायी निन्दा से विरत रहने वाले, स्वदार-निरत (अपनी पत्नी के साथ सन्तुष्ट रहने वाले), अग्निहोत्री और वेदपाठी ब्राह्मण, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले (नैष्ठिक ब्रह्मचारी), वान-

गृहस्थाश्रमी, तपश्चर्या करने वाले, संन्यास व्रत का पालन करने वाले पूज्यपाद [?] संन्यासी, कङ्कड़-पत्थर और सोना सभी को एक समान मानने वाले, ज्ञान और वैराग्य की भावना से सम्पन्न, सभी प्राणियों के हित-साधन में संलग्न रहने वाले, शिव और विष्णु सम्बन्धी व्रतों को करने वाले, अपने समस्त कर्मों को ब्रह्म को समर्पित करने वाले, वेदाध्ययन से ऋषिऋण, यज्ञ-सम्पादन करके देवऋण और सन्तानोत्पादन करके पितृऋण को चुकाने वाले,

श्रीपाद [?] संन्यासपराः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥६९॥ ज्ञानवैराग्यसम्पन्नाः सर्वभूतहिते रताः।
शिवविष्णुव्रतकराः कर्मब्रह्मसमर्पकाः ॥ ७० ॥ ऋणैस्त्रिभिर्विनिर्मुक्ताः पञ्चयज्ञरताः सदा ।
पितृणां श्राद्धदातारः काले सन्ध्यामुपासकाः ॥७१॥ नीचसङ्गविनिर्मुक्ताः सत्सङ्गतिपरायणाः ।
एतेऽप्सरोगणैर्युक्ता विमानवरसंस्थिताः ॥ ७२ ॥ सुधापानं प्रकुर्वन्तो यान्ति ते धर्ममन्दिरम्।
विशन्ति पश्चिमद्वारे यान्ति धर्मसभान्तरे ॥७३॥ यमस्तानागतान् दृष्ट्वा स्वागतं वदते मुहुः।

नित्य पञ्चयज्ञ[1] करने वाले, पितरों का श्राद्ध करने वाले, यथाकाल सन्ध्यावन्दन करने वाले, नीचों के संसर्ग से दूर रहने वाले और सत्संगति में रहने वाले—ये सभी मनुष्य अप्सराओं के साथ सुन्दर विमान में बैठ कर अमृत-पान करते हुए धर्मराज के भवन में जाते हैं। वे उस भवन में पश्चिम द्वार से प्रविष्ट होकर धर्मसभा के अन्दर जाते हैं ॥ ६८–७३ ॥ उन्हें आया हुआ देख कर यमराज पुनः-पुनः स्वागत-वचन बोलते हैं, उठ खड़े होते हैं और उनके

१. पञ्चयज्ञों में (१) ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), (२) देवयज्ञ (होम), (३) भूतयज्ञ (इन्द्रादि देवों सहित विभिन्न प्राणियों के निमित्त घर के बाहर अन्न की बलि देना) (४) पितृयज्ञ (पितरों का तर्पण और श्राद्ध आदि) और (५) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार आदि)।

पास जाते हैं ॥ ७४ ॥ उस समय [भगवान् विष्णु के समान] चतुर्भुज स्वरूप ग्रहण करके यमराज अपने चारों हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और असि (खड्ग) धारण किये रहते हैं और जो मनुष्य अपने जीवन काल में पुण्यकर्म में संलग्न रहे होते हैं उनके साथ वह स्नेह के साथ मित्रवत् आचरण करते हैं ॥७५॥ वह ऐसे मनुष्यों को बैठने के लिए सिंहासन देते हैं, उनको नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात् पाद्य जल से पैर धुलाते हैं और अर्घ्य

समुत्थानं च कुरुते तेषां गच्छति सन्मुखम् ॥ ७४ ॥ तदा चतुर्भुजो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत्। पुण्यकर्मरतानां च स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ॥ ७५ ॥ सिंहासनं च ददते नमस्कारं करोति च। पादार्घं कुरुते पश्चात्पूजते चन्दनादिभिः ॥ ७६ ॥

यम उवाच

नमस्कुर्वन्तु भोः सभ्या ज्ञानिनं परमादरात्। एष मे मण्डलं भित्वाब्रह्म लोकं प्रयास्यति ॥७७॥ भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठा नरकक्लेशभीरवः। भवद्भिः साधितं पुण्यैर्देवत्वं सुखदायकम् ॥ ७८ ॥

देते हैं और तब चन्दन आदि से उनकी पूजा करते हैं ॥ ७६ ॥ यम कहते हैं—'हे सभासदो! इस ज्ञानी को परम आदर के साथ नमस्कार करो। यह मेरे (यमलोक के) मण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक में चला जायेगा ॥७७॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मनुष्यों! हे नरक-यातना से भयभीत रहने वाले मनुष्यों! आप लोगों ने अपने पुण्यकर्मों से सुखदायी देवत्व प्राप्त कर लिया है ॥ ७८ ॥ मनुष्य योनि में दुर्लभ जन्म प्राप्त करके जो मनुष्य नित्यस्थायी धर्म

को सिद्ध नहीं करता वह घोर नरक में गिरता है। उससे अधिक विवेकहीन अन्य कौन हो सकता है ॥ ७९॥
जो मनुष्य अपने अस्थिर शरीर और अस्थिर धन-वैभव आदि से चिरस्थायी धर्म का सञ्चय करता है, एकमात्र वही बुद्धिमान् है ॥ ८० ॥ अतः पूरे प्रयत्न से धर्म का सञ्चय करना चाहिए। अब आप लोग समस्त भोग-विलास

मानुषं दुर्लभं प्राप्य नित्यं[1] यस्तु न साधयेत्। स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥७९॥
अस्थिरेण शरीरेण योऽस्थिरैश्च धनादिभिः। सञ्चिनोति स्थिरं धर्मं स एको बुद्धिमान्नरः ॥८०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो धर्मसञ्चयः। गच्छध्वं पुण्यवत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम् ॥८१॥
इति धर्मवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य सभां च ताम्। अमरैः पूज्यमानास्ते स्तूयमाना मुनीश्वरैः॥८२॥
विमानगणसंकीर्णाः प्रयान्ति परमं पदम्। केचिद्धर्मसभायां हि तिष्ठन्ति परमादरात् ॥८३॥

के साधनों से सम्पन्न पुण्यात्माओं के स्थान-स्वर्ग में जाइए ।८१॥ धर्मराज के ऐसे वचनों कोसुन कर वे पुण्यात्मा उनको तथा उनकी सभा को प्रणाम करके देवताओं के द्वारा सम्मानित (पूजित) और मुनीश्वरों के द्वारा प्रशंसित होते हुए विमानों में बैठ कर परमपद—वैकुण्ठलोक को जाते हैं और उनमें से कुछ परम आदर के पात्र बन कर

१. नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ महाभारत उद्योगपर्व ४०।१२ स्वर्गारोहण पर्व ५।६३।

[स्वेच्छया] धर्मराज की सभा में ही रह जाते हैं ॥ ८२–८३ ॥ वहाँ एक कल्प पर्यन्त रह कर तथा मनुष्यलोक में अप्राप्य भोग-विलास के साधनों का उपभोग करके यत्किञ्चित् पुण्य शेष रह जाने पर पुण्यात्मा मनुष्य पुण्यदर्शन वाले इस मनुष्यलोक में जन्म पाता है ॥८४॥ वह इस लोक में महाधनी, सर्वज्ञ और सर्वशास्त्रपारङ्गत

उषित्वा तत्र कल्पान्तं भुक्त्वा भोगानमानुषान् । प्राप्नोति पुण्यशेषेण मानुष्यं पुण्यदर्शनम् ॥८४॥
महाधनी च सर्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । पुनः स्वात्मविचारेण ततो याति परां गतिम् ॥८५॥
एतत्ते कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यमालयम् । इदं शृण्वन्नरो भक्त्या धर्मराजसभां व्रजेत् ॥८६॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे धर्मराजनगरनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १४ ॥

होता है और पुनः अध्यात्म-चिन्तन में संलग्न रहता है तथा उसके फलस्वरूप परमगति को प्राप्त करता है ॥८५॥ [हे गरुड !] तुमने यमलोक के विषय में जो कुछ पूछा था वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया है । इसे भक्तिपूर्वक सुन कर मनुष्य धर्मराज की सभा में जाता है ॥ ८६ ॥
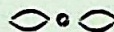
अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सुकृतिजनजन्माचरणादिनिरूपणम्

गरुड ने कहा—धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग का भोग करके पुनः निर्मल कुल में जन्म ग्रहण करता है। अतः यह बतलाइए कि वह जननी के गर्भ में कैसे जन्म-ग्रहण करता है॥ १॥ पुण्यात्मा मनुष्य इस मानव-देह के विषय में जिस प्रकार का विचार करता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ। हे दयानिधे! यह सब मुझे बतलाइए॥ २॥

श्रीगरुड उवाच—

धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले। अतस्तस्य समुत्पत्तिं जननीजठरे वद॥१॥
यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन् सुकृती जनः। तथाऽहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे॥२॥

श्रीभगवानुवाच—

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य! परं गोप्यं वदामि ते। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥३॥
वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्। ब्रह्माण्डगुणसम्पन्नं योगिनां धारणास्पदम्॥४॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड! तुमने ठीक ही पूछा है। मैं तुम्हें परम गोपनीय ज्ञान बतलाता हूँ, जिसको सम्यक् रूप से जानने मात्र से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥ ३॥ [शरीर के दो भेद होते हैं—व्यावहारिक शरीर और पारमार्थिक शरीर। मैं तुम्हें पहले] पारमार्थिक शरीर के विषय में बतलाता हूँ, जो कि ब्रह्माण्ड के गुणों से सम्पन्न

है और जिसमें योगी जन [षट् चक्रों और कुण्डलिनी आदि विषयक] ध्यान-धारणा आदि करते हैं ।। ४ ।। इस पारमार्थिक शरीर में योगी जन जिस प्रकार षट्चक्रों का चिंतन करते हैं और ब्रह्मरन्ध्र में सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का ध्यान जैसे करते हैं, वह सब मुझसे सुनो ।। ५ ।। पुण्यात्मा जीव शुचि आचरण वाले श्रीसम्पन्न गृहस्थों के

षट्चक्रचिन्तनं यस्मिन् यथा कुर्वन्ति योगिनः। ब्रह्मरन्ध्रे चिदानन्दरूपध्यानं तथा शृणु ।। ५ ।।
शुचीनां श्रीमतां गेहे जायते सुकृती यथा । तथा विधानं नियमं तत्पित्रोः कथयामि ते ।।६।।
ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् । तावन्नालोकयेद्वक्त्रं पापं वपुषि सम्भवेत् ।।७।।

घर में जिस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसके माता-पिता जिस प्रकार के विधानों और नियमों का पालन करते हैं वह मैं तुमको बतलाता हूँ ।। ६ ।। स्त्रियाँ अपने ऋतुकाल में जब रजस्वला होती हैं तब पुरुषों को चार दिनों तक उनका संसर्ग त्याग देना चाहिए । तब तक उनका मुख भी नहीं देखना चाहिए, क्योंकि उन दिनों उनके शरीर में इन्द्र की ब्रह्महत्या का पाप[1] रहता है ।। ७ ।। ऋतुमती नारी चौथे दिन सवस्त्र स्नान करने पर शुद्ध होती है तथा

---

१. विश्वरूप के वध से इन्द्र की लगी हुई ब्रह्महत्या का एक अंश स्त्रियों को दिये जाने की कथा तैत्तिरीयसंहिता २।५।१।१–६, रामायण ७।८६।१५, शान्तिपर्व २८२।३१-५, बृहत्पराशरस्मृति ८।३१८–३२२ तथा अनेक पुराणों में है । तैत्तिरीयसंहिता में रजस्वला के साथ वार्तालाप शयन तथा उसके हाथ का अन्न-भक्षण वर्जित किया गया है । ब्रह्मपुराण (बम्बई सं०) ११३।२३ में रजस्वला का दर्शन और स्पर्श तथा उसके साथ वार्तालाप वर्जित बतलाया गया है । सुश्रुत (संहिता, चिकित्सास्थान २४।१२१–२) के अनुसार रजस्वलागमन से नेत्र-ज्योति, आयु और तेज नष्ट होता है । मनु ४।४१ के अनुसार रजस्वलागमन से प्रज्ञा, तेज, बल, चक्षु और आयु क्षीण होती है । गरुडपुराण (पू० ११४।२६) के अनुसार रजस्वला का मुख देखने से भी आयु क्षीण होती है । शान्तिपर्व २८२।४६ तथा पद्मपुराण ६।१६८।६९ के अनुसार रजस्वला स्त्रियों में जो इन्द्रकृत ब्रह्महत्या चतुर्थांश रूप में रहती है वह रजस्वलागामी पुरुष को लग जाती है ।

स्नात्वा सचैलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुध्यति। सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने॥८॥
सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेन्मलिनाशयः। प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः॥९॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्माद्युग्मासु संविशेत्॥१०॥

एक सप्ताह बीतने पर ही वह पितरों और देवों के पूजन और व्रतोद्यापन आदि करने के योग्य होती है ॥ ८ ॥ एक सप्ताह के बीच गर्भधारण होने पर मलिन मनोवृत्ति वाली सन्तान का जन्म होता है।[1] नारी के ऋतुमती होने के आठवें दिन [की रात्रि में] गर्भाधान होने पर [स्वस्थ] पुत्र उत्पन्न होता है[2] ॥ ९ ॥ नारी के रजःस्राव की रात्रि को लेकर गिनने पर युग्म (अर्थात् सम) संख्या वाली रात्रियों (यथा-छटी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रि में) समागम करने से पुत्र उत्पन्न होते हैं और अयुग्म (अर्थात् विषम) संख्या वाळी रात्रियों (यथा—पाँचवीं, सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं, तेरहवीं और पन्द्रहवीं रात्रि) में समागम करने से कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। अतः [पुत्र की कामना वाले पुरुष को] प्रथम सात रात्रियाँ छोड़ कर अगली युग्म रात्रियों (अर्थात् आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं या सोलहवीं रात्रि) में स्त्री-समागम करना चाहिए ॥ १० ॥ सामान्यतः

---

१. सुश्रुतसहिता (शरीरस्थानम् २।३३) के अनुसार रजस्वला स्त्री में प्रथम और द्वितीय दिन गर्भाधान होने पर उत्पन्न सन्तान प्रसब काल में और प्रसूतिगृह में ही मर जाता है और तीसरे दिन गर्भाधान के फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र अङ्गहीन और अल्पायु होता है। लिङ्गपुराण (पू० ८९।१०९-११०) के अनुसार ऋतुमती स्त्री में चौथे दिन गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र अल्पायु, विद्याहीन, व्रतभ्रष्ट, पतित, परस्त्रीगामी और दरिद्र होता है। २. गुणी पुत्र की कामना से आठवीं रात्रि में स्त्री-संसर्ग की संस्तुति आयुर्वेद में भी प्राप्त होती है। द्र०— वाग्भट्कृत अष्टाङ्गसंग्रह, शरीरस्थानम् १।४७

स्त्रियों के रजोदर्शन-दिवस की रात्रि से लेकर सोलह रात्रियों तक का काल ऋतुकाल बतलाया गया है। इसमें जो चौदहवीं-रात्रि है उस रात्रि को स्त्री-संसर्ग के फल-स्वरूप गर्भ ठहरने पर सद्‌गुणों और सौभाग्य से सम्पन्न, सम्पत्तिशाली और धार्मिक प्रकृति का पुत्र उत्पन्न होता है।[1] किन्तु उस रात्रि को गर्भाधान का अवसर सामान्य मनुष्यों को कदापि नहीं मिल पाता ॥ ११–१२ ॥ सत्पुत्र की कामना वाली स्त्रियों को ऋतुकाल के पाँचवे दिन

ग० पु० भा.टी.

षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः। या वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै ॥११॥
गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदा जायेत धार्मिकः। सा निशा प्राकृतैर्जीवैर्न लभ्येत कदाचन ॥१२॥
पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं मधुरभोजनम्। कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः ॥१३॥
तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायनम्। तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात् ॥१४॥

[ऋतुकाल पर्यन्त] मधुर भोजन करना चाहिए। कड़ुवा, खारा, तीखा और उष्ण भोजन दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥ १३ ॥ तब वह स्त्री का क्षेत्र (गर्भाशय) ओषधि अर्थात् बीज को बोने के लिए सुयोग्य पात्र हो जाता है और उसमें बोया गया बीज अमृतवत् होता है अर्थात् उसमें स्थापित बीज अमृतवत् सुरक्षित रहता है और उस बीज को बोने वाला स्वामी पुरुष उसके अच्छे फल के रूप में अच्छे पुत्र को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ पुरुष

१. ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता ८।२६५ (तु० निर्णयसिन्धु पृ० १७४ में उद्धृत व्यास-वचन) के अनुसार ऋतुकाल की चौदहवीं रात्रि में गर्भाधान होने पर धर्मज्ञ, कृतज्ञ, शास्त्रज्ञ, राजा और सर्व-विध भोग-विलास के साधनों का भोग करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है।

को मुँह में पान रख कर, पुष्पमाला धारण कर, चन्दन लगा कर, शुद्ध वस्त्र धारण करके और मन में धर्मभाव रखते हुए अर्थात् धार्मिक विचारों का चिन्तन करते हुए पत्नी के साथ सुन्दर शय्या में शयन करना चाहिए ॥ १५ ॥ गर्भाधान के समय पुरुष की जैसी मनोवृत्ति और जैसी भावना रहती है उसी प्रकार के स्वभाव वाला जीव गर्भ में प्रविष्ट होता है ॥ १६ ॥ चैतन्यात्मा बीज का स्वरूप ग्रहण करके शुक्र में भी नित्य स्थित रहता है। जब स्त्री

ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत् पुमान् ॥१५॥ निषेकसमये यादृङ्नरचित्त-विकल्पना । तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्विंशति कुक्षिगः ॥१६॥ चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम्[1] । कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः । शुक्रशोणितसंयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥ १८ ॥ परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती । भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः

के साथ समागम के समय पुरुष की कामेच्छा, चित्तवृत्ति और शुक्र (बीज) का एकत्र मिलन अर्थात् एककालिक उद्रेक होता है तब पुरुष [का बीज] स्त्री के गर्भाशय में द्रवित (स्खलित) होता है। उस गर्भाशय में शुक्र और शोणित (अर्थात् वीर्य और रज) के संयोग से पिण्ड अर्थात् गर्भस्थ शरीर की उत्पत्ति होती है ॥ १७-१८ ॥ गर्भ में आने पर पुण्यशाली पुत्र पिता को परम आनन्द प्रदान करता है। उसके पुंसवन आदि समस्त संस्कार

१. द्र०—चैतन्यं बीजरूपे हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम् । गरुड़०उ० २२।१६

किये जाते हैं ॥ १९ ॥ पुण्यात्मा मनुष्य का जन्म सूर्य आदि ग्रहों के उच्च राशि[१] में स्थित होने पर होता है। उसके जन्म के समय ब्राह्मण बहुत-सा धन दान में प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥ वह पिता के घर में विद्या और विनय से युक्त होकर बढ़ता है और सत्पुरुषों के संसर्ग से सभी शास्त्रों का पण्डित हो जाता है ॥ २१ ॥ पूर्व जन्म में किये गये।तप, तीर्थस्नान आदि धर्मों के महापुण्य के फल के उदय के फलस्वरूप वह तरुण होकर दिव्य [सौन्दर्य

पुंसवनादिकाः ॥ १९ ॥ जन्म प्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषु च। तज्जन्मसमये विप्राः प्राप्नुवन्ति धनं बहु ॥२०॥ विद्याविनयसम्पन्नो वर्धते पितृवेश्मनि। सतां सङ्गेन स भवेत्सर्वागमविशारदः ॥ २१ ॥ दिव्याङ्गनादिभोक्ता स्यात्तारुण्ये दानवान् धनी। पूर्वं कृततपस्तीर्थमहापुण्यफलोदयात् ॥ २२ ॥ ततश्च यतते नित्यमात्मानात्मविचारणे। अध्यारोपापवादाभ्यां

और सद्गुणों से सम्पन्न] स्त्रियों के साथ सुखोपभोग करने वाला, दानी और धनी होता है ॥ २२ ॥ तब वह नित्यमेव आत्मा और अनात्मा (अर्थात् परमात्मा और उससे भिन्न पदार्थों के विषय में विचार करने लगता है। जिससे उसे यह बोध होता है कि सांसारिक मनुष्य भ्रमवश रस्सी में सर्प के आरोप की भाँति वस्तु अर्थात्

---

१. मेष राशि (के १० अंश) में सूर्य, वृष राशि (के ३ अंश) में चन्द्र, मकर राशि (के २८ अंश) में मङ्गल, कन्या राशि (के१५ अंश) में बुध, कर्क राशि (के ५ अंश) में गुरु, मीन राशि (के २७ अंश)में शुक्र और तुला राशि (के २० अंश) में शनि उच्च का होता है (द्र० ताजिक-नीलकण्ठी पृ० ४६, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पृ० १५)।

सच्चिदानन्द ब्रह्म में अवस्तु अर्थात् अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्च का अध्यारोप[1] करता है। तब अपवाद[2] (अर्थात् मिथ्याज्ञान या भ्रमज्ञान के निराकरण) से रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के निराकरण पूर्वक रस्सी की वास्तविकता के ज्ञान के समान ब्रह्मरूपी सत्य वस्तु में अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्च की मिथ्या प्रतीति के दूर हो जाने पर और ब्रह्म रूप सत्य वस्तु का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर वह उसी सच्चिदानन्द ब्रह्म का चिन्तन करने लगता है ॥२३॥

कुरुते ब्रह्मचिन्तनम् ॥ २३ ॥ अस्यासङ्गावबोधाय ब्रह्मणोऽन्वयकारिणः। क्षित्याद्यनात्म-वर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम् ॥ २४ ॥ क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता वायुराकाश एव च। स्थूल-भूता इमे प्रोक्ताः पिण्डोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ २५ ॥ त्वगस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैव

सांसारिक पदार्थ रूप असत् (अवस्तु) या अनात्म पदार्थों से अन्वित (या सम्बद्ध) होने वाले इस ब्रह्म के सङ्ग-रहित शुद्ध स्वरूप के सम्यक् बोध के लिए मैं तुम्हें इसके साथ अन्वित या सम्बद्ध प्रतीत होने वाले पृथिवी आदि अनात्मवर्ग के अर्थात् पञ्चभूतों आदि के गुणों को बतलाता हूँ ॥ २४ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत (स्थूलभूत) कहलाते हैं। यह शरीर इन्हीं पञ्च महाभूतों से बना हुआ है ॥ २५ ॥ हे गरुड !

१, असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः। वेदान्तसार २. (क)—अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तुविवर्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्। वेदान्तसार। (ख)—कार्यस्य कारणमात्रविशेषणमपवादः—अवस्तुनि सञ्जाताया-वस्तुबुद्धेरपसारणपूर्वकं सत्यवस्तुमात्रस्थापनमिति भावः। वेदान्तसार की टीका। (ग)—रज्जुविवर्तस्यसर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुभूतब्रह्मणो विवर्तस्य प्रपञ्चादेः वस्तुभूतरूपतोऽपदेशः अपवादः। वाचस्पत्यम्।

मैंने तुम्हें बतलाया है कि इस शरीर में त्वचा, अस्थियाँ, नाड़ियाँ, रोम और मांस ये पाँच गुण भूमि के हैं[१] ॥२६॥ लार, मूत्र, शुक्र (वीर्य), मज्जा (मांस और अस्थियों के बीच में रहने वाली वसा) और रक्त—ये पाँच गुण जल के कहे गये हैं[२]। अब तेज (अर्थात् अग्नि) के गुणों को सुनो ॥ २७ ॥ हे गरुड ! योगियों ने सर्वत्र ही

खगेश्वर ! । एते पञ्चगुणा भूमेर्मया ते परिकीर्तिताः ॥ २६ ॥ लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम् । अपां पञ्चगुणाः प्रोक्तास्तेजसो विनिशामय ॥ २७ ॥ क्षुधा तृषा तथाऽऽलस्यं निद्रा कान्तिस्तथैव च । तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ॥२८॥ आकुञ्चनं धावनं च लंघनं च प्रसारणम् । चेष्टितं[४] चेति पञ्चैव गुणा वायोः प्रकीर्तिताः ॥२९॥ घोष-

क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा और कान्ति (कमनीयता या कामाभिलाषा) ये पाँच गुण अग्नितत्त्व के बतलाये हैं[३] ॥ २८ ॥ आकुञ्चन (अर्थात् सिकोड़ना) धावन (अर्थात् दौड़ना) लङ्घन (अर्थात् लाँघना), प्रसारण (अर्थात्

१. द्रष्टव्य त्वक् च मांसं तथाऽस्थीनि मज्जा स्नायुश्च पञ्चमम् । इत्येतदिह संघातं शरीरे पृथिवीमयम् ॥ शान्तिपर्व १८४।२० ॥

२. द्र०—श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च । इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा ॥ शान्तिपर्व १८४।२३ ।

३. द्र०—तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च । अग्निर्जरयते यश्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः ॥ शान्तिपर्व १८४।२१ ।

४. 'चेष्टितं' गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में प्राप्त और चरकसंहिता शारीरस्थान ४।१२ और सुश्रुतसंहिता १।२६ द्वारा समर्थित । किन्तु गरुडपुराण उ० २२।३४ और गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ३२।४० में 'निरोध' पाठ है ।

फैलाना) और चेष्टित (अर्थात् अङ्गसञ्चालन आदि शारीरिक चेष्टाएँ)—ये पाँच गुण वायु के बतलाये गये हैं[1] ॥ २९ ॥ घोष (शब्द), छिद्र, गाम्भीर्य, श्रवणेन्द्रिय (कान) और सर्वसंश्रयता (अर्थात् समस्त तत्त्वों को आश्रय

छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः[2]। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ॥३०॥
मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम् ॥ ३१ ॥

प्रदान करना)—ये पाँच गुण आकाश के हैं। ये तुम्हारे द्वारा प्रयत्न-पूर्वक जाने जा सकते हैं[3]॥ ३० ॥ मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त—इन चारों को अन्तःकरण कहा जाता है जो कि पूर्वजन्म के कर्मों की वासना से अधि-

---

१. द्र० —प्राणात् प्राणीयते प्राणी व्यानाद् व्यायच्छते तथा । गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृद्यवस्थितः ॥ उदानादुच्छ्वसिति च प्रतिभेदाच्च भाषते । इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनाम् ॥ शान्तिपर्व १८४।२४-२५ ।

२. गरुडपुराण (काशी संस्करण) उ० २२।३६से स्वीकृत पाठ । तु०—घोषश्चिन्ता च गाम्भीर्यं श्रवणं सत्यसंक्रमः । गरुडपुराण धर्मकाण्ड ३२।४१ । पाठान्तर—घोषश्चिन्ता च शून्यत्वं मोहश्चिन्ता च संशयः ।—गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित यह पाठ पूर्णतः संगत नहीं हो पाता । आकाश के कार्यों में कहीं पर ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसन्धान और अभिमान (त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषत् ६) । तथा कहीं पर काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय (शारीरकोपनिषत् ५) को गिनाया गया है । 'यत् सुषिरं तदाकाशम्' (शारीरकोपनिषत् तथा गर्भोपनिषत्) के वचन-प्रामाण्य को देखते हुए निर्धारित पाठ में 'चिन्ता' के स्थान पर 'छिद्राणि' का औचित्य सिद्ध होता है । इस प्रकार की अवधारणा अन्य शब्दों के विषय में भी करनी चाहिए उदाहरणार्थ-आकाश का कार्य अवकाश प्रदान करना है (द्र० गर्भोपनिषत्) । अतः 'सत्यसंक्रम.' (गरुड-पुराण धर्मकाण्ड के पाठ) की अपेक्षा । 'सर्वसंश्रयः' उचित है ।

३. द्र० —श्रोत्रं घ्राणं तथाऽऽस्यं (मुखं) च हृदयं कोष्ठमेव च । आकाशात् प्राणिनामेते शरीरे पञ्च धातवः ॥ शान्तिपर्व १८४।२२ ।

वासित रहता है ॥ ३१ ॥ कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और घ्राण (नाक) ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ३२ ॥ दिशाएँ, वायु, सूर्य, प्रचेता (वरुण) और अश्विनीकुमार [—ये पाँच देवता क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—इन पाँच] ज्ञानेन्द्रियों के और अग्नि, इन्द्र, विष्णु, यम

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषो जिह्वा घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाणि च। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि च ॥ ३२ ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमृत्युकाः[१]। ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च देवताः परिकीर्तिताः ॥ ३३ ॥ इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्नाख्या तृतीयका। गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥ ३४ ॥ अलम्बुषा कुहूश्चापि शंखिनी दशमी तथा। पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडिकाः ॥ ३५ ॥ प्राणोऽपानः समानाख्य उदानो व्यान एव

और प्रजापति [—ये पाँच क्रमशः वाणी, पाणि, पाद, पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग)—इन पाँच] कर्मेन्द्रियों के देवता बतलाये गये हैं ॥ ३३ ॥ इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, गान्धारी, गजजिह्वा (हस्तिजिह्वा), पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी—ये दश प्रधान नाडियाँ शरीर में स्थित हैं[२] ॥ ३४–३५ ॥ प्राण, अपान, समान,

---

१. पाठान्तर – मित्रकाः। सभी स्थानों से मुद्रित संस्करणों का यह पाठ नितान्त असंगत है। निर्धारित का पाठ समर्थन पैङ्गलोपनिषत् के श्लोक ३ तथा वेदान्तसार आदि के वचनों से होता है। २. इन नाडियों की शरीर में स्थिति इस प्रकार बतलायी गयी है—इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिङ्गला स्थिता। सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥ दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे तु दक्षिणे। यशस्विनी वामकर्णे चानने चाप्यलम्बुषा। कुहुश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी। योगचूडामणि उपनिषद् १८।२०

उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दश वायु शरीर (के विभिन्न अङ्गों) में रहते हैं ॥३६॥ प्राणवायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभिमण्डल में, उदान वायु कण्ठ में और व्यान वायु समस्त शरीर में व्याप्त रहता है ॥ ३७ ॥ नाग नामक वायु उद्गार अर्थात् डकार लेने या वमन करने का कार्य करता है, कूर्म नामक वायु नेत्रों को खोलने (पलक झपकाने) का कार्य करता है, कृकल नामक वायु क्षुधा को उद्दीप्त

च। नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ३६ ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले। उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ३७ ॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः। कृकलः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ३८ ॥ न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः। कवलैर्भुक्तमन्नं हि पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ॥३९॥ नयते व्यानको ~~रसं~~ नामः सारांशं

करता है और देवदत्त नामक वायु विजृम्भण (जँभाई लेने तथा निद्रा लाने) का कार्य करता है[1] ॥३८॥ शरीर में सर्वत्र व्याप्त धनञ्जय[2] नामक वायु पुरुष को मृत्यु के पश्चात् भी शवदाह पर्यन्त नहीं छोड़ता। मनुष्यों के द्वारा कवलों (अर्थात् ग्रासों) के रूप में खाये हुए पुष्टिकारक अन्न के सारांशभूत रस को व्यान नामक वायु शरीर की समस्त नाडियों में पहुँचाता है। भोजन के तत्काल पश्चात् उदरस्थ अन्न को वायु द्विधा विभक्त करने लगता है

१. दशपवनों के स्थानों और कार्यों का निर्देश वेदान्तसार, त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ७८।८६, योगचूडामणि उपनिषत् २३, महाभारत शान्तिपर्व १८४।२४।२५ आदि में प्राप्त होता है। २. द्र०—मृत शरीर की शोभा बनाये रखना आदि कार्य धनञ्जय नामक वायु के हैं—मृतगात्रस्य शोभादि धनञ्जय उदाहृतः। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ८६।

॥३९–४०॥ वह वायु गुदा में प्रविष्ट होकर सम्यक् रूप से अन्न के स्थूल अंश और जल को पृथक्-पृथक् कर देता है। वह अग्नि के ऊपर जल तथा जल के ऊपर अन्न को करके और अग्नि के नीचे वह वायु (प्राण) स्वयं स्थित होकर उस अग्नि को शनैः-शनैः धौंकता है। वायु के द्वारा धौंके जाने पर अग्नि उस अन्न के किट्ट (अर्थात् मल) तथा रस को पृथक्-पृथक् कर देता है। तब वह व्यान वायु उस रस को समस्त शरीर में पहुँचाता है। रस से

सर्वनाडिषु। आहारो भुक्तमात्रो हि वायुना क्रियते द्विधा ॥ ४० ॥ संप्रविश्य गुदे सम्यक्पृथगन्नं पृथग्जलम्। ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा कृत्वान्नं च जलोपरि ॥ ४१ ॥ अग्नेश्चाधः स्वयं प्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः। वायुना ध्मायमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ॥४२॥ कुरुते व्यानको वायुर्विष्वक् सम्प्रापयेद्रसम्। द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नं किट्टं देहाद् बहिः स्रवेत् ॥४३॥ कर्णाऽक्षिनासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्नखा गुदम्। गुह्यं शिरा वपुर्लोम मलस्थानानि चक्षते ॥ ४४ ॥ एवं सर्वे प्रवर्तन्ते स्वस्वकर्मणि वायवः। उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्यालोकं यथा

पृथक् हुआ वह मल शरीर के कान नाक आदि बारह छिद्रों (द्वारा) से बाहर निकलता है ॥ ४१–४३ ॥ कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, नख, गुदा, गुप्ताङ्ग, शिराएँ (अर्थात् सूक्ष्म नाड़ियाँ), समस्त शरीर [में स्थित सूक्ष्म छिद्र] और रोम—ये बारह मल के निकास-स्थान कहे जाते हैं ॥ ४४ ॥ जैसे सूर्य से प्रकाश को प्राप्त करके जनता अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त होती है उसी प्रकार शरीरस्थ आत्मा से अपनी सत्ता को प्राप्त करके सभी वायु

अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त रहते हैं ॥ ४५ ॥ हे गरुड ! अब तुम यह सुनो [और समझो] कि मनुष्य के शरीर के दो स्वरूप होते हैं। उनमें से एक है व्यावहारिक शरीर और दूसरा है पारमार्थिक शरीर ॥४६॥ व्यावहारिक शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम, सात लाख केश और बीस नख बतलाये गये हैं ॥ ४७ ॥ हे वैनतेय ! सामान्यतः

जनः ॥ ४५ ॥ इदानीं नरदेहस्य शृणु रूपद्वयं खग ! । व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं पारमार्थिकम्[1] ॥ ४६ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च रोमाणि व्यावहारिके। सप्तलक्षाणि केशाः स्युर्नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः ॥ ४७ ॥ द्वात्रिंशद् दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद् विनतासुत ! । मांसं पलसहस्रं तु रक्तं पलशतं स्मृतम् ॥ ४८ ॥ पलानि दश मेदस्तु त्वक्पलानि च

मनुष्य के बत्तीस दाँत बतलाये गये हैं। उसके शरीर में एक सहस्र पल मांस और एक सौ पल रक्त बतलाया गया है ॥४८॥ उसमें दश पल मेद, सत्तर पल त्वचा, बारह पल मज्जा और तीन पल महारक्त[2] (?) होता है॥४९॥

---

१. प्रकरणगत औचित्य की दृष्टि से यह श्लोक इस अध्याय के तीसरे श्लोक के बाद रखे जाने योग्य है और वहाँ जो चौथा श्लोक है वह ५२ वें श्लोक के आगे स्थापनीय है।

२. शिवपुराण ५।३२।४८ में भी मनुष्य-शरीर में तीन पल महारक्त बतलाया गया है। गरुडपुराण सारोद्धार १५।४८–५२ (तु० गरुड० उत्तरार्द्ध २२।४८–५१ तथा गरुडपुराण धर्मकाण्ड ३२।५३–५६) की इस विषय-वस्तु का संवाद जितना शिवपुराण ५।२२।४७–५० से मिलता है उतना आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ और याज्ञवल्क्य स्मृति (३।१०५-१०७) आदि में नहीं मिलता।

यह बतलाया गया है कि सामान्यतः पुरुष के शरीर में दो कुडव[2] शुक्र होता है और स्त्री के शरीर में एक कुडव रज होता है। पूरे शरीर में तीन सौ साठ अस्थियाँ (हड्डियाँ) होती हैं ॥ ५० ॥ इस शरीर में स्थूल और सूक्ष्म (मोटी और पतली) नाडियाँ करोड़ों बतलायी गयी हैं। इसमें पचास पल पित्त और उसका आधा (पचीस पल) श्लेष्म (कफ) बतलाया गया है ॥ ५१ ॥ सदा होते रहने वाले मल-मूत्र का कोई निश्चित परिमाण नहीं रहता

सप्ततिः[1] । पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम् ॥४९॥ शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं कुडवं शोणितं स्मृतम् । षष्ट्युत्तरं च त्रिशतमस्थ्नां देहे प्रकीर्तितम् ॥ ५० ॥ नाड्यः स्थूलाश्च सूक्ष्माश्च कोटिशः परिकीर्तिताः । पित्तं पलानि पञ्चाशत् तदर्धं श्लेष्मणस्तथा ॥ ५१ ॥ सततं जायमानं तु विण्मूत्रं चाप्रमाणतः । एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम् ॥५२॥ भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः । आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके ॥५३॥ पारमार्थिक-

अर्थात् आहार के परिमाण के अनुसार ही मल-मूत्र का परिमाण होता है।[3] यह व्यावहारिक शरीर इन्हीं उपर्युक्त गुणों से युक्त है ॥ ५२ ॥ पारमार्थिक शरीर में सभी चौदहों भुवन (लोक), सभी पर्वत, सभी द्वीप और सभी

---

१. द्र०—पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समा । गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ३२।५४ ।

२. शिवपुराण ५।२२।४६ के अनुसार शरीर में आधा कुडव शुक्र रहता है। संस्कृत शब्दकोश (आप्टे) के अनुसार कुडव का परिमाण एक चौथाई प्रस्थ होता है। ३. द्र० —अनियतं मूत्रपुरीषमाहारपरिमाणात् । [illegible]६ ।

सागर तथा सूर्य आदि सभी ग्रह [सूक्ष्म रूप से] विद्यमान हैं[1] ॥ ५३ ॥ पारमार्थिक शरीर में मूलाधार आदि छः चक्र होते हैं[2] । ब्रह्माण्ड में जो गुण बतलाये गये हैं वे सब भी इसी शरीर में स्थित हैं ॥ ५४ ॥ योगियों की धारणा के विषयीभूत उन [ब्रह्माण्ड विषयक] गुणों को मैं तुम्हें बतलाता हूँ जिनकी [पारमार्थिक शरीर में]

देहे हि षट्चक्राणि भवन्ति च । ब्रह्माण्डे ये गुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेव संस्थिताः ॥ ५४ ॥
तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदान् । येषां भावनया जन्तुर्भवेद् वैराजरूपभाक् ॥५५॥
पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा । जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम् ॥५६॥
तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम् । पातालं कटिसंस्थं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः ॥५७॥

भावना करने से जीव वैराज[3] (या विराट) स्वरूप का भागी हो जाता है ॥ ५५ ॥ इस शरीर में चरणों के नीचे (पैरों के तलवे में) अतल (तल), पैरों के ऊपर वितल, घुटनों में सुतल और सक्थि भाग (जाँघों में) महातल को अवस्थित समझना चाहिए ॥ ५६ ॥ सक्थियों के मूल अर्थात् नितम्ब में तलातल, गुह्याङ्ग में रसातल और कटि

१. द्र० - यावन्तो हि लोके (मूर्तिमन्तो) भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे यावन्तः पुरुषे: तावन्तो लोके—चरकसंहिता, शरीर स्थानम् ५।३ । श्रीमद्भागवतपुराण द्वितीत स्कन्ध केप्रथम अध्याय (लोक २५।३७) में भगवान् के विराट रूप के वर्णन में और देवीभागवतपुराण के सातवें स्कन्ध के तेतीसवें अध्याय (श्लोक २३–३८) में देवी के विराट रूप के वर्णन में लोक-पुरुष साम्य सर्वप्रथम विवरण श्रीमदभगवद्गीता में ही है । की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है । भगवान् के विराट् रूप में यावद्ब्रह्माण्ड की विद्यमानता का २. मूलाधार आदि छः चक्रों का विवरण इसके आगे श्लोक ७२ से ८२ तक में हैं । ३. द्र०—वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः । भाग० २।१।२५ ।

प्रदेश में पाताल स्थित है। इस तरह पैरों के तलवों से लेकर कटि-पर्यन्त ये सात अधोवर्ती लोक बतलाये गये हैं[१] ॥ ५७ ॥ नाभि के मध्य में भूलोक, नाभि के ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्लोक और कण्ठ में महर्लोक को स्थित समझना चाहिए ॥ ५८ ॥ जनलोक मुख में, तपोलोक ललाट में और सत्यलोक ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है।

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके। स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा ॥५८॥
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥५९॥
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधः कोणे च मन्दरः। दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥६०॥

इस प्रकार ये चौदहों लोक पारमार्थिक शरीर में स्थित हैं ॥ ५९ ॥ त्रिकोण[२] के मध्य में मेरु पर्वत स्थित है। उस त्रिकोण के तीनों कोणों में से नीचे वाले कोण में मन्दराचल, दाहिनी ओर के कोण में कैलास पर्वत और बाँयी

---

१. अधोवर्ती लोकों का अन्य क्रम है—अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल (द्र० गरुडपुराण उत्तरार्द्ध २२।५३-४)। आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय जी ने भी पुराण विमर्श में यही क्रम स्वीकार किया है।

२. उपनिषदों में बतलाया गया है कि मनुष्य का शरीर सामान्यतः ९६ अंगुल लम्बा होता है और उसके मध्य में तप्त सुवर्ण के समान रंग वाले अग्नि का स्थान है, जो कि त्रिकोण की आकृति का है (द्र० त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् श्लोक ५६, शाण्डिल्योपनिषत् ४, जाबालदर्शनोपनिषत् ४।१।२)। योगराजोपनिषद् श्लोक ५ में प्रथम चक्र (ब्रह्मचक्र या मूलाधार चक्र) को त्रिकोण के आकार का बतलाया गया है। अतः त्रिकोण की स्थिति मूलाधार में (या उसके तनिक नीचे) मानी जा सकती है। गोरक्ष कृत सिद्धसिद्धान्तपद्धति ३।१० में आठ कुल पर्वतों की स्थिति शरीर के विभिन्न अङ्गों में कल्पित की गयी है। द्रष्टव्य—मेरुपर्वतो मेरुखण्डे वसति, कैलासो ब्रह्मकपाटे वसति, हिमालयः पृष्ठे मलयो वामकन्धरे, मन्दरो दक्षिणकन्धरे, विन्ध्यो दक्षिणकर्णे, मैनाकः वामकर्णे, श्रीपर्वतो ललाटे; एवमष्टकुलपर्वताः अन्ये उपपर्वताः सर्वाङ्गेषु वसन्ति।

ओर के कोण में हिमालय पर्वत स्थित है ॥ ६० ॥ उस त्रिकोण (या त्रिभुज) की ऊपरी रेखा (या भुजा) में निषध पर्वत स्थित है, दाहिनी ओर की रेखा (या भुजा) में गन्धमादन पर्वत तथा बाँयी ओर की रेखा (या

निषधश्चोर्ध्वरेखायां दक्षायां गन्धमादनः । रमणो[1] वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ॥६१॥

शरीर के मध्य में (मूलाधार के नीचे) स्थित सप्त कुलपर्वतों की स्थिति

१. मलयो । गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ३२।११२ ।
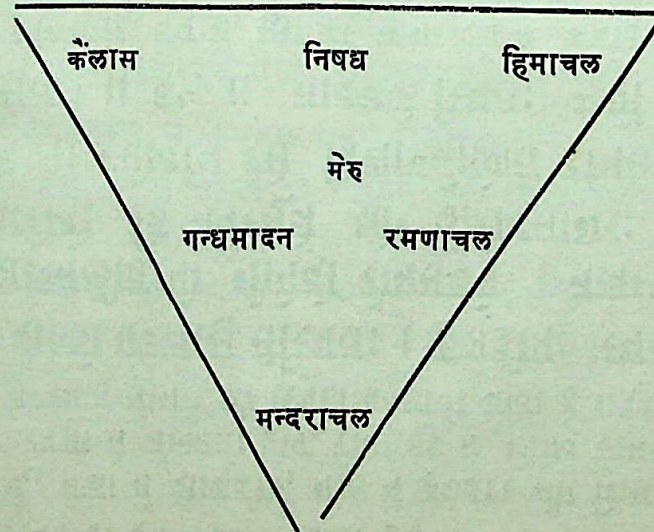
भुजा) में रमण नामक पर्वत स्थित है, इस प्रकार ये सातों कुलपर्वत[1] इस पारमार्थिक शरीर में स्थित हैं ॥ ६१ ॥ अस्थियों में जम्बूद्वीप स्थित है, मज्जा में शाकद्वीप, मांस में कुशद्वीप और शिराओं (अर्थात् सूक्ष्म नाडियों) में क्रौञ्चद्वीप स्थित है ॥ ६२ ॥ त्वचा में शाल्मली द्वीप, रोमसमूह में गोमेद नामक द्वीप और नखों में पुष्कर द्वीप को स्थित समझना चाहिए । तत्पश्चात् सागरों की स्थिति बतलायी जाती है ॥६३॥ क्षार-समुद्र अर्थात् लवणोदधि

अस्थिस्थाने भवेज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः । कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च ॥ ६२ ॥ त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये[2] । नखस्थं पुष्करं विद्यात्सागरास्त-दनन्तरम् ॥ ६३ ॥ क्षारोदो हि भवेन्मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः । सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः ॥६४॥ रसोदधिं रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः । स्वादूदो लम्बिका-स्थाने[3] जानीयाद्विनतासुत ! ॥ ६५ ॥ नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः ।

(या खारा समुद्र) मूत्र में, क्षीरसागर दूध में, सुरा का सागर श्लेष्म अर्थात् कफ में, घृत का सागर मज्जा में स्थित है ॥ ६४ ॥ रस के सागर को शरीरस्थ रस में और दधि-सागर को रक्त में स्थित समझे । हे वैनतेय ! स्वादूदक (स्वादिष्ट जल) के सागर को लम्बिका के स्थान (अर्थात् कण्ठ के अन्दर के लटकते हुए भाग या उपजिह्वा) में स्थित समझे ॥ ६५ ॥ नादचक्र में सूर्य और बिन्दुचक्र में चन्द्रमा स्थित है ।मङ्गल को नेत्रों में

१. पुराणों में सप्त कुलपर्वतों में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र पर्वत हैं । द्रष्टव्य—विष्णुपुराण ,२।३।३ मार्कण्डेय-पुराण५४।१०-११ । २. प्लक्षः रोम्गा च सञ्चये । गरुड़ ध० का० (प्रे० ख०) ३२।११४ । ३. स्वादूदकञ्च विट्स्थाने । गरुडपुराण उ० २२।६२ ।

स्थित समझे। हृदय में बुध की स्थिति बतलायी गयी है ॥ ६६ ॥ विष्णु के स्थान, अर्थात् नाभिप्रदेश में गुरु (बृहस्पति ग्रह) का स्थान समझे। शुक्र अर्थात् वीर्य में शुक्र ग्रह स्थित है। नाभि-स्थान में शनि रहता है और मुख में राहु का स्थान बतलाया गया है ॥ ६७ ॥ वायु के स्थान में (फेफड़ों से लेकर नासिका-रन्ध्र पर्यन्त)

लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये[2] ज्ञः प्रकीर्तितः ॥ ६६ ॥ विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः । नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः ॥६७॥ वायुस्थाने[3] स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् । एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम् ॥६८॥ सदा प्रभातसमये

केतु स्थित रहता है। इस प्रकार समस्त ग्रह-मण्डल इस पारमार्थिक शरीर में विद्यमान है। अतः मनुष्य अपने इस पारमार्थिक शरीर में समस्त ब्रह्माण्ड के स्वरूप का चिन्तन करे[4] ॥६८॥ प्रभात काल में सदैव 'बद्धपद्मासन'[5]

---

१. आगे श्लोक ७६ से स्पष्ट होता है कि विष्णु का स्थान मणिपूर चक्र में है और यह चक्र नाभिमण्डल में स्थित है। नाभि स्थान में विष्णु की स्थिति उपनिषत् से भी सिद्ध होती है। यथा अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम्। चतुर्भुजं महाविष्णुं पूरकेण विचिन्तयेत् ॥ ध्यानबिन्दूपनिषत्, श्लोक ३०। २. हृदये च बुधः स्मृतः। गरुड उ० २२।६३, गरुड ध० का० (प्रे० ख०) ३२।११७।

३. पादस्थाने स्मृतः केतुः। गरुड उ० २२।६५, पायु (द) स्थाने स्थितः। गरुड ध० का० (प्रे० ख०) ३२।११९।

४. योगी अपने शरीर में ही सकल ब्रह्माण्ड को देखता है और उसे आत्मतत्त्व से अभिन्न मानता है—शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्माविभेदतः योगकुण्डल्युपनिषत् २।४९। ५. पद्मासन लगा कर बैठजाने के पश्चात् दाहिने हाथ से बाँये पैर के अंगूठे को तथा बाँये हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ कर बैठना ही बद्धपद्मासन कहलाता है—पद्मासनं तु संस्थाप्य तदङ्गुष्ठद्वयं पुनः। व्युत्क्रमेणैव हस्ताभ्यां बद्धपद्मासनं भवेत् ॥ त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ४० वाँ श्लोक।

लगा कर बैठ जाय और तब षट्चक्रों का चिन्तन करे, तथा यथोक्तक्रम से अजपा जप करे ।।६९।। अजपा नामक गायत्री अपने जप से मुनियों को भी मोक्ष देने वाली है। इसके जप का सङ्कल्प मात्र करने पर भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।। ७० ।। हे गरुड ! सुनो, मैं तुम्हें अजपा जप का उत्तम क्रम बतलाता हूँ, जिस जप को करने से सदैव ही जीव अपने जीव-भाव से मुक्त हो जाता है ।।७१।। मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरक-चक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धिचक्र और आज्ञाचक्र—इन छहों को संयुक्त रूप से षट्चक्र कहा जाता है ।। ७२ ।।

बद्धपद्मासनः स्थितः। षट्चक्रचिन्तनं कुर्याद्यथोक्तमजपाक्रमम् ।। ६९ ।। अजपानाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी। अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।७०।। शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्येऽह-मजपाक्रमम्नुत्तमम् । यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति ।।७१।। मूलाधारः स्वधिष्ठानं मणिपूरकमेव च । अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ।। ७२ ।। मूलाधारे लिङ्गदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे । भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत् ।। ७३ ।। आधारं तु

इन चक्रों का चिन्तन क्रमशः मूलाधार (गुद प्रदेश के ऊपर) लिङ्ग प्रदेश, नाभि-प्रदेश, हृदय, कण्ठ तथा भौंहों के मध्य में करे और ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रारचक्र का चिन्तन करे। अर्थात् मूलाधारचक्र का चिन्तन मूलाधार में, स्वाधिष्ठान चक्र का चिन्तन लिङ्गदेश में, मणिपूरक चक्र का चिन्तन नाभि प्रदेश में, अनाहत चक्र का चिन्तन हृदय में विशुद्धि चक्र का चिन्तन कण्ठ में, आज्ञाचक्र का चिन्तन भौंहों के मध्य में करे और तब सहस्रारचक्र का चिन्तन ब्रह्मरन्ध्र में करे ।। ७३ ।। मूलाधारचक्र चतुर्दलाकार, अग्नि के समान और व से स पर्यन्त वर्णों (अर्थात्

शा०
घु०

षट्चक्र द्योतक चित्र
ब्रह्मरन्ध्र
सहस्रार-चक्र
भ्रूमध्य
आज्ञा-चक्र
कण्ठ
विशुद्धि चक्र
हृदय
अनाहत-चक्र
नाभि
मणिपूरक चक्र
लिङ्गमूल
स्वाधिष्ठान चक्र
मूलाधार
मूलाधार-चक्र
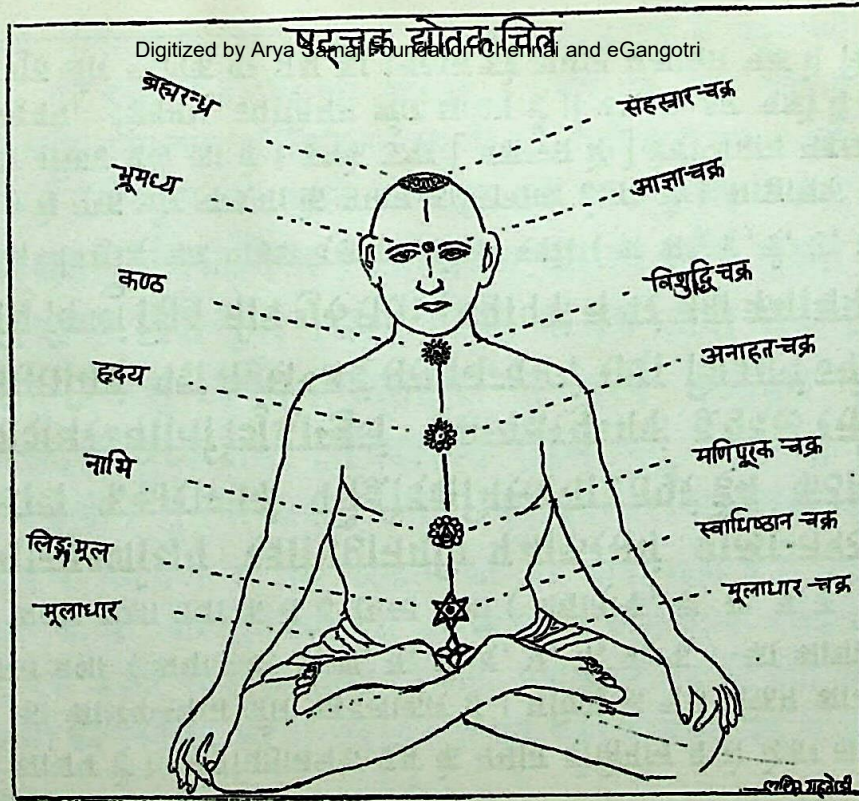
व, श, ष और स) का आश्रय है। स्वाधिष्ठानचक्र सूर्य के समान दीप्तिमान् व से लेकर ल पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ब, भ, म, य, र, ल) का आश्रय-स्थान और षड्दलाकार है। मणिपूरक चक्र रक्तिम आभा वाला, दशदलाकार और ड से लेकर फ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) का आधार है । अनाहत चक्र द्वादशदलाकार, स्वर्णिम आभा वाला तथा क से ठ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट,

चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषट्पत्रकम् ॥ रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुरं हैमं कठान्तावृतम् ॥७४॥ पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं हंसेत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमात्राम्बुजम् ॥ तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं सत्यानन्दमयं सदा शिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् ॥७५॥ गणेशं च विधिं विष्णुं शिव जीवं गुरुं ततः । व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत्॥७६॥

ठ) से युक्त है ॥ ७४ ॥ विशुद्धि चक्र षोडश दलाकर, सोलह स्वरों (अ आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) से युक्त और चन्द्रमा के समान कान्तिवाला होता, है । आज्ञाचक्र 'हंसः' इन दो अक्षरों से युक्त, द्विदलाकार और रक्तिम वर्ण का है । उसके ऊपर [ब्रह्मरन्ध्र में] देदीप्यमान सहस्रदलाकार चक्र है जो कि सदा सत्यमय, आनन्दमय, शिवमय, ज्योतिर्मय और शाश्वत है ॥ ७५ ॥ इन चक्रों में क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीवात्मा, गुरु और व्यापक परं ब्रह्म का चिन्तन करे अर्थात् मूलाधार चक्र में विष्णु का, अनाहतचक्र

में शिव का, विशुद्धि चक्र में जीवात्मा का, आज्ञा चक्र में गुरु का सहस्रार चक्र में सर्वव्यापी परं ब्रह्म का चिन्तन करे ॥ ७६ ॥ विद्वानों ने यह बतलाया है कि एक अहोरात्र (अर्थात् एक दिन और एक रात्रि) में मनुष्य की श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म गति सामान्यतः इक्कीस हजार छः सौ बार होती है ॥ ७७ ॥ यह श्वास 'हँ' की ध्वनि करते हुए बाहर निकलता है और 'सः' की ध्वनि करते हुए पुनः अन्दर प्रविष्ट होता है। इस तरह वस्तुतः

एकविंशत्सहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च। अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता बुधैः ।७७।
हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसो हंसेति मन्त्रेण जीवो जपति तत्त्वतः ॥७८॥
षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे। षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च ॥७९॥
जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरुवे तथा। चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥८०॥
एतांश्चक्रगतान् ब्रह्म-मयूखान् मुनयोऽमरान्। सत्सम्प्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यरुणादयः[1] ॥८१॥

जीव 'हंसः हंसः' इस मन्त्र से परं तत्त्व—परं ब्रह्म परमात्मा का जप करता रहता है ॥ ७८ ॥ एक अहोरात्र के श्वासोच्छ्वास में इक्कीस हजार छः सौ बार होने वाले इस जप की संख्या में से छः सौ गणेश को, छः हजार विष्णु को, छः हजार शिव को, एक हजार स्वयं जीवात्मा को और एक हजार गुरु को तथा शेष एक हजार जप को चिदात्मा परं ब्रह्म—परमात्मा को निवेदित करे ॥ ७९–८० ॥ इन चक्रों में स्थित ब्रह्म के किरण-स्वरूप गणेशादि

१. पाठान्तर—आरुणादयः।

देवताओं का चिन्तन[1] सत्सम्प्रदाय (गुरुशिष्यपरम्परा) के ज्ञाता अरुणादि[2] मुनि करते हैं ॥ ८१ ॥ शुक आदि मुनि भी अपने शिष्यों को इनका उपदेश करते हैं। अतः महात्माओं की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए

शुकादयोऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशन्ति च। अतः प्रवृत्तिं महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः ॥८२
कृत्वा च मानसीं पूजां सर्वचक्रेष्वनन्यधीः। ततो गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत् ॥८३॥
अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजे। हंसगं श्रीगुरुं ध्यायेद्वराभयकराम्बुजम् ॥८४॥

इन चक्रों में स्थित गणेशादि देवों का ध्यान करे ॥ ८२ ॥ सभी चक्रों में अनन्य भाव से उन देवों की मानसी पूजा करने के अनन्तर गुरु के उपदेश से अजपा नामक गायत्री का जप करे ॥ ८३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्रान्तर्गत

---

१. पीछे श्लोक ७६से स्पष्ट हो जाता है कि इन षट्चक्रों में स्थित गणेश आदि देवों का चिन्तन या गान ही पुराणकार को अभीष्ट है।

२. पुराणकार के द्वारा उल्लिखित अरुणादि मुनि संभवतः वे ही हैं जिनकी चर्चा तैत्तिरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक में अनेक बार हुई है और जिनके विषय में महाभारत शान्तिपर्व २६।७ में कहा गया है कि वे स्वाध्यायनिष्ठ रह कर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त आरुणियों (आरुणयः) के उल्लेख वैदिक साहित्य (विशेषतः काठकसंहिता, जैमिनीय उपनिषद्, ब्राह्मण तथा ऐतरेय आरण्यक) में भी प्राप्त होता है। जाबालोपनिषत् ५।१ में आरुणि को परमहंस संन्यासियों की श्रेणि में गिनाया गया है। आरुणि (उद्दालक) की चर्चा शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर उपनिषदों और इतिहास पुराण में भी है। महाभारत आदिपर्व के तीसरे अध्याय की कथा के अनुसार आरुणि (उद्दालक) को गुरु की कृपा से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई थी। श्रीमद्भागवतपुराण १०।८७।१८ (परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्) तथा इसी की श्रीधरी टीका में उधृद्त श्रुतिवचन (ऐतरेय आरण्यक २।१।४ के वचन) (उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो) के अनुसार आरुणि संज्ञक मुनि अपने हृदयाकाश में ब्रह्म का चिन्तन करते थे। अतः एक अन्य विकल्प के रूप में इन आरुणियों (आरुणयः के साथ भी गरुड-पुराणोक्त अरुणादि मुनियों के तादात्म्य की कल्पना की जा सकती है।

अधोमुख सहस्रदल कमल में हंस पर आरूढ तथा एक हाथ से अभयदान और दूसरे हाथ से वरदान की मुद्रा में स्थित श्रीगुरु का ध्यान करे ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस श्रीगुरु के चरणों से निकली हुई अमृत की धारा से अपनी देह के प्रक्षालित होने की भावना करे और तब श्रीगुरु की पञ्चोपचार से मानसी पूजा करके 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः०' इत्यादि स्तोत्रों से उसकी स्तुति करते हुए उसे प्रणाम करे ॥ ८५ ॥ तब कुण्डलिनी का ध्यान करे,

क्षालितं चिन्तयेद् देहं तत्पादामृतधारया । पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च ॥८५॥
ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः । षट्चक्रकृतसञ्चारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम् ॥८६॥
ततो ध्यायेत्सुषुम्नाख्यं धाम रन्ध्राद्बहिर्गतम् । पथा[1] तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८७॥
ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वयंज्योतिः सनातनम् । सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञके ॥८८॥

जो कि मूलाधार में साढे तीन वलय बना कर स्थित है और षट्चक्रों में आरोहण (चढने) और अवरोहण (उतरने) के क्रम से [क्रमशः आरोहण काल में प्रकाश तथा अवरोहण काल में अमृतवर्षण करती हुई] विचरण करती है ॥८६॥ तब ब्रह्मरन्ध्र से बहिर्गत सुषुम्ना नामक धाम (अर्थात् प्रकाश-मार्ग) का ध्यान करे। उस मार्ग से जाने वाले पुरुष विष्णु के उस परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ८७ ॥ तब सदैव ब्राह्म नामक मुहूर्त में उठ कर मेरे (कृष्ण-या-

१. पाठान्तर - यथा ।

विष्णु के) द्वारा ध्यान में लायें गये ब्रह्म के स्वयं प्रकाशमान, सनातन और सदानन्द रूप का ध्यान करे ॥८८॥ इस प्रकार गुरु के उपदेश से ही मन को स्थिर करे। स्वयं अपने प्रयत्न से ऐसा न करे, क्यों कि गुरु के उपदेश के बिना ऐसा प्रयास करने वाले का पतन हो जाता है [अर्थात् वह योग-मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है और भवसागर में पुनः जन्म ग्रहण करता है] ॥ ८९ ॥ इस प्रकार अन्तर्याग सम्पन्न करके बहिर्याग आरम्भ करे। वह स्नान

एवं गुरूपदेशेन मनो निश्चलतां नयेत्। न तु स्वेन प्रयत्नेन तद् विना पतनं भवेत् ॥८९॥
अन्तर्यागं विधायैव बहिर्यागं समाचरेत्। स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥९०॥
देहाभिमानिनामन्तर्मुखीवृत्तिर्न जायते। अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी ॥९१॥
तपोयोगादयो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च। समीचीनस्तु मद्भक्ति-मार्गः संसरतामिह ॥९२॥

और सन्ध्यावन्दन आदि करके हरिहर का पूजन करे ॥ ९० ॥ देहाभिमानी अर्थात् इस व्यावहारिक शरीर या पाञ्चभौतिक शरीर की सत्ता को ही एक मात्र सत्य समझने वाले मनुष्यों की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी नहीं हो पाती, तात्पर्य यह है कि वे उपर्युक्त अजपा जप से लेकर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर परमब्रह्म के चिन्तन पर्यन्त अन्तर्याग की क्रियाओं में अपना चित्त नहीं लगा पाते। अतः उनके लिए मेरी (अर्थात् भगवान् विष्णु की) भक्ति ही सुगम और मोक्षदायिनी हो सकती है ॥ ९१ ॥ यद्यपि तपस्या और योगसाधना आदि भी मोक्ष के

मार्ग या साधन हैं तथापि इस संसार में आवागमन करने वाले मनुष्यों के लिए मेरी भक्ति का मार्ग ही सर्वाधिक उपयुक्त है ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा आदि सर्वज्ञ देवों, ऋषि-मुनियों आदि ने क्रमशः तीन बार पुनः पुनः (अर्थात् प्रत्येक बार फिर-फिर से) वेदों और शास्त्रों का विचार करके यही सुनिश्चित किया है कि यज्ञ आदि सद्धर्म चित्त को

ब्रह्मादिभिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः । त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥९३॥
यज्ञादयोऽपि सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः । फलरूपा च मद्भक्तिस्तां लब्ध्वा नावसीदति ॥९४॥
एवमाचरणं तार्क्ष्य ! करोति सुकृती नरः । संयोगेन च मद्भक्त्या मोक्षं याति सनातनम् ॥९५॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥१५॥

शुद्ध करते हैं और उसके फलस्वरूप मेरी भक्ति की प्राप्ति होती है । उस (भक्ति को) प्राप्त करके जीव जन्म-मरण आदि का दुःख नहीं पाता ॥ ९३–९४ ॥ हे गरुड ! पुण्यकर्मा मनुष्य इस प्रकार का आचरण करता है और मेरी भक्ति के संयोग से सनातन मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ९५ ॥

—○*○—

अथ षोडशोऽध्यायः

मोक्षधर्मनिरूपणम्

गरुड बोले—हे दयासिन्धो! मैं यह सुन चुका हूँ कि अज्ञान के कारण जीव संसार में जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। अब मैं मोक्ष के सनातन उपाय को सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे

श्री गरुड उवाच—

श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः। अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम् ॥१॥
भगवन्! देवदेवेश! शरणागतवत्सल!। असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे ॥२॥
नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः। जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते ॥३॥
सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित्। केनोपायेन मोक्षेश! मुच्यन्ते वद मे प्रभो ॥४॥

शरणागतवत्सल! सम्पूर्ण दुःखों से पूर्ण होने के कारण मलिन इस घोर असार संसार में अनन्त जीवों के समूह नानाविध शरीरों में उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। उनका कोई अन्त नहीं है ॥ २–३ ॥ वे सभी सदा दुःखातुर रहते हैं। उनमें से कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्ष देने वाले प्रभो! वे किस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं?

यह मुझे बतलाइए ।। ४ ।। श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! तुम मुझसे जो पूछ रहे हो वह सुनो, जिसके श्रवणमात्र से भी मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है ।। ५ ।। परब्रह्मस्वरूप देव (अर्थात् परमात्मा) निष्कल[१] (कलारहित)

श्रीभगवानुवाच—

शृणु तार्क्ष्य ! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः ।।५।।
अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः । सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः ।।६।।

शिव-रूप, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्मल और अद्वय (द्वैतभाव-रहित) है ।। ६ ।। वह (परम ब्रह्म-परमात्मा)

---

१. परम पुरुष को षोडश कलाओं से युक्त बतलाया गया है । प्रश्नोपनिषत् (६।२) में षोडश कलाओं वाले पुरुष को देह में स्थित बतलाया गया है (इहैवान्तःशरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति) । इसके आगे इस उपनिषत् में यह स्पष्ट किया गया है कि जैसे समुद्र में मिलने पर नदियों के अपने नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार परम पुरुष-परमात्मा की कलाएँ उससे सङ्गत होने पर अपने नाम और रूप को उसी में विलीन कर देती हैं उनका पृथक् अस्तित्व रह ही नहीं पाता और इसीलिए वह परमात्मा अकल (अर्थात् कला-रहित) कहलाता है (प्रश्नोपनिषत् ६।५) । ब्रह्मविद्योपनिषत् (श्लोक ३७।३९) में अनेक दृष्टान्तों के द्वारा यह बोध कराया गया है कि निष्कल की कोई स्थूल सत्ता नहीं होती, अपितु वह नितान्त सूक्ष्म होता है । ब्रह्मविद्योपनिषत् श्लोक ३३ के अनुसार ब्रह्म या परमात्मा जब देहगत (शरीरावच्छिन्न) होता है तो उसे सकल समझना चाहिए और शरीररहित अवस्था में उसे निष्कल समझना चाहिए (देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः) । शाण्डिल्योपनिषत् में ब्रह्म के तीन रूप बतलाये गये हैं—सकल, निष्कल और सकल-निष्कल । उसके सत्य, विज्ञान और आनन्दमय (सत्-चित् और आनन्दमय), निष्क्रिय, निरञ्जन, सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वतोमुख, अनिर्देश्य और अमर स्वरूप को ही निष्कल कहा जाता है (द्र० शाण्डिलोपनिषत् अध्याय ३) ।

स्वतः प्रकाशमान, अनादि, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसी के अंश से जीवों का प्रादुर्भाव होता है ॥७॥ जैसे अग्निपिण्ड से अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार अनादि अविद्या[1] से उपहत (संगत) होने पर उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म से पृथक् होकर जीव अपने अनादि कर्मों के प्रभाव

स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः ॥७॥
अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः। देहाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः ॥८॥
सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः। तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम् ॥९॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः। सुसूक्ष्मलिङ्गशारीरमामोक्षादक्षरं खग ! ॥१०॥

से नाना शरीर धारण करते हैं ॥ ८ ॥ वे जीव सुखप्रद पुण्यकर्मों या दुःखप्रद पापकर्मों से नियन्त्रित होकर नाना योनियों में तत्तत् जाति (योनि) के अनुसार शरीर, आयु तथा अपने कर्मानुरूप भोग को प्रत्येक जन्म में प्राप्त

---

१. किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में न समझ कर किसी अन्य रूप में समझ बैठना (जैसे रस्सी को सर्प या सीपी को रजत समझना ही अविद्या या अज्ञान है। (जिसे वेदान्त में अध्यास या अध्यारोपभी कहते हैं)। अविद्या के कारण पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता। अविद्या उस अज्ञान को कहते हैं जिसके कारण आत्मा को देह से अभिन्न मान कर पुरुष स्वर्ग और नरक भोगता है और वह संसार में आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है (द्र० सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा संस्करण पृ० ७६३)। अविद्या को कहीं पर माया का पर्याय भी माना गया है। किन्तु वेदान्त के परवर्ती आचार्यों ने अविद्या और माया में भेद माना है। उनके अनुसार माया से उपहित (आच्छन्न) ब्रह्म को ईश्वर और अविद्या से उपहित या आच्छन्न ब्रह्म को 'जीव' कहा जाता है। सर्वसारोपनिषत् श्लोक ३, के अनुसार अविद्या से जीव के शरीर में अहंभाव उत्पन्न होता है और विद्या से उसका यह अहंभाव दूर होता है।

ग०
पु०

करते रहते हैं। उन जन्मों के अनन्तर भी पुनः अति सूक्ष्म लिङ्ग शरीर की प्राप्ति का अमिट क्रम मोक्ष-प्राप्ति
पर्यन्त चलता रहता है ॥ ९–१० ॥ सांसारिक जीव सर्वप्रथम वृक्षलतादि स्थावर (जड़) योनियों में उत्पन्न होते
हैं, तदनन्तर कृमि-कीटादि योनियों में, तत्पश्चात् जलचर प्राणियों के रूप में, तब पक्षियों के रूप में, तब पशु-
योनि में और तदनन्तर [अन्त्यज या शूद्र या असाध्य व्याधियुक्त] क्षुद्रमनुष्य के रूप में जन्म लेने के पश्चात्

स्थावराः कृमयश्चाब्जाः[1] पक्षिणः पशवो नराः। धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथा-क्रमम् ॥ ११ ॥ चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः। सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्। न मानुषं विनाऽन्यत्र

पुनर्जन्म में धार्मिक मनुष्यों के रूप में उत्पन्न होते हैं और तब देवता होते हैं तथा तत्पश्चात् अगले जन्म में अपने
सत्कर्मों तथा ध्यान-योग के फलस्वरूप मोक्ष के अधिकारी होते हैं ॥११॥ सहस्रों बार उद्भिज, अण्डज, स्वेदज
और जरायुज, इन चारों प्रकार के शरीरों को धारण करके और उन शरीरों से छुटकारा पाकर अपने सत्कर्म के पुण्य-
फल से जीव मनुष्य योनि पाने पर यदि ज्ञानी हो जाता है तो वह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥ शरीरधारी
जीवों की चौरासी लाख योनियों में से मानव योनि के बिना अन्य किसी भी योनि में तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो

१. कृमयश्चाब्जा।— गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४९।११ तथा गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित। मेरे द्वारा संशोधित इस संस्करण का पाठ ही समीचीन है। इसका समर्थन विष्णुपुराण २।६।३२, शिवपुराण ५।१६।२६, कुलार्णवतन्त्र १।१२, स्कन्दपुराण ३।२।५।५ और स्कन्दपुराण ४।३५।१८ से भी होता है।

पाता ॥१३॥ इन चौरासी लाख योनियों में हजारों-हजार करोड़ बार जन्म लेने के पश्चात् ही जीव कदाचित् अपने पुण्य-सञ्चय से मनुष्य योनि को प्राप्त करता है ॥१४॥ मोक्ष के साधनभूत एवं अति दुर्लभ मनुष्य योनि में जन्म प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं करता उससे अधिक पापी इस संसार में और कौन हो सकता है ? ॥१५॥ सबसे उत्तम मानव-योनि में जन्म और सक्षम ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्म-हित

तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥ १३ ॥ अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः । कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥ १४ ॥ सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् । यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ? ॥ १५ ॥ नरः प्राप्योत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम् । न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः ॥१६॥ विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते । तस्माद्देहं धनं रक्षेत्पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥ १७ ॥ रक्षयेत्सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् । रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन्भद्राणि पश्यति ॥ १८ ॥ पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम् ।

को नहीं जानता और उसे जान कर भी सिद्ध नहीं करता वह ब्रह्मघातक होता है ॥१६॥ शरीर के सहयोग के बिना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को तथा परम पुरुषार्थ मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता । अतः वह अपने शरीर तथा धन दोनों की रक्षा करे और इनसे पुण्यकर्मों को सम्पन्न करे॥१७॥ मनुष्य सर्वदा अपने आत्मा (अर्थात् शरीर) की रक्षा करे । उसका आत्मा ही सर्व-विध कल्याण का भाजन होता है । अतः वह उसकी रक्षा का यत्न करे क्यों कि जीवित रहने पर ही वह कल्याण-परम्परा को देखता है (अर्थात् प्राप्त करता है) ॥१८॥ मनुष्य को

ग्राम, खेत, धन और गृह की प्राप्ति पुनः पुनरपि हो सकती है, वह शुभाशुभ कर्म को भी पुनः कर सकता है, किन्तु वह इस शरीर को पुनः पुनः नहीं प्राप्त कर सकता ।।१९।। बुद्धिमान् मनुष्य सदैव इस शरीर की रक्षा का उपाय किया करते हैं। कुष्ठादि पाप-रोगों से पीडित रोगी भी शरीर को त्यागने की इच्छा नहीं करते ।।२०।। शरीर की रक्षा धर्म के लिए करनी चाहिए अर्थात् शरीर की रक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि इसके माध्यम से धर्म का

पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः ।। १९ ।। शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। नेच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः ।। २० ।। तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च। ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात् प्रविमुच्यते ।।२१।। आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्। कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति ।।२२।। इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति ।। २३ ।। व्याघ्रीवास्ते जरा

आचरण किया जाय। धर्माचरण का लक्ष्य होना चाहिए ज्ञान की प्राप्ति। ज्ञान का उद्देश्य होना चाहिए ध्यानयोग, जिससे कि मनुष्य शीघ्रमेव मुक्ति पा सकता है ।।२१।। यदि मनुष्य का अपना आत्मा ही स्वयं को अपने अहित से नहीं बचाता तो उसका उससे अधिक हितकर अन्य कौन है जो कि उसके आत्मा का उद्धार करेगा ।।२२।। जो मनुष्य इस लोक में इसी जन्म में नरक रूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं कर लेता वह औषधि रहित देश में (अर्थात् नरक में) जाने पर उस नरक-व्याधि से पीडित होने पर क्या करेगा ? ।। २३ ।। मनुष्य के शरीर में

वृद्धावस्था व्याघ्री (बाघिन) के समान [दबोच कर खून चूसने के लिए] आती है। उसकी आयु टूटे-फूटे घड़े में स्थित जल की तरह समाप्त होती जाती है और रोग उस पर शत्रु की भाँति प्रहार करते हैं। अतः उसको अपने लोक-परलोक को सुधारने के लिए श्रेयस्कर कार्य (धर्माचरण, ज्ञान-प्राप्ति और ध्यानयोग) का अभ्यास करना

चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्। निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २४ ॥ यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः। यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥२५॥ यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत्। सन्दीप्तकोणभवने कूपं खनति दुर्मतिः ॥२६॥ कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः। सुखं दुखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः ॥२७॥

चाहिए[1] ॥ २४ ॥ जब तक दुःख नहीं जकड़ता जब तक विपत्ति नहीं आती और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़तीं तब तक मनुष्य श्रेयस्कर कर्म को निरन्तर करता रहे ॥ २५ ॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ रहता है तब तक तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते रहना चाहिए। दुर्बुद्धि मनुष्य ही अपने घर के कोने में आग लग जाने पर कुआँ खोदना प्रारम्भ करता है[2] ॥ २६ ॥ नाना सांसारिक कार्यों में उलझे रहने से काल का ज्ञान ही नहीं हो पाता।[3] खेद है कि मनुष्य अपने सुख-दुःख को और वास्तविक हित को नहीं समझ पाता ॥ २७ ॥ इस जगत् में उत्पन्न

---

१. तु० —व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्। आयुश्च संस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ २. द्र० — यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः। आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् प्रोदीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ वैराग्यशतक ७।

३. आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।

मनुष्यों को रोगादि से आर्त, मृत्यु को प्राप्त, आपद्ग्रस्त, दुःखी देखकर और भी यह लोक-समुदाय मानो मोह रूपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त रहने के कारण जरा-मृत्यु, नरक-यातना आदि किसी से भी भयभीत नहीं होता[1] ॥२८॥ धन-सम्पत्तियाँ स्वप्न के समान क्षणभङ्गुर हैं, यौवन भी उस फूल के समान है जो कुछ दिनों के पश्चात् मुरझा जाता है और मनुष्य की आयु आकाश में चमकने वाली बिजली के समान चञ्चल है। इस तथ्य को जानते हुए

जातानार्तान्मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान्। लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन ॥ २८ ॥ सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्। तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः ॥ २९ ॥ शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्। बाल्यरोगजरा-दुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्[2] ॥३०॥ प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः। विश्वस्तश्च[3]

किस मनुष्य को धैर्य हो सकता है ? अर्थात् इस क्षणभंगुरता से अवगत कोई भी मनुष्य चैन से नहीं रह सकता ॥ २९ ॥ मनुष्य के लिए एक सौ वर्ष का जीवन भी अत्यल्प है। उस जीवनका आधा भाग निद्रा और आलस्य में बीत जाता है और जो अल्प जीवन (आधा जीवन) शेष रहता है वह भी बाल्यावस्था में, नाना रोगों में, वृद्धावस्था में तथा नाना दुखों को झेलने में निष्फल बीत जाता है[4] ॥ ३० ॥ जो कार्य प्रारम्भ करने योग्य है

१. द्र० —दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ वैराग्यशतक ७।

२. शतं जीवितमत्यल्पं निद्रा स्यादर्धहारिणी। बाल्यरोगजरादुःखैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ॥ कुलार्णवतन्त्र १।३१। ३. विश्वस्तश्च—गरुडपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४९।३१ में उपलब्धपाठ से स्वीकृत। विश्वस्तव्यो-गरुडपुराण सारोद्धार के सभी अन्य संस्करणों में उपलब्ध पाठ।

४. द्र०— आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ वैराग्यशतक ९१।

(अर्थात् मोक्ष-लाभ के लिए जो धर्माचरण, ज्ञान-लाभ और ध्यानयोग आदि करना चाहिए) उसके विषय में कोई प्रयास न करने वाला, जिस (ब्रह्मचिन्तन) के विषय में जागरूक रहना चाहिए उस विषय में बेखबर (निश्चिन्त) होकर सोये रहने वाला और भय के स्थान (इस नश्वर शरीर तथा क्षणभङ्गुर संसार) में विश्वास रखने वाला कौन अभागा मनुष्य काल के द्वारा नहीं मारा जाता ।। ३१ ।। जल में उठने वाले झाग या बुद्बुद के समान अल्प

भयस्थाने हा नरः को न हन्यते ।। ३१ ।। तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते । अनित्यप्रिय-संवासे कथं तिष्ठति निर्भयः[१] ।।३२।। अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः । अनर्थे चार्थ-

काल तक स्थित रहने वाले शरीर में जीवात्मा आकर रहने लगता है । इस शरीर में निवास उसको अति प्रिय लगता है । किन्तु यह शरीर अनित्य है (नश्वर है) । तब इसमें जीव निर्भय होकर कैसे रह सकता है ।। ३२ ।। जो मनुष्य अहितकर विषय-वासना को ही अपना हितकर कहे, अनित्य देह-गेह आदि को ही सदा स्थायी समझे और अनर्थकर[२] धन-सम्पदादि को ही अपने लिए अर्थकर (अर्थात् प्रयोजन सिद्धि की वस्तु) समझे वह अपने

१, तु०—तोयफेनसमे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते। अनित्येऽप्रियसंसारे कथं तिष्ठन्ति निर्भयाः ।। कुलार्णवतन्त्र १।३३ ।

२. श्रीमद्भागवत ११।२३।१८–१९ में धन को स्तेय (चोरी), हिंसा, अनृत, दम्भ, काम, क्रोध, स्मय (गर्व), मद (अहंकार), भेदभावना, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा (ईर्ष्या) और व्यभिचार की प्रवृत्ति, द्यूतक्रीडा में आसक्ति तथा मदिरापान जैसे दुर्व्यसनों को मिला कर कुल पन्द्रह प्रकार के अनर्थों का कारण बतलाया गया है ।

वास्तविक अर्थ (अर्थात् मोक्षप्राप्ति के उपायस्वरूप आत्मज्ञान और ध्यानयोग रूप प्रयोजन) को नहीं जानता ॥ ३३ ॥ ईश्वर की माया से मोहित होने के कारण मनुष्य आँखों से देखते हुए भी गिर पड़ता है अर्थात् आत्मज्ञान और ध्यानयोग से मोक्ष होता है—यह तथ्य जानते हुए भी मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हो जाता है, वह ज्ञान की बातों या आत्मज्ञान विषयक उपदेशों को सुनते हुए भी उनका तात्पर्य नहीं समझ पाता और धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों को पढ़ते हुए भी उनका अर्थ नहीं जान पाता ॥ ३४ ॥ मृत्यु,

विज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः ॥३३॥ पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुद्ध्यति । पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः ॥ ३४ ॥ सन्निमज्जज्जगदिदं[1] गम्भीरे कालसागरे । मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुद्ध्यते ॥३५॥ प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते । आमकुम्भ इवाम्भस्थो विशीर्णो न विभाव्यते ॥ ३६ ॥ युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम् ।

रोग और वार्द्धक्य (बुढापा) रूपी ग्राहों (मकरों) के द्वारा काल रूपी गम्भीर (गहरे) सागर में डुबोये जाते हुए इस जगत् को कोई नहीं जान पाता ॥ ३५ ॥ प्रतिक्षण क्षीण होते (बीतते) हुए जीवन-काल का ज्ञान उसी प्रकार नहीं हो पाता जिस प्रकार जल के अन्दर स्थित कच्चे घड़े के विगलित होने का ज्ञान नहीं हो पाता ॥३६॥ वायु को बाँधने, आकाश को खण्ड-खण्ड करने और जल की तरङ्गों को गूँथने की कल्पना भले ही ठीक हो सकती

१ सन्निमजज्जगदिदं–कुलार्णवतन्त्र १।३६ से स्वीकृत पाठ । पाठान्तर–तन्निमज्जगदिदं–गरुडपुराण सारोद्धार के समस्त मुद्रित संस्करणों तथा गरुणपुराण धर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४९।३५ में उपलब्ध पाठ ।

है, किन्तु मनुष्य की आयु के विषय में आस्था करना ठीक नहीं है ॥ ३७ ॥ जो काल समस्त भूमण्डल को

दग्ध कर सकता है, मेरु पर्वत को चकना-चूर कर सकता है और सागर के जल को सुखा सकता है उससे मनुष्य के शरीर के बच पाने की तो बात ही क्या की जा सकती है ? ॥ ३८ ॥ यह मेरा बच्चा है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी धन-सम्पदा है और ये मेरे बान्धव हैं, ऐसा कहने वाले मनुष्य रूपी बकरे को काल रूपी भेडिया बलात्

ग्रन्थनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते ॥ ३७ ॥ पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते ।
शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा ॥३८॥ अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे ।
जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात् ॥३९॥ इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ।
एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम् ॥४०॥ श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथवाऽकृतम् ॥४१॥ जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम् ।

(झपट कर) मार डालता है ॥ ३९ ॥ मैंने यह कार्य कर लिया है, यह करना है और यह अन्य कार्य कुछ किया जा चुका है और कुछ अभी अधूरा पड़ा है—इस प्रकार की इच्छा और चेष्टा वाले मनुष्य को यमराज अपने अधीन करके ले जाता है ॥ ४० ॥ जो कार्य आने वाले कल के दिन करना हो उसे आज के ही दिन कर ले और जो कार्य अपराह्ण में (दोपहर के पश्चात्) करना हो उसे पूर्वाह्ण में (दोपहर के पूर्व) ही कर ले, क्योंकि मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि मनुष्य ने अपना कार्य पूरा कर लिया है कि नहीं ॥ ४१ ॥ वृद्धावस्था जिसको

मार्गदर्शन कराती है और प्रचण्ड रोग ही जिसके सैनिक हैं, ऐसे मृत्यु रूपी शत्रु के सम्मुख तुम स्थित हो। ऐसी स्थिति में तुम अपने रक्षक परमेश्वर की ओर क्यों नहीं देखते? ॥ ४२ ॥ तृष्णा रूपी सुई से बींधे हुए, विषय-वासना रूपी घृत से सींचे हुए और राग-द्वेष रूपी अग्नि में पके हुए मनुष्य को मृत्यु खा जाता है ॥ ४३ ॥ यह जगत् ऐसा है कि इसमें बालकों, युवकों, वृद्धों और यहाँ तक कि गर्भस्थ भ्रूणों सहित सभी को मृत्यु ग्रस्त कर

मृत्युशत्रुमधिष्ठोऽसि[1] त्रातारं किं न पश्यसि ॥ ४२ ॥ तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषय-सर्पिषा। रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम् ॥ ४३ ॥ बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि। सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत् ॥ ४४ ॥ स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्। स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना ॥ ४५ ॥ दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित् ॥ ४६ ॥ प्रभवं

लेती है ॥ ४४ ॥ जब यह जीव अपने शरीर को भी छोड़ कर यमलोक को चला जाता है तब स्त्री, माता, पिता, पुत्र आदि के साथ सम्बन्ध किस हेतु से—किस प्रयोजन से रखा जाय? ॥ ४५ ॥ दुखों का कारण यह संसार ही है जो इस संसार से सम्बन्ध रखता है वही दुःखी है। जिसने इस संसार का त्याग कर दिया है वही सुखी है। दूसरा कोई भी कहीं सुखी नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥ सभी दुःखों के जनक, सभी विपत्तियों के घर और सभी

१. प्रधिष्ठोऽसि—निर्णयसागर संस्करण का पाठ। अभिज्ञोऽसि—कुलार्णवतन्त्र १।४३ का पाठ।

पापों के आश्रयभूत इस संसार [की आसक्ति अर्थात् इसके साथ किसी भी प्रकार के ममत्व] को तत्क्षण त्याग दे ॥ ४७ ॥ लोहे और लकड़ी के पाशों के बन्धन से बंधा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है किन्तु पुत्र और पत्नी रूपी पाशों से बँधा हुआ पुरुष कभी भी मुक्त नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ जीव अपने मन को प्रिय लगने वाले जितने ज्यादे सम्बन्ध बनाता है उसके हृदय में उतने अधिक शोक रूपी कील-काँटे गड़ते जाते हैं ॥ ४९ ॥ हाय,

सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम् । आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ लोहदा-रुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते । पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन ॥४८॥ यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान् । तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥४९॥ वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः । हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः ॥५०॥ मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशङ्कुं न पश्यति । सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति ॥५१॥ हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः । कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग ! ॥५२॥

यह खेद की बात है कि मनुष्य की देह में स्थित और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जैसे विषयों का आहार करने वाले इन्द्रिय रूपी चोरों ने इस लोक के समस्त धन को अपहृत करके इसे विनष्ट कर दिया है ॥५०॥ जैसे मांस की लोभी मछली मांस से लपेटी हुई लोहे की काँटेदार बडिश (बलछी) को नहीं देख पाती, उसी प्रकार विषय-वासना रूपी सुख का लोभी मनुष्य यम की बाधा को नहीं देख पाता ॥ ५१ ॥ हे गरुड ! जो मनुष्य अपने हित और अहित को नहीं जानते, नित्य कुमार्ग में चलते हैं (अधर्माचरण करते हैं) और मात्र अपने पेट को

भरने में संलग्न रहते हैं ये नरक में गिरते हैं ॥ ५२ ॥ आहार, निद्रा, भय और मैथुन की मूल प्रवृत्तियाँ सभी प्राणियों में समान रूप से रहती हैं । उन सभी प्राणियों में से जो ज्ञानवान् है उसी को मानव कहा गया है और ज्ञानरहित प्राणी को पशु कहा गया है ॥ ५३ ॥ मूर्ख मनुष्य प्रातः काल मल-मूत्र के वेगों से, मध्याह्न में भूख प्यास से और रात्रि के समय कामवासना और निद्रा से पीडित होते हैं ॥ ५४ ॥ हाय ! यह खेद की बात है

निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः । ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः ॥ ५३ ॥ प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ । रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः ॥ ५४ ॥ स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः । जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः ॥५५॥ तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते । महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥ ५६ ॥ सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम् । यस्य

कि अज्ञान से मोहित सभी जीव अपने शरीर, धन और पत्नी आदि में आसक्त रहने के कारण बार-बार जन्म लेते और मरते रहते हैं ॥ ५५ ॥ अतः सङ्ग अर्थात् स्त्री-पुत्रादि और धन-सम्पदा आदि में आसक्ति सदैव त्याज्य है । यदि उसका सर्वथा त्याग न कर सके तो सन्त-महात्माओं की सङ्गति में रहे, क्यों कि सन्तजन ही सांसारिक सङ्ग (आसक्ति) रूपी रोग की औषधि हैं ॥ ५६ ॥ सत्सङ्ग और विवेक दोनों ही मनुष्य के निर्मल नेत्र हैं । जिसके

पास ये दोनों नेत्र नहीं हैं वह अन्धा (सत्संग और ज्ञान से रहित) मनुष्य कुमार्गगामी क्यों नहीं होगा ? अर्थात् ऐसा मनुष्य निश्चयमेव अधर्मी और असदाचारी होगा ॥ ५७ ॥ अपने-अपने वर्ण और आश्रम के लिए धर्म रूप में विहित कर्तव्यों और आचारों का पालन करने वाले सभी मनुष्य [ध्यान-योग के अभ्यास द्वारा आत्म-दर्शन या ब्रह्मज्ञान से मोक्ष-लाभ रूपी] परम धर्म को नहीं जानते । अतः वे दम्भाचारी वृथा नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ कुछ मनुष्य तपश्चर्यादि नाना क्रिया-कलापों में आयासशील रहते हैं तथा कुछ अन्य मनुष्य व्रतोपवास आदि में

नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥५७॥ स्वस्ववर्णाश्रमाचार-निरताः सर्वमानवाः । न जानन्ति परं धर्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः ॥ ५८ ॥ क्रियायासपराः केचिद् व्रतचर्यादि-संयुताः । अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः ॥५९॥ नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः । मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतु-विस्तरैः ॥६०॥ एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशो-

संलग्न रहते हैं । अज्ञान के आवरण से आच्छादित आत्मा वाले अनेक ढोंगी और ठग भी साधुओं के वेश को धारण करके विचरण करते हैं ॥ ५९ ॥ कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य स्वर्गादि फलों के नाममात्र से सन्तुष्ट रहते हुए वैदिक मन्त्रोच्चार और होम आदि कृत्यों तथा विस्तृत विधि-विधानों और विपुल सामग्रियों वाले यज्ञों के सम्पादन में ही उलझे रहते हैं ॥ ६० ॥ मेरी माया से मोहित मनुष्य अहोरात्र में मात्र एक बार भोजन या पूरी

तरह उपवास वाले तथा शरीर को कृश बनाने वाले कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों और नियमों का पालन करके परोक्ष तत्त्व या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ६१ ॥ अपनी देह को पीडित करने से भला अज्ञानी मनुष्यों को कैसे मुक्ति मिल सकती है ? क्या वल्मीक (अर्थात् बाँबी या दीमक के टीले) को पीटने से उसके अन्दर रहने वाला महासर्प कभी कहीं मरा है ॥ ६२ ॥ बड़ी-बड़ी जटाओं और मृगचर्म से युक्त साधु-संन्यासियों का वेश धारण किये हुए अनेक दम्भी-पाखण्डी लोग भी ज्ञानियों के समान दिखावा करते हुए लोक में भ्रमण करते हैं और अपने

षणैः । मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः ॥६१॥ देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम् । वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः ॥६२॥ जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः । भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥ ६३ ॥ संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् । कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥६४॥ गृहारण्यसमालोके गतव्रीडा दिगम्बरा । चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम् ॥६५॥ मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः

अनर्गल प्रवचनों से जनता को भी भ्रम में डालते हैं ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य सांसारिक सुखोपभोग में आसक्त रहे और साथ ही साथ अपने को ब्रह्मज्ञानी भी कहे वह सांसारिक कर्म-मार्ग तथा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति दोनों से ही भ्रष्ट होता है । अतः उसको चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिए ॥६॥ घर में और वन में समान रूप से निर्लज्ज और नंगे रह कर गधे आदि पशु भी विचरण करते हैं । क्या इस तरह के आचरण से वे संसार से विरक्त हो जाते हैं ? कभी नहीं ॥ ६५ ॥ यदि मिट्टी और भस्म धारण कर लेने मात्र से ही मनुष्य मुक्त हो जाते तो जो कुत्ता

नित्य ही मिट्टी और भस्म में पड़ा रहता है क्या वह भी मुक्ति को प्राप्त कर लेगा ? ॥ ६६ ॥ घास के तिनकों, पत्तों और जल का आहार करने वाले एवं नित्य वन में रहने वाले सियार, चूहे और मृग आदि पशु भी क्या तपस्वी-योगी हो जाते हैं ? अर्थात् अन्न छोड़ देने और ग्राम या नगर में निवास छोड़ कर वन में निवास करने मात्र से कोई संन्यासी नहीं हो जाता ॥ ६७ ॥ मेंढक, मछली आदि जलचर जीव गङ्गा आदि पवित्र नदियों में

स्युर्यदि मानवाः । मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा[१]स किं मुक्तो भविष्यति ॥६६॥ तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः । जम्बूकाऽऽखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम् ॥६७॥ आजन्ममरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः । मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम् ॥६८॥ पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः । न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ॥६९॥ तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम् । मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर ! ॥७०॥

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त रहते हैं तो क्या वे योगी हो जाते हैं ? अर्थात् पवित्र नदियों या तीर्थों में निवास करने मात्र से कोई व्यक्ति योगी नहीं हो जाता ॥ ६८ ॥ कबूतर कंकर-पत्थर भी खा लेते हैं और चातक कभी भी पृथिवी का जल नहीं पीते हैं । क्या वे इस तरह के कठिन आचरण से व्रती (व्रतपरायण) हो जाते हैं ? अर्थात् ऐसे कठिन खान-पान और कठिन साधना मात्र से कोई मनुष्य तपो-व्रती नहीं हो जाता ॥६९॥अतः सभी वर्णों और आश्रमों के मनुष्यों के लिए विहित कर्म और व्रतानुष्ठान आदि लोकरञ्जन अर्थात् लोक की मनस्तुष्टि मात्र

१. श्वानः किं—पाठान्तर ।

करते हैं। हे गरुड ! साक्षात् तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का कारण है ।। ७० ।। हे गरुड ! षड्दर्शन रूपी महाकूप (विशाल कुँवें) में गिरे हुए नर-पशु परमार्थ अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानते और जैसे गाय-भैंस आदि पशु रस्सी या लोहे के पाशों (बन्धनों) से बँधे रहते हैं उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य रूपी पशु[1] मायाजाल रूपी पाशों (या शैवमतानुसार मल, कर्म, माया और रोध रूपी चार प्रकार के पाशों[2]) से बँधे रहते हैं ।।७१।। कुतर्क करने वाले

षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग !। परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः ।।७१।।

वेदशास्त्रार्णवे घोरे[3] उह्यमाना इतस्ततः। षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः ।।७२।।

वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम् ।। ७३ ।।

मनुष्य वेदशास्त्र रूपी घोर महासमुद्र में इधर-उधर थपेड़े खाते हुए अर्थात् एक-एक करके नाना ग्रन्थों के अध्ययन में उलझते हुए शोकादि छः उर्मियों[4] के प्रशमन में ही व्यग्र रहते हैं ।। ७२ ।। वेदों, आगमों और पुराणों का

१. शैव मत में जीवात्मा को पशु कहा गया है जो कि पाशों से बँधा रहता है। पाश-मुक्त होने पर वह शिव-स्वरूप हो जाता है।

२. शैव मत में बन्धन को पाश कहते हैं। पाश-बद्ध होने के कारण जीवात्मा शिव-स्वरूप नहीं हो पाता। पाश चार प्रकार के होते हैं मल, कर्म, माया और रोध। मल रूपी पाश से जीवात्मा की ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति तिरोहित हो जाती है। फल की इच्छा से किया जाने वाला कर्म भी पाश बन जाता है। यह कर्म रूप पाश भी धर्म और अधर्म के भेद से दो प्रकार का माना गया है। माया रूप पाश से प्रलय काल में समस्त संसार का संहार और सृष्टि काल में उसका उद्भव होता है। उपर्युक्त तीन पाशों से बद्ध पशु के यथार्थ स्वरूप को ढकने वाले पाश को रोध कहते हैं।

३. वेदशास्त्रार्णवैर्घोरैरुह्यमाना— गरुडपुराणधर्मकाण्ड (प्रे० ख०) ४९।७२।

४. मुद्गलोपनिषत् ४।७ के अनुसार क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मरण को षडूर्मि कहा जाता है।

ज्ञाता होने पर भी जो मनुष्य परमार्थ को नहीं जानता अर्थात् जो व्यक्ति मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ विषयक तत्त्व-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान से शून्य है उस विद्या-विडम्बक अर्थात् ढोंगी का वह समस्त अध्ययन और उपदेश कौवे की बोली के समान व्यर्थ है ॥ ७३ ॥ परम तत्त्व अर्थात् परात्पर ब्रह्म से पराङ्मुख मनुष्य अपने अभीष्ट शास्त्र-विशेष को ही परम ज्ञान का विषय और जानने योग्य समझ कर उसी की चिन्ता से व्यग्र होकर रात-दिन उसी का अध्ययन करते रहते हैं ॥ ७४ ॥ काव्योचित अलङ्कारों से सुशोभित गद्य वाक्य-रचना या छन्दोबद्ध कविता की

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः । पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः ॥७४॥ वाक्यच्छन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिना[1] । चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः ॥ ७५ ॥ अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा । अन्यथा शास्त्रसद्भावो

रचना करने पर भी विषयोपभोग के प्रति लालायित इन्द्रियों वाले तत्त्वज्ञानरहित मूढ कवि नाना चिन्ताओं के कारण दुःखी रहते हैं ॥ ७५ ॥ परम तत्त्व तो अन्य प्रकार से ज्ञात होता है अर्थात् 'सर्वं ह वा खल्विदं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' इत्यादि प्रकारक गुरु के उपदेश से ज्ञात होता है किन्तु मूर्ख जन उसे पाने के लिए अन्य तरह के क्लेश उठाते हैं अर्थात् वे व्यर्थ ही व्रत, तप, यज्ञ, शास्त्राभ्यास, कुतर्क आदि का आश्रय लेकर क्लेश उठाते हैं । शास्त्र

१. शोभिना—कुलार्णवतन्त्र १।९१ से स्वीकृत पाठ । शोभिता—मत्स्यपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित ।

व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा ॥७६॥ कथयन्त्युन्मनीभावं स्वयं नानुभवन्ति च । अहङ्काररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः ॥ ७७ ॥ पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम् । न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा ॥७८॥ शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका । पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः ॥ ७९ ॥ तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति ।

का भावार्थ अन्य प्रकार का होता है किन्तु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न प्रकार की करते हैं ॥७६॥ कुछ अहंकारी मनुष्य गुरु से उपदेश ग्रहण किये बिना भी ब्रह्मज्ञानी की तरह आडम्बरपूर्ण मुख-मुद्रा में तत्त्वज्ञान विषयक अस्पष्ट बातें कहते हैं जब कि वे स्वयं उस विषय में कुछ भी नहीं जानते ॥ ७७ ॥ बहुत से लोग वेदों और शास्त्रों को पढ़ते हैं और परस्पर (एक-दूसरे को) उनका तात्पर्य समझाते हैं। किन्तु वे परम तत्त्व को उसी प्रकार नहीं जानते जैसे कि कलछी या चम्मच भोजन के रस को नहीं जानती ॥७८॥ यद्यपि शिर पुष्पों को धारण करता है किन्तु उनकी गन्ध को तो नासिका ही जानती है। वेदों और शास्त्रों को बहुत-से लोग पढ़ते हैं, किन्तु उनके परम तत्त्व विषयक भावार्थ का बोध करानें वाले गुरु की प्राप्ति दुर्लभ है ॥७९॥ मूर्ख मनुष्य अपने हृदय में स्थित परम तत्त्व को---परमात्मा के अंश को नहीं जानता और उसे जानने के लिए शास्त्रों के अध्ययन में भटकता फिरता रह जाता है। जैसे कि कोई मूर्ख ग्वाला अपनी कोख में बकरे को पकड़े रखने पर भी उसको खोजने के लिए कुँएं में देखता

गु० | मा.टी.

सु०

है ॥ ८० ॥ सांसारिक मोह-माया को नष्ट करने में वेदों और शास्त्रों का शब्दार्थ-बोध सक्षम नहीं है। दीपक के विषय में वार्तालाप करने मात्र से अन्धकार कदापि दूर नहीं हो पाता ॥ ८१ ॥ बुद्धिहीन मनुष्य के लिए वेदशास्त्रादि का अध्ययन अन्धे के लिए दर्पण के समान निरर्थक है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को ही वेदशास्त्रादि के अध्ययन से तत्त्वज्ञान लक्षित हो सकता है ॥८२॥ जो व्यक्ति वेदशास्त्रादि विद्याओं की प्रत्येक विधा और तद्विषयक ग्रन्थ

गोपः कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः ॥८०॥ संसारमोहनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः।
न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया ॥ ८१ ॥ प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम्।
अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम् ॥८२॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति।
दिव्यवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥८३॥ अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः।

के बारे में यह सोचता है कि इसमें भी ज्ञान की बातें हैं और यह भी जानने योग्य है और इस प्रकार की विचार-धारा बना कर सभी कुछ सुनना या पढ़ना चाहता है वह देवताओं की वर्ष गणनानुसार एक हजार वर्षों[1] की आयु प्राप्त करने पर भी शास्त्रों का पार नहीं पा सकता[2] ॥ ८३ ॥ शास्त्र अनेकानेक हैं, आयु थोड़ी-सी है और जीवन

---

१. मनुष्यों के एक वर्ष का समय देवताओं के एक अहोरात्र के बराबर होता है। अतः देवताओं के एक हजार वर्ष का समय ३६५००० दिव्य दिनों या ३६५००० मानव वर्षों के बराबर होता है। २. तु०—इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्। अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ मार्कं० ३८।१६।

भर करोड़ों विघ्न आते रहते हैं । अतः जैसे हंस जल में से दूध को निकाल लेता है उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को शास्त्रों का सारांश अर्थात् तत्त्वज्ञान मात्र जान लेना चाहिए[1] ।। ८४ ।। बुद्धिमान् मनुष्य वेदशास्त्रों का अध्ययन करके उसमें से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके उन सब वेदशास्त्रों को उसी प्रकार छोड़ दे जैसे कि धान को चाहने वाला कृषक पुआल में से धान को निकाल कर पुआल को छोड़ देता है ।। ८५ ।। हे गरुड ! जैसे अमृतपान से तृप्त

तस्मात्सारं विजानीयात्क्षीरं हंस इवाम्भसि ।।८४।। अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाथ बुद्धिमान् । पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत् ।। ८५ ।। यथाऽमृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम् । तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य ! न शास्त्रेण प्रयोजनम् ।। ८६ ।। न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि । ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ! ।। ८७ ।। नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम् । तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ।। ८८ ।। मुक्तिदा गुरु-

हो जाने पर भोजन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता उसी प्रकार जिस मनुष्य को तत्त्वज्ञान हो जाता है उसके लिए शास्त्र के अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता ।। ८६ ।। हे वैनतेय गरुड ! न तो वेदों के अध्ययन से और न शास्त्रों के अध्ययन से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । एकमात्र तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष मिल सकता है, अन्यथा नहीं ।। ८७ ।। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय न तो आश्रम-धर्म (संन्यासादि) का पालन है और न दर्शन शास्त्रों का अध्ययन । सभी प्रकार के [व्रतोपवास, तप और यज्ञ आदि] कर्म भी मोक्ष-प्राप्तिके उपाय नहीं हैं ।

१. तु० अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः । सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ।।

केवल तत्त्व-ज्ञान ही मोक्ष-प्राप्ति का कारण है ॥ ८८ ॥ एकमात्र गुरु की वाणी ही मोक्ष देने वाली है अर्थात्

गुरु से उपदेश रूप में प्राप्त तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टि से अन्य सब विद्याएँ तो विडम्बना मात्र हैं। काष्ठ के हजारों गट्ठरों की अपेक्षा एक सञ्जीवनी लता ही परमोपयोगी होती है। तात्पर्य यह कि सभी विद्याओं की अपेक्षा गुरु से प्राप्त तत्त्वज्ञान का ही परम महत्त्व है ॥ ८९ ॥ व्रतोपवास, तपश्चर्या और यज्ञादि क्रियाओं तथा वेदशास्त्रादि के अध्ययन में होने वाले परिश्रम के बिना ही गुरु से प्राप्त होने वाले अद्वैत ज्ञान को ही शिव अर्थात् परम कल्याणकारक कहा गया है। यह अद्वैत ज्ञान करोड़ों शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी

वागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः। काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम् ॥८९॥ अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं क्रियायासविवर्जितम्। गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥९०॥ आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्मविवेकजम् ॥ ९१ ॥ अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥९२॥ द्वैपदे

नहीं प्राप्त होता। यह तो केवल गुरु के मुख से ही प्राप्त हो सकता है ॥ ९० ॥ ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक तो वेदशास्त्रादि आगमों में कथित और दूसरा आत्म-विवेक से जनित। आगमोक्त ज्ञान शब्दब्रह्म स्वरूप होता है और विवेकजनित ज्ञान परम ब्रह्म स्वरूप (या तद्विषयक) होता है ॥ ९१ ॥ आदि शङ्कराचार्य तथा उनके मतानुयायी कई विद्वान् परम ब्रह्म रूप परम तत्त्व के विषय में अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं और मध्वाचार्य तथा उनके मतानुयायी अन्य विद्वान् द्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं। किन्तु द्वैतवाद और अद्वैतवाद से रहित और सब

के द्वारा समान रूप स स्वीकार्य परम तत्त्व को कोई नहीं जानते ॥ ९२ ॥ देह-गेह, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पदा आदि के विषय में कहे जाने वाले 'मेरा' और 'मेरा नहीं' यह दो शब्द ही बन्धन और मोक्ष के कारण बनते हैं। 'मेरा' कहने से जीव बन्धन में पड़ता है और 'मेरा नहीं' की भावना रहने पर वह मोक्ष का भागी होता है ॥९३॥ वही कर्म सत्कर्म है जो जीवात्मा के लिए बन्धन का कारण नहीं बनता और वही विद्या सुविद्या है जो मोक्षकरी हो।

बन्धमोक्षाय ममेति न ममेति च। ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते[1] ॥ ९३ ॥ तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥९४॥ यावत्कर्माणि दीयन्ते[2] यावत्संसारवासना। यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥९५॥ यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि। यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ॥९६॥ यावन्नो

अन्य सब प्रकार का कर्म मात्र शारीरिक क्लेशप्रद होता है और अन्य सारी विद्या शिल्प-चातुरी मात्र है ॥९४॥ जब तक ममत्व भावना से कर्म किये जाते हैं एवं पूर्वकृत कर्म फलीभूत होते रहते हैं, जब तक संसार विषयक वासना रहती है और जब तक इन्द्रियों की चञ्चलता बनी रहती है तब तक तत्त्व-ज्ञान की बात ही कहाँ हो सकती है ? ॥ ९५ ॥ जब तक शरीर विषयक अभिमान रहता है, जब तक ममता रहती है, जब तक प्रयत्नशीलता रहती है और जब तक संकल्प-भावना (या संकल्प-विकल्प की भावना) रहती है ॥ ९६ ॥ जब तक मन स्थिर नहीं होता

१. तु०—महोप० ४।७२। २. दीप्यन्ते—गरुडपुराण ध० का० (प्रे० ख०) ४६।

जब तक शास्त्रचिन्तन नहीं किया जाता, जब तक गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक तत्त्वज्ञान की चर्चा ही कैसे हो सकती है ? ॥ ९७ ॥ मनुष्य के लिए तपश्चर्या, व्रत, तीर्थ, जप, होम, पूजा आदि तथा वेदों, शास्त्रों और आगम-ग्रन्थों की कथा-वार्तादि तभी तक उपयोगी है जब तक वह तत्त्वज्ञान (अर्थात् आत्मा-परमात्मा विषयक ज्ञान) को नहीं प्राप्त कर लेता ॥९८॥ हे गरुड ! यदि मनुष्य अपना मोक्ष चाहता है तो वह सदैव, समस्त प्रयत्न

ग० पु०

भा.टी

मनसस्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिन्तनम् । यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥९७॥ तावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम् । वेदशास्त्रागमकथा यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥९८॥ तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा । तत्त्वनिष्ठो भवेत्तार्क्ष्य ! यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥९९॥ धर्मज्ञान-प्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च । तापत्रयादिसन्तप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत् ॥ १०० ॥ तस्मा-ज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात् । सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् ॥१०१॥

से और सभी अवस्थाओं में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में संलग्न रहे ॥९९॥ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संज्ञक तीनों प्रकार के दुःखों से पीडित मनुष्य को धर्म और ज्ञान रूपी पुष्पों वाले तथा स्वर्ग और मोक्ष रूपी फलों को देने वाले मोक्ष रूपी वृक्ष की छाया का आश्रय लेना चाहिए ॥ १०० ॥ अतः श्रीगुरु के मुख से प्राप्त ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व को जानना चाहिए । उस (आत्मतत्त्व) का ज्ञान हो जाने पर जीव इस घोर सांसारिक

१. समनः स्थैर्यं —निर्णयसागर संस्करण का पाठ ।

बन्धन से सुखपूर्वक (सरलता से) मुक्त होता है ॥ १०१ ॥ अब तुम परम तत्त्व को जानने वाले मनुष्य के द्वारा अन्तिम समय में किये जाने वाले कृत्य के विषय में सुनो, मैं तुम्हें उसे बतलाता हूँ जिसको करने से वह ब्रह्म-निर्वाण संज्ञक मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ १०२ ॥ अन्त काल आ जाने पर पुरुष निर्भीक होकर असङ्ग (या अनासक्ति) रूपी शस्त्र से अपने शरीर विषयक ममत्व और उसके साथ सम्बद्ध स्त्री-पुरुष-बान्धवादि एवं गृह-

तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना। येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम् ॥१०२॥ अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः। छिन्द्यादसंग-शस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥१०३॥ गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्-कल्पितासने ॥१०४॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्। मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीज-मविस्मरन् ॥१०५॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः। मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे

सम्पदादि विषयक ममत्व के बन्धन को काट डाले ॥ १०३ ॥ तब वह धीर पुरुष घर से निकल कर पवित्र तीर्थ-के जल में स्नान करके निर्जन स्थान में शुद्ध भूमि के ऊपर विधिवत् [कुशासन के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर कपड़े का] आसन लगा कर बैठे ॥ १०४ ॥ तब परम ब्रह्म के वाचक शुद्ध 'त्रिवृत्' अक्षर 'अ' 'उ' और 'म्' अर्थात् 'ओऽऽऽम्' का मन ही मन अभ्यास करे और ब्रह्मबीज स्वरूप 'ॐ' का निरन्तर स्मरण (अर्थात् जप) करते हुए साँस को जीत कर मन को नियन्त्रित करे ॥१०५॥ बुद्धि रूपी सारथी की सहायता से मन रूपी लगाम

के द्वारा इन्द्रिय रूपी अश्वों को विषय-वासना की ओर से निवृत्त करे और कर्मों के द्वारा आकृष्ट (या विचलित) मन को शुभ प्रयोजन अर्थात् परम ब्रह्म के चिन्तन में लगावे ॥ १०६ ॥ वह यह भावना करे कि 'परम धाम रूप ब्रह्म मैं हूँ और परम पद रूप ब्रह्म मैं ही हूँ' । ऐसी भावना करके अपने आत्मा को निष्कल (उपाधि-रहित) परमात्मा में लगा करके 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए और मेरा स्मरण (अर्थात् भगवान् विष्णु

धारयेद्धिया ॥१०६॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् । एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥१०७॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्[1] ॥१०८॥ निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः । द्वन्द्वै-

का ध्यान) करते हुए जो मनुष्य देहत्याग करके परलोक को प्रस्थान करता है वह परम गति को प्राप्त करता है ॥ १०७–१०८ ॥ जहाँ ज्ञान और वैराग्य से रहित दाम्भिक मनुष्य नहीं जा सकते और सद्बुद्धि वाले मनुष्य ही जिस गति को प्राप्त करते हैं उसे मैं तुमको बतलाता हूँ । अभिमान और मोह से रहित, पुत्र-स्त्री-धन-सम्पदा आदि की आसक्ति रूपी दोष पर विजय प्राप्त कर लेने वाले, नित्य अध्यात्म-ज्ञान-परायण अर्थात् सदा परमात्मा के स्वरूप के चिन्तन में संलग्न रहने वाले तथा समस्त कामनाओं अर्थात् विषयोपभोग की अभिलाषाओं

१. श्रीमद्भगवद्गीता ८।१३ से उद्धृत ।

से रहित और सुख-दुःखादि रूप द्वन्द्वों[1] से मुक्त ज्ञानी जन ही उस शाश्वत और अविनाशी परम पद को प्राप्त करते हैं ।। १०९ ।। जो मनुष्य राग-द्वेष रूपी मल को छुड़ाने में समर्थ सत्य रूपी जल वाले और ज्ञान रूपी सरोवर वाले मानस तीर्थ में स्नान करता है वही मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ११० ।। पूर्ण-परमब्रह्म में दृष्टि को केन्द्रित रखने वाला और निर्मल आत्मा वाला जो मनुष्य दृढ वैराग्य को धारण करके अनन्य भाव से मेरा अर्थात्

विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्[2] ।।१०९।। ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेष-मलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।११०।। प्रौढं वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक् । पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।१११।। त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः । म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।११२।। अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका । पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।११३।। इति ते कथितं

भगवान् विष्णु का अनन्य भक्ति से भजन करता है वही मोक्ष को प्राप्त करता है ।। १११ ।। जो मनुष्य सांसारिक जीवन से कृतकृत्य होकर मृत्यु की उत्कण्ठा[3] से गृह-त्याग करके तीर्थ में निवास करता है और मुक्ति देने वाले क्षेत्रों (अर्थात् मोक्ष-प्रद तीर्थ-स्थानों) में देह-त्याग करता है वही मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ११२ ।। अयोध्या, मथुरा, मायापुरी, (अर्थात् हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पुरियाँ मोक्षदायिनी

१, क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण आदि सुख-दुःखादिप्रद भावों को द्वन्द्व कहा गया है ।   २. श्रीमद्भगवद् गीता १५।५ से उद्धृत ।
३. द्र० — कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम् ।

हैं ॥ ११३ ॥ हे गरुड ! मैंने यह सनातन मोक्षधर्म तुमको बतला दिया है । इसे ज्ञान और वैराग्य के साथ सुन करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ११४ ॥ तत्त्वज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, धार्मिक मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, पापी मनुष्य प्रेत योनि में या नरक में दुर्गति को प्राप्त करते हैं और पशु-पक्षी आदि जीव संसार में पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करते रहते हैं ॥११५॥ इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिए सभी शास्त्रों का सार उद्धृत

तार्क्ष्य! मोक्षधर्मं सनातनम् । ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥११४॥ मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञाः धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः । पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः ॥११५॥ इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः । मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११६॥

सूत उवाच—

एवं श्रुत्वा वचो राजन् गरुडो भगवन्मुखात् । कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः ॥११७॥

गरुड उवाच—

भगवन्देवदेवेश श्रावयित्वा वचोऽमृतम् । तारितोऽहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो ॥११८॥

करके इन सोलह अध्यायों में निरूपित कर दिया है । अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ११६ ॥ सूत जी बोले—हे राजन् ! गरुड ने भगवान् विष्णु के मुख से इस प्रकार के वचनों को सुन कर हाथ जोड़ कर उन्हें बार-बार प्रणाम करके यह कहा ॥११७॥ हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे नाथ ! हे प्रभो ! आपने अमृततुल्य वचनों

को सुना करके भवसागर से मेरा उद्धार कर दिया है ॥ ११८ ॥ अब मेरा सन्देह दूर हो गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं कृतार्थ हो गया हूँ। ऐसा कह कर गरुड जी मौन होकर भगवद्-ध्यान-परायण हो गये ॥११९॥ जो भगवान् विष्णु भक्तों के द्वारा अपना स्मरण किये जाने पर उनकी दुर्गति का हरण करते हैं अर्थात् दुर्गति

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः। इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत् ॥ ११९ ॥ स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता। यः परया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु ॥ १२० ॥

से उनका उद्धार करते हैं, पूजन और यजन (यज्ञ) से सन्तुष्ट होकर सद्गति प्रदान करते हैं तथा अपनी परम भक्ति से मुक्ति प्रदान करते हैं वे मेरी रक्षा करें ॥ १२० ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ गरुडपुराणश्रवणफलम्

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड ! इस प्रकार मैंने और्ध्वदेहिक कृत्यों के विषय में सब कुछ बतला दिया है। इसे दशाह (अर्थात् दश दिन) के अन्दर सुन लेने पर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ यह पारलौकिक कर्म पितरों को मुक्ति प्रदान करने वाला, पुत्र-विषयक मनोकामना को पूर्ण करने वाला और परलोक में तथा इस

श्रीभगवानुवाच—

इत्याख्यातं मया तार्क्ष्य सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् । दशाहाभ्यन्तरे श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
इदं चामुष्मिकं कर्म पितृमुक्तिप्रदायकम् । पुत्रवांच्छितदं चैव परत्रेह सुखप्रदम् ॥२॥
इदं कर्म न कुर्वन्ति ये नास्तिकनराधमाः । तेषां जलमपेयं स्यात्सुरातुल्यं न संशयः ॥३॥
देवताः पितरश्चैव नैव पश्यन्ति तद्गृहम् । भवन्ति तेषां कोपेन पुत्राः पौत्राश्च दुर्गताः ॥४॥

लोक में भी सुख देने वाला है ॥२॥ जो अधम प्रकृति के नास्तिक मनुष्य प्रेत का और्ध्वदेहिक कृत्य नहीं करते उनके हाथ का पानी भी सुरा के समान अपेय होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥३॥ देवता और पितर भी उनके घर में दृष्टि नहीं डालते और उनके पुत्र-पौत्रादि उन देवों और पितरों के कोप से दुर्गति को प्राप्त होते हैं अथात

दुःखी और दरिद्र होते हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर जातियों के भी जो मनुष्य प्रेत की क्रिया नहीं करते उन्हें चाण्डाल के समान समझना चाहिए ॥ ५ ॥ इस पवित्र प्रेतकल्प को जो मनुष्य सुनता है और जो इसे सुनाता है वे दोनों ही पाप से मुक्त हो जाते हैं और वे कभी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करते ॥ ६ ॥ माता-पिता की मृत्यु होने पर जो पुत्र इस गरुड पुराण को सुनता है उसके माता-पिता

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवेतरेऽपि च । ते चाण्डालसमा ज्ञेयाः सर्वे प्रेतक्रियां विना ॥५॥
प्रेतकल्पमिदं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः । उभौ तौ पापनिर्मुक्तौ दुर्गतिं नैव गच्छतः ॥६॥
मातापित्रोश्च मरणे सौपर्णं शृणुते तु यः । पितरौ मुक्तिमापन्नौ सुतः सन्ततिमान् भवेत् ॥७॥
न श्रुतं गारुडं येन गयाश्राद्धं च नो कृतम् । वृषोत्सर्गः कृतो नैव न च मासिकवार्षिके ॥८॥
स कथं कथ्यते पुत्रः कथं मुच्येदृणत्रयात् । मातरं पितरं चैव कथं तारयितुं क्षमः ॥९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल । धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम् ॥१०॥

आदि पितर मोक्ष को प्राप्त करते हैं और उसे सन्तान की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ माता-पिता की मृत्यु होने पर जिसने गरुडपुराण को नहीं सुना, गयाश्राद्ध नहीं किया, न वृषोत्सर्ग किया, न मासिक श्राद्ध किये और न वार्षिक श्राद्ध ही किया, उसको पुत्र कैसे कहा जा सकता है ? और कैसे वह पैतृक ऋण से मुक्त हो सकता है ? और कैसे वह माता-पिता को तारने में समर्थ हो सकता है ? ॥ ८–९ ॥ अतः समस्त प्रयत्न करके गरुड-

पुराण को सुनना चाहिए जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसंज्ञक चारों पुरुषार्थों को देने वाला और दुःख का नाश करने वाला है ॥ १० ॥ गरुडपुराण पुण्यदायक, पवित्र तथा पापनाशक और अपने सुनने वालों की मनोभिलाषा को पूर्ण करने वाला है। अतः इसको सदैव सुनना चाहिए ॥११॥ इस पुराण को सुनने के पुण्य-फल से ब्राह्मण को विद्या की उपलब्धि होती है, क्षत्रिय को भूमि-लाभ होता है, वैश्य को धन का लाभ होता है और शूद्र पातक

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥११॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं लभेत्। वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः शुद्धयति पातकात्॥१२॥
श्रुत्वा दानानि देयानि वाचकायाखिलानि च। पूर्वोक्तशयनादीनि नान्यथा सफलं भवेत् ॥१३॥
पुराणं पूजयेत् पूर्वं वाचकं तदनन्तरम्। वस्त्रालंकारगोदानैर्दक्षिणाभिश्च सादरम् ॥१४॥
अन्नैश्च हेमदानैश्च भूमिदानैश्च भूरिभिः। पूजयेद्वाचकं भक्त्या बहुपुण्यफलाप्तये ॥१५॥

से शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥ इस गरुडपुराण को सुनकर इसके कथावाचक को पूर्वोक्त शय्यादान आदि अखिल (सभी) दान देने चाहिए, अन्यथा इसको सुनने का कोई फल नहीं मिलता ॥ १३ ॥ आरम्भ में इस गरुड-पुराण की पूजा करे और तत्पश्चात् पुराणवाचक की पूजा उसे आदरपूर्वक वस्त्र, अलंकार, गोदान और दक्षिणा देकर करे ॥ १४ ॥ अधिक पुण्यफल की प्राप्ति हेतु पुराणवाचक को प्रचुर अन्नदान, प्रचुर स्वर्णदान और प्रचुर

मात्रा में भूमिदान देकर उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करे ॥ १५ ॥ पुराणवाचक की पूजा करने से मेरी भी पूजा हो

वाचकस्यार्चनेनैव पूजितोऽहं न संशयः । सन्तुष्टे तुष्टितां यामि वाचके नात्र संशयः ॥१॥

जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि पुराणवाचक के सन्तुष्ट होने पर मैं भी सन्तुष्ट हो जाता हूं ॥ १६ ॥

इति श्रीगरुडपुराणश्रवणफलम् ।

इति श्रीगरुडपुराणं समाप्तम् ॥

—***—

अथ सारोद्धारकर्तुरात्मनिवेदनम्

॥ आसीद्वक्ता पुराणस्य श्रीशार्दूलमहीपतेः ॥ झुंझुणूनगरस्यापि मिश्रः श्रीसुखलालजी ॥१॥ तस्य श्रीहरिनारायणात्मजस्तत्सुतेन तु । मया नौनिधिरामेण कृतोऽयं सारसंग्रहः ॥२॥ प्राचीनैर्यत्कृतः पूर्वं गारुडः सारसंग्रहः । स तु नो बुद्धिदौर्बल्याज्ज्ञातस्तस्मादयं कृतः ॥ ३ ॥ पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणायं मया कृतः । बालानां सुखबोधाय न तु पांडित्यगर्वतः ॥४॥ अत्राप्रमाणं यत्किंचित्प्रमादाल्लिखितं मया । विद्वद्भिः सुविचार्यैव शोधनीयोऽनसूयिभिः ॥५॥ सारोद्धारो मया मूलैर्बहुग्रंथैर्यथा कृतः । तथैवानेकटीकाभिरुद्धृतः सारसंग्रहः ॥ ६ ॥ महाखेदान्मया तत्र यथास्थानं नियोजितः । प्राज्ञं विना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विमूढधीः ॥ ७ ॥ विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् । न हि वंध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥ ८ ॥ ये पूर्वसंग्रहे मूढा नैव जानंति योग्यताम् । ते कथं हि भविष्यंति हर्षिताः पठनेऽस्य च ॥ ९ ॥ सारोद्धारमिमं मिश्राः पठंतु न पठंतु वा । मया तु स्वीयबोधाय कृतमेतन्न सर्वशः ॥१०॥ मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः । मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥११॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिंदीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ १ ॥ राजानः परिपालयंतु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा पृथ्वी कामदुघा भवत्वविरलं वर्षंतु काले घनाः । ईर्ष्यामुज्झतु दुर्जनः परगुणेष्वासज्जतां सज्जनः सत्काव्यामृतवर्षिणी कविमुखे वाणी चिरं नन्दतु ॥ १३ ॥ इति सारोद्धारकर्तुरात्मनिवेदनम् ।

मूलपाठ सम्बन्धी शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३	८	वैकुण्ठं	वैकुण्ठे
८	३३	दण्डच	दण्डच
८	३४	तस्यैतं	तस्यैवं
८	३५	सचल	प्रचल
८	३५	न यावो	नयावो
८	३७	वे पथुः	वेपथुः
९	४३	भुक्ते	भुङ्क्ते
१०	४७	दशमुद्धि	दशसुद्धि
१०	४७	विभाज्यन्ते	विभज्यन्ते
१०	४७	खगोत्तमम्	खगोत्तम
११	४९	मयाप्नुवात्	मवाप्नुयात्
११	४९	जन्तुनिष्पन्न	जन्तुर्निष्पन्न
११	५२	चतुर्थे तु	चतुर्थेन

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१४	विष्टापूर्णहृदः	विष्ठापूर्णा ह्लदः
१६	१५	दृष्ट्वा	दृष्टा
१६	१६	मांश	मांस
१६	१८	कथ्यते	क्वथते
१७	१९	गृधृं	गृध्रै
१७	२०	मेदकः	भेदकैः
१८	२६	दुःखद	दुखदा
१८	२७	विधि	विध
१८	३०	शृङ्खलेः	शृङ्खलैः
१९	३२	ग्लानि	ग्लानिं
२०	३७	जलाशया	जलाशयो
२२	४५	स्मरंते	स्मरते

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२२	४८	विक्रयी	विक्रयो
२३	५३	मक्ते	भुंक्ते
२४	५५	ब्यथिता	व्यथितो
२५	६४	यदा	तदा
२६	६८	स	सा
२६	६९	वडिशेनं	बडिशेन
२६	७९	हिमाच्छादित	हिमाच्छत
२७	७९	तपत्यपि	तत्यपि
२९	१	केशव.	केशव
३१	१०	तां	ता
३१	१३	मत्या	मत्यां
३३	२१	नाभिकम्	नासिकम्
३३	२४	शोचन्तेः	शोचन्त

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३४	२६	क्रोधाद्युत्पन्न	क्रोधाद्यदुत्पन्न
३४	३१	चोरवान्नि	चोरवन्निश्चल
३५	३४	विस्तीर्णा	विस्तीर्णं
३५	३६	तस्मिन्नवै	तस्मिन् वै
३७	४४	सन्ताडयते	सन्ताडयसे
३८	५१	ध्यान ते	ध्मायन्ते
३९	५७	सदशकै	संदंशकै
४०	६५	कल्पान्तः	कल्पान्तं
४०	६५	यातना	यातनाः
४१	६७	विश्राण	व्रिश्राण
४१	६७	विसृज्यहा	वसृज्येहो
४३	३	जव्रन्ति	व्रजन्ति
४३	४	अस्मिन्नॆव	अस्मिन्नेव
४३	५	शुरापा	सुरापा

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्य	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१४	मन्मन्ते	मन्यन्ते
४६	२२	पठेछूद्र	पठेच्छूद्रः
४७	२८	वृत्या	वृत्त्या
५१	४६	नथिनो	नर्थिनो
५१	५२	अग्नि	अग्निं
५२	५५	त्युष्णां	त्युष्णं
५४	६३	श्वापाकेषु	श्व पाकेषु
५६	७	गुरोर्गर्वण	गुरोर्गर्वेण
५९	टिप्पणी १ सस्यं क्षेत्रगतं इत्यादि पृ० ६१ की टिप्पणी१ श्रीमद्भागवत इत्यादिद्रष्टव्य		
६१	२७	वल्गुनी	वल्गुली
६१	३२	योनि	योर्नि
६२	३३	पूजा	पूजां
६२	३४	पातकजातु	पातकजान्

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
६५	५३	स्त्रीपुरुषो	स्त्रीपुंसो
६७	शीर्षक में	पापजन्मादि	पापिजन्मादि
६७	१	भुंते	भुंक्ते
६७	२	तया	तथा
६९	११	तक्ष्णो	तीक्ष्णो
६९	११	वहिर वृत	बहिरावृतः
७१	१७	संभृतिम्	संसृतिम्
७१	१७	कृत	कृतं
७१	१९	मुक्ति	मुक्तिं
७५	३८	कामी	कामि
७९	९	तस्मान्	तस्मात्
७९	११	प्रोक्तं इति वेदैरपि	प्रक्तं
७९	१२	स्पर्शं इति वेदैरपि	स्पर्शनान्मर्त्यो
८०	१४	पितुणां	पितृणां

पृष्ठ संख्या	श्लोंक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
८०	१६	महात्म्य	माहात्म्य
८१	२२	बाणा	बाण
८२	२५	तोत	ततो
८२	२८	ददार्शा	ददर्शा
९०	पुष्पिका में	संस्कार नाम	संस्कारो नाम
९६	२९	अन्तःकाले	अन्तकाले
९७	२३	कार्पासी	कार्पासो
११२	११६	मृत्युकालेन	मृत्युकाले
११३	११८	हभ्राता	सहभ्रात्रा
११६	१८	कृतस्तस्च	कृतस्तत्र
११८	२५	अग्नि	अग्नि
१२०	टिप्पणि२	भुर्भुव	भूर्भुवः स्वः
१२२	४६	किकिणी	किंकिणी
१३०	२९	पुत्तलास्तदा	पुत्तलांस्तदा

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१३३	टिप्पणी में	ऋतव	ॠतव
१३४	४५	कदाचन्	कदाचन
१३६	५७	भित्वा	भित्त्वा
१३६	५७	आज्यहुति	आज्याहुतिं
१३७	५९	आज्याहुति	आज्याहुतिं
१५०	१०	यदा	यथा
१६२	३०	भोक्तब्यो	मोक्तव्यो
१६८	६२	चैवेकादशं	चैवैकादशं
१७६	१३	अदान्त	आदन्त
१७६	१४	अजान्मनस्तु	आजन्मतस्तु
१७६	टिप्पणी १	आदन्तजन्मः	आदन्तजन्मन;
१८२	४४	आपुत्रायाः	अपुत्रायाः
१८६	६५	द्धैम	द्धैमं
१८८	टि० १	कामतत्ते	कामैतत् ते

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१८८	टि० २	सजीवता	तजीवता
१९५	टि० २	अधिमासे	अधिमासो
१९६	टि० ४	पितयब्द	पितर्यब्द
१९७	टि० १	लवाल	तस्यालवाल
१९७	टि० १ की तीसरी पंक्ति	वलादि	लवादि
१९८	टि० १	अष्टावित	अष्टाविति
१९९	श्लोक ११८	कालञ्जिरे	कालञ्जरे
२०१	१२७	वंए	एवं
२०३	६	विस्ता	विंस्तृत
२०५	१७	रम्यमयं	रत्नमयं
२०८	३७	मूर्ताऽर्ता	मूर्तामूर्ता
२१२	५८	पूर्वद्वार	पूर्वद्वारे
२१३	६१	मान्वो	भास्वो
२१५	अनुवाद पंक्ति४	यज्ञसम्[illegible] करके	

पृष्ठ संख्या	श्लोक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
			यज्ञसम्पादन करके देवऋण
२१९	१	स्वर्गति	स्वर्गंति
२२५	टि० अन्तिम पंक्ति	वर्तस्य	विवर्तस्य
२२६	३९	भक्त	भुक्त
२२९	४०	रसं	वायुः
२३०	४२	पृथकिट्टं	पृथक्किट्टं
२३१	४७	तिस्त्रः	तिस्रः
२३३	टि० १	लोकपुरुष साम्य सर्वप्रथम	लोकपुरुष साम्य की अभिव्यक्ति देखी जाती है भगवान्के विराट रूप में यावद् ब्रह्माण्ड की विद्यामानता का सर्वप्रथम

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	टि० २	खलाधार	मूलाधार
,,	,,	ब्रह्मकषाटे	ब्रह्मकपाटे
		पसति	वसति
२३७	६८ का अनुवाद	नाभिका	नासिका
२४०	७४	वृत्तम्	वृतम्
२४१	७८ अनुवाद	'हूं'	'हुं'
२४६	२	मलीयसे	मलीमसे
२४८	टि० १	अध्यारो	अध्यारोप
२५०	१८ अनुवाद	भाजक	भाजन

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
२५२	२४	छ्रय	छ्रेयः
,,	टि० १	परितर्जयन्ति	परितर्जयन्ती
,,	टि० २	कलेवरगृहं	कलेवरगृहं— यावच्च दूरे जरा।
२५३	२८ का अनुवाद	दुःखीः देख कर और	और दुःखी देख कर
२५३	३० अनुवाद	जीव	जीवन
२५४	टि० २	स्मय (गर्भ)	स्मय(गर्व)
२५६	३९	कालवृका	कालवृको
२५७	४३	रागद्वेषानल	रागेषानले

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन
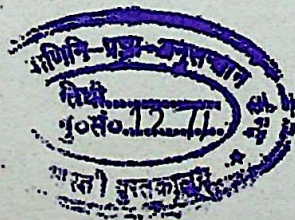
मैथिलसाम्प्रदायिक-दुर्गासप्तशती : दुर्गासप्तशती पाठसमीक्षा सहित । सम्पा०—पं० रामचन्द्र झा ।	१०—००
शिवपूजनविधिः । (पार्थिवपूजनविधि सहित) हिन्दी टीका सहित ।	७—००
दुर्गासप्तशती । सप्तशतीयानुष्ठानपद्धति, नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, पल्लव-योजनाविधि, स्तोत्रादि सहित । स्वामी प्रह्लाद गिरि	१५—००
अर्धनारीश्वरस्तोत्रम् ।	३—००
वास्तुशान्तिपद्धतिः । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहितम् । पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री ।	१०—००
मूलशान्तिपद्धतिः । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित । पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री ।	१०—००
चाणक्यनीति दर्पणः । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीकासहित । पं० शिवदत्त शास्त्री ।	१०—००
दत्तात्रेयस्तोत्रम् । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित ।	८—००
उड्डीशतन्त्रम् । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित । पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री ।	८—००
दुर्गापूजा । श्यामापूजापद्धतिः (मैथिल साम्प्रदायिक शास्त्रीय) ।	५—००
संक्षिप्त-शिवहनुमत्प्रतिष्ठापद्धतिः । देवीप्रसाद मिश्र ।	५—००
भुवनदीपकः । पद्मसूरिविरचित । संस्कृत हिन्दी टीका सहित । डॉ० कामेश्वर उपाध्याय ।	२०—००
भावफलाध्यायः । संस्कृत हिन्दी टीका सहित । डॉ० रामचन्द्र पाठक ।	
बृहद्अवकहड़ाचक्रम् । हिन्दी टीका सहित । डॉ० रामचन्द्र पाठक ।	
मुहूर्त्तचिन्तामणिः । सविमर्श 'चन्द्रिका' संस्कृत हिन्दी टीका सहित । डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय ।	
जातकालंकारः । हिन्दी टीका सहित । पं० लखणलाल झा ।	
लघुजातकम् । हिन्दी टीका सहित । पं० लषणलाल झा ।	

प्राप्तिस्थान—कृष्णदास अकादमी, पो० बा० नं० १११८, चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग),